कृष्णकली

शिवानी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कृष्णकली

*

शिवानी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला :

सम्पादक एवं नियामक

लक्ष्मीचन्द्र जैन

ग्रन्थांक : २८

प्रथम संस्करण : १६

द्वितीय संस्करण : १६

तृतीय संस्करण : १६

मूल्य : दस रु

कृष्णकली

(उपन्यास)

शिवानी

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१

मुद्रक

सन्मति मुद्रणालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२२१००५

Price : Rs 10.00

KRISHNAKALI (Novel) : Shivani

गोरखपुर कुष्ठाश्रम के
उस अज्ञात स्नेही को जिसने
इस उपन्यास को
लिखने की प्रेरणा दी थी।

कृष्णकली

० ०

कृष्णकली आमी तारेई बोली
आर जा वॅले वलूक अन्य लोक
देखेछिलेम मयनापाड़ार माठे
कालो मेयेर कालो हरिण चोख
माथार परे दैय नी तूले वास
लज्जा पावार पायनी अवकाश
कालो ? ता शे जतई कालो होक
देखेछी तार कालो हरिण चोख

(रवीन्द्रनाथ)

लोग उसे किसी नाम से क्यों न पुकारें
मैं उसे कृष्णकली ही कहता हूँ ।
मैंने उसे मयनापाड़ा के मैदान में खड़ी देखा था
हरिणी के-से काले आयत नयन
और साँवला सलोना रंग ।
उघड़े माथे पर आँचल नहीं था
लज्जा का, उसे अवकाश ही कहाँ था ?
काली ? कितनी ही क्यों न हो
मैंने तो उस मृगनयनी के काले नयन देख लिये हैं ।

एक

मूसलाधार वृष्टि टीन की ढालू छतों पर नगाड़े-सी वजा रही थी, देवदार, बाज और बुरुश के लम्बे वृक्षों की घनी क़तार में छिपे बँगले में बरामदे में टँगी बरसाती हड़बड़ाकर सर पर डाल डॉक्टर पैद्रिक तीर-सी निकल गयीं।

ओफ़! कैसी विकट वृष्टि थी उस दिन! लगता था क्रुद्ध आषाढ़ के भृकुटिविलास में अल्मोड़ा की सृष्टि ही लय हो जायेगी। कड़कती बिजली सामने गर्वोन्नत खड़े गागर और मुक्तेश्वर की चोटियों पर चमकी, तो डॉ. पैद्रिक दोनों कानों पर हाथ धर, धमककर खड़ी रह गयीं! बिजली के धड़ाके के साथ नवजात शिशु का क्रन्दन....कहीं इसी बीच पार्वती कुछ कर बैठी हो? काँपती, गले में पड़ी लम्बी रोजेरी को थामे, ओठों ही ओठों में बुदबुदाती डॉ. पैद्रिक, एक प्रकार से दौड़-सी लगाने लगीं।

दो दिन पहले ही तो उसने कहा था, "फ़िकर मत करो मेम साहब, तुम्हारे आने से पहले ही मैं उसको खत्म कर दूँगी!"

फिर ही-ही कर विकृत स्वर में हँसने लगी थी—निर्लज्ज बेहया औरत! डॉ. पैद्रिक बड़ी देर तक उसके पास बैठी रही थी, "बच्चे में ईश्वर का अंश होता है, जानती है पार्वती? ईश्वर का गला घोंटेगी तू? इस जन्म में न जाने किन पूर्वकृत पापों का फल भोग रही है, परलोक की चिन्ता नहीं है तुझे?"

उस अँधेरे कमरे में पार्वती की नासिका-विहीन विकराल हँसी को प्रथम बार देखने पर पत्थर का कलेजा भी शायद भय से धड़कने लगता, "इसी लोक में जब इतना सुख भोग लिया है मेम साहब, तब परलोक की कैसी चिन्ता? अन्य आसन्न-प्रसवा स्त्रियों की तरह गर्भभार से दुहरी नहीं हुई थी पार्वती, सीना तानकर, अपने नुकीले पेट की परिधि को दोनों हाथों में थामे वह डॉ. पैद्रिक के सम्मुख, विद्रोह की जीवित मूर्ति-सी खड़ी हो गयी थी, फिर वह शायद स्वयं ही अपनी अल्पबुद्धि पर खिसिया गयी थी, "बुरा मत मानना मेम साहब," उत्तेजित कण्ठ स्वर अचानक अवरोह के स्तर पर उतर आया, "तुम मेरी माँ हो, क्या ठीक नहीं कर रही हूँ मैं, अपने पाप का फल भोगने, इसे क्यों जीने दूँ!"

क्षण-भर पूर्व निर्लज्जता से हँसनेवाला ढीठ महाकुत्सित रोग-विकृत चेहरा, असह्य दुःख की असंख्य झुर्रियों से भर गया, पलक-विहीन बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू

ललक आये। किसी क्रूर हृदयहीन आक्रमणकारी शत्रु की भाँति, महारोग ने सौन्दर्य-दुर्ग की धज्जियाँ उड़ा दी थीं, पर ऐतिहासिक दुर्ग के भग्नावशेष में भी जैसे दो सुन्दर झरोखे वैसे के वैसे ही धरे थे, शत्रु की निर्मम गोलाबारी केवल रेशमी पक्ष्मों को ही झुलसा पायी थी।

हल्द्वानी में अपनी बस के पीछे भागती पार्वती को डॉ. पैद्रिक दस वर्ष पूर्व पकड़कर अपने आश्रम में लायी थीं। तब की पार्वती और आज की पार्वती में धरती-आकाश का अन्तर था : नुकीली नाक, भरा-भरा शरीर और मछली-सी तिरछी बड़ी-बड़ी आँखों की स्वामिनी पार्वती अब क्या वैसी ही रह गयी थी? पैरों में केनवास के फटे जूते देखकर ही डॉ. पैद्रिक की अनुभवी आँखों ने रोग का प्रमुख खेमा पकड़ लिया था। अभी हाथ-पैर के ही अँगूठों पर रोग ने कुठाराघात किया था, समझा-बुझा, अन्त में पुलिस का भय दिखाकर ही डॉक्टर उसे अपने साथ ला पायी थीं।

"तेरा यह रोग अभी भी एकदम ठीक हो सकता है, जानती है लड़की?"

और उस आकर्षक लड़की ने दोनों हाथों के ठुण्ठ, दुष्टता से हँसकर ठीक डॉ. पैद्रिक की नाक के नीचे फैला दिये थे, "ये अँगुली कहाँ से लायेगा मेम साहब?" दस अँगुलियों में से अवशेष, उन तीन अँगुलियों की गठन निस्सन्देह अनुपम थी—लम्बी, ऊपर से मुड़ी अँगुलियाँ। बहुत पहले जावा में रहती थी डॉक्टर पैद्रिक, आज इन तीन अँगुलियों को देखकर उन्हें जावा की नर्तकियों की कलात्मक अँगुलियों का स्मरण हो आया, सचमुच ही इस नमूने की अँगुलियाँ गढ़ने में डिकी को कठिन परिश्रम करना होगा, पर डिकी की अद्‌भुत शक्ति को वह जानती थी। बैलोर का वह विलक्षण चरक, आज तक कितने ही गलित अंगों का पुनः निर्माण कर असंख्य अभिशप्त रोगियों को जीवनदान दे चुका था। उनका अनुमान ठीक था। पार्वती बैलोर से अपनी नक़ली अँगुलियाँ लेकर लौटी तो डॉक्टर पैद्रिक दंग रह गयीं। कौन कहेगा, उन सुघड़ अँगुलियों की बनावट में कलाकार कहीं भी विधाता से पिछड़ा है!

पर पार्वती को ये नयी अँगुलियाँ देकर बहुत बुद्धिमानी का कार्य नहीं किया, यह डॉ. पैद्रिक-जैसी बुद्धिमती महिला पहले ही दिन समझ गयी। भागकर पार्वती न जाने किस-किस से धेला-टका उधार लेकर बाज़ार से अपनी नयी-नयी अँगुलियों के लिए कई रंग-बिरंगी अँगूठियाँ, मनकों की माला और एक छोटा-सा दर्पण खरीद लायी थी। जब डॉ. पैद्रिक राउण्ड पर गयीं तो वह अपनी खटिया पर दुल्हन-सी सजी-धजी नन्हें दर्पण में अपना मुँह निहारती, मुग्धा नायिका बनी बैठी थी। डॉक्टर का हृदय उस अभागिनी के लिए करुणा से भर गया।

"पार्वती", उन्होंने उसकी नक़ली अँगूठियों से जगमगाती अँगुलियों को सहलाकर कहा था, "मैं तेरी जगह होती, तो पहले इन अँगुलियों को उस ख़ुदा की वन्दगी में जोड़कर घुटने टेकती, जिसने इन्हें जोड़ने के लायक़ बना दिया और तुझे पहले इन्हें सजाने की ही पड़ी?"

"ही-ही मेम साहब"—नास्तिक पार्वती को लाख चेष्टा करने पर भी डॉक्टर आस्तिक नहीं बना पायी थीं। कठिन असाध्य रोग ने उसे चिड़चिड़ी, निर्लज्ज और ढीठ बना दिया था।

"भगवान्, खुदा, ईसामसी, किसी को नहीं मानती हूँ मैं, सब झूठ है। मेरी अँगुलियाँ क्या तुम्हारे खुदा ने ठीक कीं? जिसने ठीक कीं वह तो आपकी हमारी तरह ही आदमी है मेम सा'ब!"

डॉक्टर ने फिर कुछ नहीं कहा, पर पार्वती को उन्होंने अपने कमरे की झाड़ू-बुहारी देने, फूलदानों पर पीतल पॉलिश करने आदि का छोटा-मोटा काम सौंपकर ऐसे बाँधकर रख दिया कि तोबड़ा बँधी जंगली घोड़ी की ही भाँति वह इधर-उधर मुँह नहीं मार सकती थी। पर धीरे-धीरे उसने अपने तेज़ दाँतों से तोबड़ा काटकर धर दिया। डॉक्टर के कठोर अनुशासन से मछली-सी पार्वती न जाने कब फिर अपने परिचित गँदले पोखर में सर से सरककर इधर-उधर तैरती फिरने लगी।

पार्वती की ही भाँति असदुल्ला खान कुष्ठाश्रम के पुरुष डॉक्टरों का सबसे बड़ा सरदर्द था। ऊँचा-लम्बा सुर्ख़ गालोंवाला पठान, पहले दिन खून जँचवाने आया, तो कोई निकट से देखने पर भी उसके रोग के अस्तित्व का सूत्र नहीं पकड़ सकता था। तीखी नाक, तेजस्वी आँखें, चौड़ा माथा और घने काले बाल, जिन का गहरा काला रेशमी रंग, उसके गौर वर्ण को और भी उजला बनाकर प्रस्तुत करता था। फटी सलवार और जर्जर नीली क्रेप की क़मीज़ पहने वह डॉ. पैद्रिक के सम्मुख एक सलाम दागकर खड़ा हो गया था। "अभी रोग का आरम्भ है खान," डॉक्टर ने कहा था, "तुम संयम से रहे और यहाँ से भागे नहीं तो जल्दी ही ठीक हो जाओगे। अभी बीमारी ने तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है।"

"और यह?" अपनी भूरी मूछों के बीच मोती-से दाँत चमकाकर उसने फटा जूता खोल, दोनों पैर डॉ. पैद्रिक के सामने धर दिये थे।

कीमा बनी दोनों अँगुलियों को देखकर डॉक्टर सिहर उठीं और अपनी झुँझलाहट नहीं रोक पायी थीं, "आज तक क्या करते रहे तुम?"

"पत्थर की खान से खच्चरों पर पत्थर लादता रहा मेम सा'ब," बड़ी बेहयायी से वह एक बार फिर अपनी भूरी आकर्षक मूछों के बीच मुसकराता, पास खड़ी पार्वती को देखने लगा। चुलबुली पार्वती उसकी इस हाज़िरजवाबी से लोट-पोट हो गयी। वह खिलखिलाकर हँसी पर दूसरे ही क्षण डॉक्टर की कठोर दृष्टि ने उसे भूँजकर धर दिया: "पार्वती, तुम अपना काम करो, यहाँ क्या कर रही हो?"

उन्होंने उस दिन तो उसे डपटकर भीतर भेज दिया, पर असदुल्ला के सामान्य रूप के क्षत-विक्षत पौरुष का नाग उसे जाने से पहले ही डस चुका था। लुक-छिपकर

उससे मिलती रहती। पर अभागिनी पार्वती यह नहीं जानती थी कि वह सुदर्शन पठान, केवल उसी के सम्मुख प्रणय की झोली नहीं फैलाता। कुष्ठाश्रम की असंख्य गोपियों का एक मात्र कन्हैया असदुल्ला ही था। पठान होकर भी वह विशुद्ध मीठे लहजे में पहाड़ी बोल लेता था। दाड़िम के पेड़ के नीचे बैठकर जब वह एक से एक कठिन पहाड़ी लोकगीतों की धुन अपनी वंशी पर बजाने लगता, तो कोढ़ीखाने की भीड़ उसे घेर लेती। जैसे वर्षा की वेगवती धारा गन्दे नालों के कचरे को अपने साथ-साथ दूर बहा ले जाती है, ऐसे ही कुछ क्षणों के लिए, कितनी ही बैठी नाक, झड़ी अँगुलियों, पतझड़ के विवश पत्तों-सी गिरती पलकों की व्यथा असदुल्ला की मादक करुण वंशी-लहरी के साथ बहकर दूर चली जाती, और फ़रमाइशों का बाज़ार गर्म हो उठता।

'अरे यार असदुल्ला, हो जाये ज़रा चहगाना—'

चना वे चकोरा वे चना
बाँटि ले चना लटि
तेरो सिपाही घर ऐ रोछौ, बेलिया पोरु बटी।

और असदुल्ला वंशी सहित, स्मृतियों में डूबी चकोरी पार्वती की ओर मुड़कर बार-बार वही पंक्ति दुहराने लगता तो एक साथ कई फटे जूतों के सोल लयबद्ध ताल देने लगते—

अरी चकोरी चना
चोटी तो गूँध ले
कल तेरा सिपाही घर लौट आया है।

पार्वती का सुदर्शन सिपाही भी शायद घर लौट आया होगा। चकोरी की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगते। मुँह फेरकर वह आँसू पोंछ दूसरे ही क्षण अपने आनन्दी चोले में लौट आती, "इन नक़ली अँगुलियों से क्या चोटी गूँथूँ यारो, और गूँथ भी लूँगी तो मेरा सिपाही क्या अब मेरे लिए बैठा होगा ?"

"कोई बात नहीं पर्वती, हम तो बैठे हैं तेरे लिए," उसका नवीन प्रेमी पूरी बिरादरी के सम्मुख भूरी मूँछों पर ताव देता, दुहरा होता किसी नाटक के कलाकार की ही भाँति नम्र 'कर्टसी' में झुक जाता।

"वाह-वाह।"

"शाब्बास, क्या बात कही है सवा लाख की।" पार्वती लजाकर भाग जाती। उन दोनों की प्रणय रसकेलि पूरी बिरादरी को ज्ञात थी, फिर भी असाध्य रोग की एक-सी व्यथा की एकता से सब ऐसे कसकर बँधे थे कि एक भी खिंचता तो सब के सब साथ ही खिंच जाते। किसी ने भी डॉ. पैट्रिक से कभी एक शब्द नहीं कहा। कुछ दिनों तक असदुल्ला को कुष्ठाश्रम की चहारदीवारी में बन्द रहने में कोई आपत्ति नहीं रही, पर धीरे-धीरे वह लुक-छिपकर रात-आधीरात को खिसक जाता।

"आज मैंने एक बढ़िया पिक्चर देखी पर्वती ! उस में काम करनेवाली छोकरी एकदम तेरी सूरत की है," वह कहता। पार्वती को वह पर्वती कहकर बुलाता था।

"चल हट" पार्वती उसे झिड़क देती, "इतने पैसे कहाँ से पाता है तू ?"

"क्यों, असदुल्ला खान के पास पैसों की क्या कमी ? राजा घर मोत्यूँ अकाल ?" वह भूरी मूँछों पर ताव देता, पहाड़ी की कहावत से अपनी पर्वती को एक बार फिर निहाल कर देता।

"अभी तो तीन ही खच्चर बेचे हैं, पचास खच्चर चचा जान को सौंप आया हूँ, अगले हफ़्ते तुझे तीन तोले की मछलियाँ नहीं बनवा दीं तो मेरा नाम बदल देना। समझी ?" झूठ नहीं बोलता था खान, पर पार्वती को उन तीन तोले की रामपुरी मछलियों का गहरा मोल चुकाना पड़ा था। पार्वती की दुरवस्था का भान होते ही असदुल्ला कब चुपचाप खिसक गया; कोई जान भी नहीं पाया। इधर पार्वती के असंयमित जीवन ने, रोग को तीव्रता से उभाड़ दिया था। खाई-खन्दक में छिपे कुटिल शत्रु की भाँति उस ने एक दिन पार्वती की पीठ में छुरी भोंक दी। रीढ़ की हड्डी की मर्मान्तक व्यथा से वह छटपटा रही थी कि उस पर झुकी डॉ. पैद्रिक ने उसका दूसरा रोग भी पकड़ लिया। बड़ी देर तक वे हतबुद्धि-सी बैठी ही रह गयीं।

"यह क्या कर बैठी पार्वती ? कौन था वह हृदयहीन ? बताती क्यों नहीं बच्ची ?"

पर पार्वती एक शब्द भी नहीं बोली। जिस उठी नासिका के एक मात्र स्तम्भ पर उसके सौन्दर्य का प्रासाद अबतक खड़ा था वह अचानक बैठने लगी थी। आँखों की पीड़ा से वह कभी-कभी ऐसी व्याकुल हो जाती कि लगता कोई लोहे की सहस्र गरम सलाखें उसकी आँखों में घुसेड़ रहा है। उस पर चक्राकार झूमते गर्भस्थ शिशु के अन्धकारमय भविष्य की चिन्ता उसे पागल बना देती। एक दिन उसने स्वयं ही दृढ़ निश्चय कर लिया, पुत्र हो या पुत्री, एक क्षण भी उस अभागे जीव को वह इस पृथ्वी पर साँस नहीं लेने देगी।

अपना वही अमानवीय दृढ़ संकल्प उसने डॉ. पैद्रिक के सम्मुख दुहराया तो वे सिहर उठी थीं। आज वही क्षण आया तो हृदय एक बार फिर उसी आशंका से काँप उठा। निश्चय ही वह पार्वती के शिशु का क्रन्दन था। भरी नींद में, वर्षामुखरित रात्रि को चीरता वही शिशु-स्वर का क्रन्दन उन्हें झकझोर गया था। जैसे नन्हें फेफड़े फाड़-फाड़कर उन्हें चीख-चीखकर पुकार रहा था, 'बचा लो मुझे, बचा लो।'

पहाड़ी आषाढ़ की वेगवती वर्षा के तीव्रतर अंग में सिहरती शर्वरी को चीरती, डॉ. पैद्रिक सहसा एक रुद्ध कण्ठ की चिहुँक सुनकर ठिठककर खड़ी रह गयीं। फिर वे ऐसे दौड़ने लगीं, जैसे बारह वर्ष की किशोरी हों। पैरों का गठिया, हाथ का आर्थराइ-

टिस, सब कुछ भूल-भालकर गिरती-पड़ती, वे पार्वती की खटिया पर झुक गयीं। उनका अनुमान ठीक था। प्रथम प्रसव से अकेले ही जूझती पार्वती क्लान्त होकर एक ओर पड़ी थी और दूसरी ओर थी मांस के लोथड़े-सी नवजात शिशु की निर्जीव देह।

"खतम कर दिया साली को मेम साहब," वह बुझे स्वर में कहती खिसियाकर हँसने लगी। "एक तो छोकरी जन्मी, उस पर माँ-बाप दोनों साच्छात देवी-देवता।"

अपने पैशाचिक कृत्य की सफलता पर स्वयं ही प्रसन्न हो, महातृप्ति की एक लम्बी साँस खींच, वह दीवार की ओर मुँह फ़ेरकर लेट गयी। "हे भगवान्! अभागी, यह क्या कर दिया तूने?" डॉ. पैद्रिक उसी गन्दगी के बीच बैठ गयीं और अवश निर्जीव पड़ी, सुकुमार शिशु की काग़ज़ के फूल-सी हलकी देह को उन्होंने गोद में उठा लिया। नन्हीं-सी छाती पर कान धरे तो धड़कन का आभास पाते ही चौंक उठीं। उनके हाथ की घड़ी की टिकटिक थी, या नन्हें कलेजे की धड़कन?

टिमटिमाते दिये की लौ के पास, उन्होंने दोनों हथेलियों में उसे टिकाकर ग़ौर से देखा, मुर्ग़ी के चूज़े की सी गरदन पर दो अँगुलियों की स्पष्ट छाप फूलकर उभर आयी थी। न जाने क्या सोचकर पार्वती को उसी अवस्था में छोड़ डॉ. पैद्रिक नन्हीं काया को अपनी विशाल छातियों में चिपका, एक बार फिर उसी तेज़ी से अपने बँगले की ओर भागने लगीं।

रात-भर की वृष्टि के पश्चात् तीव्र हवा के तूफ़ान ने, धृष्ट बादलों को रुई की भाँति धुनकर पूरे आकाश में छितरा दिया था। गागर के शैल-शिखर के पीछे अभी भी धुँधले तारे टिमटिमा रहे थे। भोर होने को थी। कब रात बीत गयी, डॉक्टर जान भी नहीं पायीं। रात-भर अचल बैठी डॉक्टर के लाल आयरिश चेहरे की झुर्रियाँ अचानक खिल उठी थीं। नन्हें शरीर पर रात-भर की गयी ब्राण्डी की मालिश से ही दैवी स्पन्दन इसे हिला-डुला गया था या उस दयालु से घुटने टेककर माँगी गयी भीख ही सार्थक हो गयी थी! पर दया की भीख तो एक इन्हीं प्राणों के लिए नहीं माँगी थी। बार-बार घुटने टेककर बैठी उस सन्त विदेशिनी के झुर्रीदार गालों पर झर-झरकर आँसू बहने लगते। "उसे क्षमा करना प्रभु, शायद उसे मैं यहाँ न लाती तो ऐसा न होता, शायद वह सड़कों पर भटकती रहती तो ऐसा भयानक पाप नहीं करती। 'फ़ोर-गिव दैम लॉर्ड फ़ॉर दे नो नॉट ह्वाट दे डू'?" बुदबुदाती, वे कभी अवश पड़ी देह को निहारतीं, कभी छाती पर कान लगातीं। निष्प्रभ काली भँवें और पुतलियाँ हिलने लगीं तो डॉक्टर एक बार फिर प्रार्थना में डूब गयीं। बहुत पहले बचपन में उनके मामा ने उन्हें एक ऐसी ही गुड़िया ला दी थी। ऐसे ही पलकें झपका-झपकाकर आँखें खोलती और बन्द करती थी वह! "मेरी बच्ची," डॉक्टर ने उसे गोदी में उठाकर चूम लिया।

"नहीं, अब देरी करना ठीक नहीं है," वे स्वयं ही बड़बड़ाने लगीं, "थोड़ी ही देर में पूरा आश्रम जग जायेगा। जगा आश्रम यही जानेगा कि पार्वती ने कल रात एक

मृत शिशु को जन्म दिया था, डॉक्टर अकेली ही जाकर अभागी को कहीं गाड़ आयी हैं।"

अपने क्रोशिया के रंग-बिरंगे शाल में बच्ची को लपेट, उन्होंने अपने लम्बे कोट के भीतर छिपा लिया और एक बार फिर बाहर निकल पड़ीं।

२

बार-बार उनका कलेजा धड़कता मुँह को आ रहा था। यदि उसने नहीं स्वीकारा तब ? कहाँ रखेंगी इसे ?

इस घृणात्मक वातावरण में, इस दूषित हवा के झोंकों में जहाँ एक-एक हवा का झोंका सहस्र घातक कीटाणुओं को बिखेरता जाता है वहाँ इस सुकुमार जीवन को क्या वे सुरक्षित रख पायेंगी ? पर वे इतना क्यों सोच रही थीं, आज क्या कुष्ठाश्रम में यह प्रथम शिशु का जन्म था ? क्या इससे पूर्व, कई नवजात शिशु वे मिशन में नहीं भेज चुकी हैं ? तब इसके मोह का बन्धन तोड़ने में वे आज क्यों कल्प-विकल्प के जाल में फँसी जा रही हैं ?

एक बार उनकी छाती से लगी नन्हीं देह काँपी और साथ ही वे भी काँप उठीं। कहीं फिर कुछ हो तो नहीं गया। कोट का कॉलर उठाकर उन्होंने झाँका। काले झबरे बालों के बीच चमकते माथे पर, कन्धे झाड़ रहे देवदार के वृक्ष से एक बूँद वर्षा की पड़ी। चिहुँककर, छोटे से ओठ काँपे। डॉक्टर ने उसे और ज़ोर से छाती से चिपका लिया।

कैसी नीरव निस्तब्ध रात्रि थी। एक तो उस निर्जन सड़क पर सन्ध्या होते ही सन्नाटा छा जाता था, उस पर आज ऐसी वर्षा में भला कौन घूमने बाहर निकलता ? लाल छत के बँगले को पहचानकर डॉक्टर ने द्वार खटखटाया। कोई उत्तर नहीं आया।

हवा चली और साथ ही देर से टहनियोंपर संचित, वर्षा की कई बूँदें एक साथ झरकर डॉ. पैट्रिक पर बरस पडीं। डॉक्टर ने ज़ोर से दस्तक दी—

"कौन ?" बड़ी दूर से तैरता किसी का कण्ठ-स्वर आया।

"पन्ना, मैं हूँ रोज़ी, द्वार खोलो।"

"रोज़ी ? तुम इतनी रात को ? आओ आओ, राम राम, तुम तो एक दम ही भीग गयी हो। रुको, मैं लैम्प जला लूँ।" एक कुरसी टटोलकर डॉक्टर के सामने खिसकाकर पन्ना लैम्प जलाने लगी।

लैम्प के धीमे प्रकाश में, पहले वह केवल उस गम्भीर चेहरे को ही देख पायी, पर धीरे-धीरे दो असीम वेदनापूर्ण क्लान्त बड़ी आँखों की करुण दृष्टि उस विशाल वक्ष से चिपकी नन्हीं देह पर उतर आयी।

यह क्या ?

एक प्रकार से लड़खड़ाती पन्ना पलँग का पाया पकड़कर बैठ गयी।

सात दिन पहले, उसकी शून्य बाँहों से यही डॉ. पैट्रिक, जिसे सफ़ेद कपड़े में

लपेटकर निर्ममता से कहीं दूर गाड़ने ले गयी थी, उसे ही क्या फिर गढ़े से निकाल लायी ?

क्या पता फिर उस निर्जीव देह में प्राण लौट आये हों ?

"रोज़ी कहाँ से लायी इसे ? क्यों मुझसे छीन ले गयी थी ? क्यों तड़पाया मुझे सात दिनों तक ?" एक बार फिर पन्ना वैसी ही हिस्टिरिकल होने लगी। डॉक्टर ने बिना कुछ कहे कुनकुनाती बच्ची को पन्ना की गोद में डाल दिया।

"बहुत भूखी है पन्ना, दूध अभी उतर रहा है क्या ?"

अनाड़ी हाथों से मृतवत्सा पन्ना ने उसे छाती से चिपका लिया। ब्रेस्ट पम्प से सुखायी गयी मातृत्व की सूखी लता फिर पल्लवित हो उठी। चप-चपकर अमृतकी घूँटें घुटकती काया को छाती से चिपकाकर पन्ना ने आँखें मूँद ली थीं और पागलों की भाँति स्वयं ही बड़बड़ा रही थी। "यह तो तुम्हारा सरासर अन्याय है रोज़ी, यह भी कैसा मज़ाक़ था भला ! तुमने इतने दिनों तक एक शब्द भी नहीं कहा, हाय मेरी बच्ची को सात दिनों तक बिना दूध के भूखा मार दिया तुमने...."

कुष्ठाश्रम का ग्वाला जिस गाय को दुहने वहाँ लाता था, एक बार उसकी बछिया मर गयी थी, दूसरे ही दिन वह भूसा भरी बछिया को गैया से टिकाकर फिर दूध दुहने आ गया था। डॉ. पैद्रिक को लगा, भूसा भरी बछिया ही उन्होंने भी आज पन्ना से सटा दी है, उनकी आँखें डबड़बा आयीं। "पन्ना, माई डार्लिंग," बड़े मीठे स्वर में उन्होंने पन्ना को पुकारा, "सवेरा होने को है, मुझे अभी लौट जाना होगा।"

पन्ना ने आँखें खोल दीं और सहमी दृष्टि से डॉक्टर को देखा, न जाने किस आशंका से वह काँप उठी। कहीं फिर तो नहीं छीन लेगी इसे ?

"मैं तुमसे झूठ नहीं बोली थी पन्ना," वे रुक-रुककर कहने लगीं, "यह तुम्हारी बच्ची नहीं है।"

भूखी बच्ची तृप्त होकर अभी भी उसकी छाती से लगी थी। ओंठों से स्तन स्वयं छूट गये थे।

पन्ना शायद चौंककर पूछेगी—क्या ? मेरी नहीं है ? किसकी है तब ?

पर पन्ना ने कुछ भी नहीं पूछा। इतनी देर तक आँखें बन्द कर वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सब कुछ देख चुकी थी।

"पन्ना," डॉ. पैद्रिक ने फिर पुकारा।

"क्या है रोज़ी ?" शान्त स्वर में पूछे गये प्रश्न और आँखों की स्थिर दृष्टि में न जिज्ञासा थी न कौतूहल।

"यह क्या पार्वती की बच्ची है रोज़ी ?" उसने पूछा तो डॉ. पैद्रिक जैसे आकाश से गिर पड़ीं। कैसे जान लिया इसने। क्या मन की भाषा भी पढ़ लेती है यह विलक्षण नारी !

उत्तर में डॉक्टर ने सिर झुका लिया। रोग की ऐसी बीभत्स अवस्था में जन्मी

उस बच्ची को उन्होंने पन्ना की गोदी में डाला ही किस दुस्साहस से ! पन्ना पार्वती को ही नहीं असदुल्ला को भी जानती है। कई दिनों तक वह उसके बग़ीचे में माली का काम करता रहा था। डॉ. पैट्रिक ने अपनी ही सखी के यहाँ उस की ड्यूटी लगा दी थी। "इसकी रिपोर्ट निगेटिव है पन्ना, चाहो तो इससे हाट-बाज़ार का काम भी ले सकती हो।" पर लाख हो, था तो कुष्ठ रोगी ही। समाज इन अभागों की निगेटिव रिपोर्ट को क्या आज तक मान्यता दे पाया है ?

ऐसे माता-पिता की अभिशप्त सन्तान क्या इस उदार गोदी में स्थान पा सकेगी ? निश्चय ही दूर पटक देगी पन्ना।

"मैं इसे मौत के मुँह से खींचकर लायी हूँ," डॉक्टर का गला भर आया था। "तुम्हें तो बता ही चुकी थी, वह मूर्ख लड़की पहले ही ऐलान कर चुकी थी। पता नहीं कब उसे दर्द उठा और कब यह हो गयी। इसी की चीख सुनकर मैं भागी। जबतक पहुँची, शैतान उस पर सवार हो चुका था। अभी भी गरदन पर उसकी अँगुलियों के निशान बने धरे हैं। अगर इसे कुछ हो जाता तो मैं ख़ुदा को क्या मुँह दिखाती, मैंने ही तो उसे ये नयी अँगुलियाँ दी थीं। तब मैं क्या जानती थी कि वह इनसे एक दिन एक नन्हीं जान का ख़ात्मा करने पर उतारू हो जायेगी।"

पन्ना एक शब्द भी नहीं बोली। बच्ची उसकी छाती से लगी, चुपचाप पड़ी थी।

"मैं जानती हूँ कि इसके माँ-बाप को एक बार देख लेने पर, कोई कितना ही उदार हृदय क्यों न हो, शायद ही इसे स्वेच्छा से ग्रहण कर पायेगा। पर मैं तुम्हें जानती हूँ पन्ना, इसी से तुम्हारे पास बड़ी आशा से आयी हूँ। एक तो यह समय से पूर्व हुई है। माँ का दूध न मिलने पर यह कभी नहीं जी पायेगी। एक वर्ष तक भी तुम इसे पाल दो तो मैं फिर इसे मिशन को दे दूँगी। एक बात और कहना चाहती थी पन्ना...."

डॉक्टर का खिसियाया कण्ठ-स्वर क्षमा-याचना-सी करने लगा। "यह रोग पैतृक ही होता है ऐसी धारणा ग़लत है। मेरे पास कई कुष्ठ रोगियों की स्वस्थ सन्तान का पूरा रिकार्ड धरा है।"

पन्ना गहरे सोच में डूबने-उतराने लगी थी। कैसा अनुभूत स्पर्श था ! वही गुदगुदी देह, मखमली ओठों की गुदगुदी लगनेवाली सिहरन, एक असह्य टीस, और फिर स्वर्गिक शान्ति। अचानक छाती में बँधी सब गिल्टियाँ जैसे किसी ने सोख ली थीं। रात-भर की थकान, मानसिक अशान्ति और पन्ना की चुप्पी से डॉक्टर सहसा झुँझला उठीं। कुछ कहती क्यों नहीं यह। कुछ तो कहे, हाँ या ना।

"पन्ना" वे फिर कहने लगीं, "मुझे लगता है ईश्वर ने शायद तुम्हें इसी महान् पुण्य का भागी बनाने यहाँ भेजा है, क्यों, है ना ?"

पन्ना हँसी। कैसी अपूर्व रहस्यमयी मुसकान थी उसकी ! व्यथा से नीले उन

ओठों के बंकिम खिचाव में व्यंग्य था या उल्लास ? क्या वह मन ही मन डॉ. पैट्रिक की हँसी तो नहीं उड़ा रही थी ? शायद सोच रही हो, कैसे चतुर होते हैं ये मिशनरी ?

पन्ना कहीं उसे ग़लत न समझ बैठे। डॉ. पैट्रिक का कण्ठ-स्वर फिर गम्भीर हो उठा, "पन्ना, मैं तुमसे झूठ भी बोल सकती थी," लैम्प के धुँधले प्रकाश में वह तेजस्वी चेहरा एकदम निर्विकार लग रहा था, "कह देती कि तुम्हारी जिस बच्ची को मैं मरी समझकर गाड़ने ले गयी थी, वही फिर जी उठी। एक ही दिन तो तुम उसे देख पायी थीं, फिर नवजात शिशु प्रायः सब क्या एक ही से नहीं होते ? ऐसे ही घने बाल उसके भी थे, और ऐसी ही आँखें ! पर मैं तुमसे झूठ बोलकर इसके प्राणों की भीख माँगने नहीं आयी हूँ। मैं चाहती हूँ तुम इसके जीवन के अभिशाप के साथ ही इसे स्वीकार कर सको। करोगी ना ?"

डॉक्टर ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। पन्ना फिर भी कुछ नहीं बोली।

तीन महीने की छोटी-सी अवधि में ही यह सर्वस्व त्यागिनी विदेशी डॉक्टरनी उसके कितने निकट आ गयी थी। इस अनजान निर्जन जंगल में, जब वह सर्वथा अपरिचित लोगों के बीच एकदम अकेले रहने आयी, तो कितने ही शंकालु नयन-बाण उसे निर्ममता से बींधने लगे थे।

कौन हो सकती थी वह ? कैसी विचित्र स्वभाव की स्वामिनी थी यह आसन्न-प्रसवा सुन्दरी प्रौढ़ा ? माँग में सिन्दूर, पैरों में बिछिये, पर न साथ में पति न सास, न कोई नौकर, ऐसी अवस्था में, शहर में न रहकर इस एकान्त बँगले में, क्या दिखा होगा उसे ? न कहीं जाती, न उठती-बैठती। कभी-कभी लोग देखते वह रामकृष्ण मिशन की ओर चली जा रही है और कभी कुष्ठाश्रम की ओर। पहले मकान मालिक शाहजी कुछ-कुछ भड़क उठे थे। क्या पता कुष्ठ रोगिणी ही हो। आश्रम में रहने पर कहीं रोग का भेद न खुल जाये, शायद इसी से बँगला ले लिया हो। लुक-छिपकर डॉ. पैट्रिक से मन की शंका का समाधान करने शाहजी पहुँचे, तो वे हँसने लगी थीं, "नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, मेरी परिचित है, इसी से मुझसे मिलने आती है।"

जब डॉक्टर ने पन्ना को शाहजी की शंका बतायी तो वह बड़ी देर तक हँसती रही थी। "कहीं तुमने यह तो नहीं कह दिया उससे कि शरीर का तो नहीं मन का यही रोग है मुझे ! ऐसी गलित आत्मा की बीभत्स रोगिणी को जानने पर शायद शाहनी दूसरे ही दिन झाड़ू मारकर भगा देगी। रोज़ी न होती तो कैसे वह रह पाती ? प्रायः यही सोचती पन्ना कभी-कभी बौखला उठती। क्या चाहने पर बड़ी दी उसका पता नहीं लगा सकती थीं ? तीन महीने में दो बार वह बैंक से अपने सूद का रुपया मँगवा चुकी थी, बैंक मैनेजर लाहिड़ी बाबू को बड़ी दी के रूप के पाचक के बिना एक दिन भी खाना हज़म नहीं होता था। क्या उस बैल की सी आँखोंवाले तोंदियल लाहिड़ी ने बड़ी दी को कुछ नहीं बताया होगा ?

उस उपालम्भ के आँसू स्वयं ही पन्ना की आँखों में सूखकर रह जाते।

"हममें से कौन किसकी सगी बहन है पन्ना ?" बड़ी दी ने ठीक ही कहा था। सगी होती तो क्या उसे ऐसे छोड़ देतीं बड़ी दी ? एक दिन सन्ध्या को वह नये बँगले की लक्ष्मण-रेखा पार कर बड़ी चेष्टा से घूमने निकली। भटकती न जाने कैसे डॉ. पैद्रिक के बँगले में पहुँची तो डॉक्टर काठ की कुरसी में बैठी, अपने किसी मरीज़ के लिए बिना अँगुलियों का दस्ताना बुन रही थीं। यही उनका प्रथम परिचय था। इसके बाद तो वह एक दिन भी घर नहीं रही थी। प्रसवकाल निकट आने पर डॉ. पैद्रिक की उपस्थिति उसके लिए वरदान सिद्ध हुई।

"चालीसवें वर्ष में यह अनहोना प्रथम प्रसव मुझे क्या जीती छोड़ेगा डॉक्टर ?" पन्ना ने कुछ ही दिन पहले हँसकर पूछा था।

डॉ. पैद्रिक ने उसे तो बचा लिया था, पर दूसरे को नहीं बचा पायी थी। कुछ ही पलों तक देखने पर भी उसका एक-एक नैन-नक़्श पन्ना को कण्ठस्थ हो गया था। तेजस्वी नरसिंह-से पिता के जैसा ही चौड़ा माथा, वैसी ही कमान-सी भृकुटि, और वैसी ही तरल आँखें ! ठीक से निहार भी नहीं पायी थी कि बिस्तरे पर पड़ी नन्हीं देह असह्य यन्त्रणा से ऐंठने लगी। आँखें टेढ़ी होकर खिचती-खिचती सहसा स्थिर होकर रह गयी थीं।

नौ महीने तक सही मानसिक और शारीरिक व्यथा का कैसा क्षणिक अन्त होकर रह गया था !

"पन्ना," रोज़ी के गम्भीर स्वर ने उसे एक बार फिर चौंका दिया, "मैं निश्चिन्त होकर अब चलूँ पन्ना ?"

"नहीं रोज़ी," पन्ना ने सोती बच्ची को उठाकर डॉक्टर की ओर बढ़ा दिया, "अब किसी मोह के बन्धन में नहीं पड़ूँगी। तुम यह मत सोचना रोज़ी कि मैं इसके पैतृक रोग के भय से इसे नहीं ग्रहण कर पा रही हूँ, पर तुम मेरी विवशता जानती हो। सिवा बड़ी दी के मेरा और कोई नहीं है। मुझे वहीं लौट जाना होगा, और वहाँ लौटकर मैं एक बार फिर उसी दलदल में डूब जाऊँगी, जहाँ आज तक डूबी थी। अपने साथ-साथ इस निर्दोष बच्ची को भी उसी दलदल में डुबो दूँ, क्या यही चाहती हो तुम ?"

"पन्ना, मैं यह सब पहले ही सोच चुकी हूँ। मिशन में रहने पर यह एक न एक दिन अपने जन्म के इतिहास को जान लेगी और वह दिन इसके लिए बहुत सुख का नहीं होगा। तुम्हारे पास रहने पर यह तुम्हारी ही पुत्री के रूप में पलेगी। फिर कीचड़ के दलदल में भी कमल उग सकता है पन्ना ! ज़रूरी नहीं है कि तुम इसे अपने ही पास रखो। तुम समर्थ हो, चाहने पर इसे अच्छे से अच्छे बोर्डिंग स्कूल में रख सकती हो। छुट्टियाँ होने पर इसे साथ लेकर मेरे पास भी आ सकती हो पन्ना !"

दो

पन्ना अपलक दृष्टि से बच्ची को देख रही थी। कैसे सुन्दर घने बाल थे और कैसी बड़ी-बड़ी आँखें। लगता था गर्भ से ही अंजन आँजकर आयी है, बड़ी दी कितनी प्रसन्न होंगी इसे देखकर! एक बार उनकी बंगाली दासी खुदू, अपनी पोती को लेकर आयी थी तो पूरी पीली कोठी की सत्रह मातृहीना सुन्दरियों का मातृत्व तड़प उठा था। कोई उसे उठाकर पागलों की भाँति चूमती, कोई उसके बालों के छल्लों में कलिंग पिन्स लगाती—चीनी सुन्दरी ली वांग ने तो उसके लिए दो रेशमी झब्बे भी सिल दिये थे और बड़ी दी उसे बग़ल में लिटाकर लिहाफ़ ओढ़कर सो गयी थीं, कितने ही रेशमी झबले, सोने के कड़े, लॉकेट, नन्हें गद्दे, दूध पीने की शीशी और झुनझुने लेकर खुदू की पोती घर लौटी थी, उस प्रत्यागमन के मातम में उस दिन पीली कोठी के द्वार प्रत्येक अतिथि के लिए बन्द रहे थे।

"लाओ रोज़ी, मैं इसे लेकर आज ही चली जाऊँगी," एक ही पल में निश्चय कर पन्ना ने डॉ. पैद्रिक की गोदी से बच्ची को लेकर एक बार फिर छाती से लगा लिया।

कृतज्ञता से विह्वल, डॉ. पैद्रिक के कण्ठ से एक शब्द भी नहीं फूटा, ऐसी आनन्दानुभूति उन्हें पहले कभी नहीं हुई थी, तब भी नहीं, जब रोग से नुची-खुची वीभत्स बन गयी रोगिणियाँ, नवीन अंगों की नयी बनावट से स्वयं ही आश्चर्य-स्तब्ध हो, कृतज्ञता से उस जीवनदात्री के चरणों में लोट-लोट गयी थीं, हाथ की बरसाती कन्धे पर डाले, डॉक्टर चुपचाप बाहर निकल आयीं, इस स्वर्गिक क्षण को वे अब कुछ कहकर नष्ट नहीं होने देंगी, उसी सन्ध्या को वे स्वयं पन्ना को विदा दे आयी थीं, जितना ही जल्दी पन्ना जा सके, उतना ही श्रेयस्कर था, असदुल्ला को वे जानती थीं, लुक-छिपकर ताक-झाँक करनेवाला वह पठान उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाता था। आश्रम से तो वह कब का जा चुका था, पर वह कब, कहाँ और कैसे छिपा बैठा है, कोई नहीं जान सकता था।

पन्ना ने अल्मोड़ा का पता देकर रुपये मँगवाये हैं यह सब माणिक सुन चुकी थी, पर उस ज़िद्दी छोकरी को वह अभी भी क्षमा नहीं कर पायी थी। उसे लेकर राय काका के सम्मुख लज्जित नतमुख खड़ी रह गयी थी वह! उनके एक सामान्य-से अनु-

रोध की भी वह रक्षा नहीं कर पायी थी। ठीक हैं, अब भुगते अपनी करनी ! सोच रही होगी बड़ी दी भागती-भागती मनाने आयेंगी, रानी रूठेगी अपना सोहाग लेगी ! आखिर कितने दिन चलेगा सूद का रुपया, एक न एक दिन उसे बड़ी दी की ही शरण में लौटकर आना होगा। पन्ना के अकस्मात् रूठकर चले जाने से माणिक की कोई क्षति न हुई हो, ऐसा भी नहीं था, बढ़ती वयस के चिह्न, पन्ना के अपूर्व चेहरे की कान्ति को तनिक भी मलिन नहीं कर सके थे, जहाँ माणिक के बालों की सन्दिग्धतापूर्ण कालिमा, देखनेवाले को कुछ ही देर के लिए छल पाती, वहाँ पन्ना के घने काले बालों में किसी प्रकार के छल-कपट की मरीचिका नहीं थी, न उस चिकने चेहरे पर कोई झुर्री ही आयी थी, स्वच्छ दन्त-पंक्ति में पान दोख्ते का एक धब्बा भी पन्ना ने नहीं लगने दिया था, दिन-रात कत्थक नृत्य की कठोर घुरनियों ने, छिपछिपि गठन को इंच-भर भी इधर-उधर नहीं होने दिया था, शान्त चेहरे पर कलुषित पेशे के धुँधले हस्ताक्षर ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते थे। जैसे किसी सुखी गृहस्थी की जीवित विज्ञापन-सी कोई लक्ष्मी-स्वरूपा गृहिणी ही उनके सम्मुख बैठी हो, ऐसा ही उसके अनन्य उपासकों को सर्वदा बोध होता। किसको विदेशी तीव्र मादक सुगन्ध रुचती है, किस संयमी प्रेमी को मोतियों की हलकी गमक पसन्द है, कौन आमिष भोजी है, किसे वैष्णव निरामिष भोजन पसन्द है, कौन उसे भड़कीली साड़ी पर दमकते-चमकते पेशवाज़ में देखना चाहता है, और कौन उसकी लाल पाड़ की गरद की साड़ी-मण्डिता भव्य मूर्ति का उपासक है, सब कुछ उसे स्मरण रहता। इसी से उसके प्रेमियों को सर्वदा एक लम्बे क्यू में खड़े रहना पड़ता। एक लाल फ़ेल्ट से बँधी डायरी में, उसके सेक्रेटरी दुलाल बाबू सबके एपाइण्टमेण्ट की तिथि दर्ज करते जाते। केवल एक ही ग्राहक के लिए इस डायरी में लिखी तिथि का कोई महत्त्व नहीं था। कुमिल्ला के प्रख्यात ज़मींदार विद्युत रंजन मजूमदार, जब चाहें तब पन्ना की पूर्व-निर्धारित तिथियों में उलट-फेर करा सकते थे। पन्ना का उनसे प्रथम परिचय राजभवन के एक जलसे में हुआ था। पन्ना के सुमधुर कण्ठ, अपूर्व सौन्दर्य और बंकिम कटाक्षों की चर्चा उन दिनों सम्पूर्ण बंगाल में फैल चुकी थी। सम्भ्रान्त, कुलीन ब्राह्म गृहों में भी, ब्राह्मोत्सव में उसे विशेष सम्मान सहित आमन्त्रित किया जाता।

'ओ अनाथेर नाथ, ओ अगतिर गति
ओ अकूलेर कूल ओ पतितेर पति'

माघोत्सव में भावविभोर होकर पन्ना ने गाया, तो सुननेवालों की आँखों में आँसू छलक आये थे, क्या गुरुदेव ने यह पंक्ति उसी के लिए लिखी थी ? यह उस पतिता के कण्ठ का जादू था या पंक्तियों का ?

शायद अनुपम कण्ठ-स्वर पंक्तियों से मेल खाकर एकाकार हो गया था।

पन्ना का हेडक्वार्टर तब पटना में था। नेपाल के किसी राणा ने उस की माँ के लिए एक दर्शनीय कोठी बनवा दी थी, बड़ा-सा अहाता कटहल, आम और जामुन के पेड़ों से भरा था, एक ओर फ़र्रुखाबादी जामुन, मलीहाबाद के आम और मेदिनीपुर से काजू के पेड़ ला-लाकर लगाये गये थे, दूसरी ओर फूलों से सुवासित उद्यान में संगमरमर के फ़व्वारे, वीनस की मूर्ति, पीतल के काठियावाड़ी हिंचकों की छटा देखने दूर-दूर से पन्ना की माँ के विदेशी अतिथि दिन-रात आते रहे।

पन्ना की माँ का नाम था मुनीर। देखने में असाधारण रूपवती न होने पर भी उस रोबदार पेशेवर महिला का, सर्वोच्च विदेशी समाज में उठना-बैठना लगा रहता।

उसके मांसल कण्ठ की त्रुटिहीन अँगरेज़ी सुनकर बड़े-बड़े भारतीय अफ़सर दंग रह जाते, जिसके हाथ में देश की सत्ता थी, उस ललमुँही जाति को जीतने से पहले उनकी भाषा सीखनी होगी, यह मुनीर भली-भाँति समझती थी, दो-दो गवर्नेस एक साथ रखकर उसने उनकी भाषा की सरस्वती स्वयं ही अपनी जिह्वा पर खोदकर रख ली, विदेशी समाज का कोई भी जलसा क्यों न हो, मार्डन पार्टी या लाट साहब की पिगस्टिकिंग पार्टी का खेमा, पोलो-प्रदर्शन या लाट की मेम का बज़ार, गहनों से झलमलाती, पान के बीड़े से ऊँचे कपोलों को कुछ और ऊँचा उठाये, मुनीर मेज़बान की कुरसी से सटी बैठी रहती। उर्दू, हिन्दी और अँगरेज़ी, तीनों भाषाओं पर उसका समान रूप से अधिकार था, एक बार उसके विदेशी प्रेमी डिकी ने, उसे हँसी-हँसी में 'बेगम समरू' कहकर पुकारा तो वह भड़क उठी थी—"इट इज़ नॉट ए कम्पलीमेण्ट डिकी," उसने कहा था, "क्या तुम नहीं जानते बेगम समरू देखने में कैसी थी? एकदम साधारण, और क्या तुम चाहते हो कि बेगम समरू की ही भाँति मैं भी अपने विदेशी प्रेमियों को ठोकर मारती फिरूँ?" डिकी दंग रह गया था, इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष सब कुछ पढ़ने के लिए समय कहाँ से मिल जाता था उसे! तराई में कहाँ बड़ा गेम मिल सकता है, किस झील की मुर्ग़ाबियाँ और बतखें प्रसिद्ध हैं, सब कुछ जानती थी वह। यही नहीं, उसकी बनायी कॉकटेल की एक-एक अमृत-स्वरूपी घूँट के लिए कितने ही समृद्ध विदेशी अहंवादी घुटने ज़मीन पर टेककर रह जाते, छोटे-से क़द की गुदगुदे हाथ-पैरवाली वह गुड़िया-सी प्रौढ़ा, निकट आने पर भी पन्द्रह वर्ष की किशोरी-सी दीखती, मुनीर की तीन पुत्रियाँ थीं, बड़ी माणिक, जिसकी छोटी नाक, छोटी आँखें और सामान्य-सी ही बात पर ओठों पर थिरकनेवाली हँसी की एक-एक रेखा, अपने राजवंशी पिता राणा से मिलती थी, बाप की दुलारी और माँ की मुँहलगी माणिक स्वभाव से ही क्रूर, ज़िद्दी और अहंकारी थी।

दूसरी थी हीरा—नाम के विपरीत रूप प्रदान कर विधाता ने उससे निश्चय ही एक क्रूर परिहास किया था। माँ ने उसके जन्मते ही घृणा से मुँह फेर लिया था। छि-छि, रंग था कि एकदम आबनूस, घुँघराले छोटे-छोटे बाल, चिपटी फैली नाक, और मोटे लटके ओठ।

उसी को लेकर राणा और मुनीर के सम्बन्ध सदा के लिए टूट गये थे, राणा अपनी तीन-तीन रूठी रानियों को मनाने स्वदेश चला गया था।

"यह लड़की मेरी नहीं है," वह गरज-गरजकर चीखता रहा था—"आखिर उतर आयी न अपनी ज़ात पर! क्या मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी न समझ पाऊँ कि इसका बाप कौन है?"

मुनीर एक शब्द भी नहीं कह सकी, कहती भी क्या? लाट साहब के बेटी-दामाद उसके अतिथि होकर आये, तो उनके साथ आया था उनका रावण-सी देह और महिषासुर के से चेहरेवाला भयानक हब्शी भृत्य रौबी। ऐसा डरावना चेहरा कि अँधेरे में कोई देख ले, तो भय से मूर्छित होकर गिर पड़े। पर आहा, क्या गला था उसका! अपने भारी मांसल कण्ठ से उसने 'वीप नो मोर माई लेडी, ओह वीप नो मोर टुडे!' गाया तो मुनीर सिसकियाँ लेकर रोने लगी। यही गाना गाता था उसका प्रथम विदेशी प्रेमी—नीली आँखों और सुनहले बालों से मण्डित सुभग व्यक्तित्व का स्वामी एन्थॅनी। अठारह वर्ष की सुन्दरी मुनीर ने इसके उमड़ते प्रेमोदधि में पहली डुबकी इसी विदेशी के साहचर्य में ली थी। कैसे उसे अपने साथ विदेश ले जायेगा, कैसे विदेशी मेमें उसके सौन्दर्य और सौभाग्य को देख जल-भुनकर मर जायेंगी—सुनती मुनीर आनन्द-विभोर हो उठती। पर एक दिन उसके कल्पना के युटोपिया को स्वयं एन्थॅनी ही तोड़-फोड़कर किसी बैरन की इकलौती पुत्री को ब्याहने विदेश चला गया। जीवन की उसी प्रवेशिका में अनुत्तीर्ण हुई थी मुनीर, इसी असफलता ने उसे उसके पेशे का प्रथम अनिवार्य पाठ पढ़ाया। उसके पेशे में लज्जा, क्षोभ एवं पश्चात्ताप के लिए कोई स्थान होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। धोखा, फ़रेब और निर्लज्ज आचरण—तीनों ही उसे चोटी पर पहुँचा सकते थे और वह पलक झपकाते ही एक दिन चोटी पर पहुँच गयी।

हब्शिन-सी हीरा तीन वर्ष की भी नहीं हुई थी कि मुनीर ने बनारस के हरिश्चन्द्र घाट के पास, अपने विदेशी मित्र के सजे-धजे बजरे में तीसरी पुत्री को जन्म दिया। अपने नवीन विदेशी प्रेमी के साथ वह ज़िद कर काशी के प्रसिद्ध बुढ़वा मंगल के मेले में चली आयी थी। तीसरी पुत्री का गौर वर्ण, नीली आँखें और सुन्दर सुनहले केश देखकर वह अपनी बदसूरत मँझली पुत्री के जन्म की सारी व्यथा भूलकर रह गयी थी। इससे सुन्दर तोहफ़ा उसके पेशे को और मिल ही क्या सकता था? एक तो पुत्री उस पर सुन्दरी! एक इसी सौन्दर्य की लाठी टेकती वह ऐश-आराम से अब अपना बुढ़ापा काट सकती थी।

"इसे सब देखते ही जान लेंगे कि इसका पिता कौन है। ध्यान रखना मुनीर, कहीं लाट साहब की नज़र इस पर न पड़े, मेरी नौकरी चली जायेगी, समझी?" दुष्टता से मुसकराकर रौबर्टसन ने मुनीर की गुदगुदी हथेली चूम ली थी।

लाट साहब का वह मनचला ए. डी. सी. अपने मोहक व्यक्तित्व और रंगीन

तबीयत के लिए यथेष्ट कुख्याति अर्जित कर चुका था। किन्तु ऐसा उदार और प्रेमकला में पटु प्रेमी मुनीर को आज तक नहीं मिला था, इसी से वह उसे सहज में छोड़ना भी नहीं चाहती थी। रौबर्टसन केवल एक उदार प्रेमी ही नहीं, आवश्यकता से अधिक उदार स्नेहालु पिता भी था। जितनी बार वह आता, उतनी ही बार पुत्री के लिए उसकी सुकुमार देह से भी भारी-भारी गहने गढ़वा लाता। पर पिता का यह लाड़ पन्ना को चार ही महीने मिल पाया। उस सुदर्शन खलकामी विदेशी की बाँहों में केवल यही सन्तान नहीं खेली थी। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, विभिन्न दिशाओं में उसकी नीली आँखों और सुनहले बालों के कई संस्करणों की सृष्टि हो चुकी थी। धीरे-धीरे उसकी दुष्कीर्ति की कहानियाँ एक दिन उसके प्रभु के कानों तक पहुँच गयीं। अनुशासन-प्रिय कठोरहृदय लाट साहब ने उसे कुछ ही घण्टों में भारत छोड़कर चले जाने का आदेश सुनाया, और एक बार फिर मुनीर की तीसरी पुत्री भी समृद्ध पिता के रहते ही पितृहीन हो गयी।

रंग, रूप और स्वभाव में सर्वथा विभिन्न तीन-तीन पुत्रियों को पालने का भार मुनीर के कन्धों पर पड़ा तो वह तनिक भी विचलित नहीं हुई। उनके लालन-पालन में वह रियासती रानी रजवाड़ों की परम्परा निभाने लगी। "ये तीनों, मेरे तीन आई. सी. एस. बेटे हैं," वह बड़े गर्व से अपने नवीन प्रेमी ब्रिटिश रेज़िडेण्ट से कहती। "यह ठीक है कि हीरा सुन्दरी नहीं है, पर काले रंग पर तुम विदेशी कैसे मर-मिटते हो, यह मुझे पता है। एक दिन इसका यही काला रंग इसे तुम्हारे समाज में हीरे के मोल बेचेगा।" स्विस गवर्नेस, मिसेज़ विंसेण्ट ने तीनों को अँगरेज़ी अदब-क़ायदों की पॉलिश से ऐसे चमकाकर रख दिया था कि बड़े-बड़े ताल्लुक़ेदारों के यहाँ विदेशी अतिथियों के सम्मान में कोई भी जलसा होता, तो मुनीर की तीनों पुत्रियों को विशेष रूप से आमन्त्रित किया जाता। पर मुनीर जान-बूझकर ही तीनों को घर ही पर छोड़, कुछ न कुछ बहाना बना देती। जिन मुजरों में मुनीर के आते ही सैकड़ों मुग्ध दृष्टियों के नुकीले बाण उसे बींधने लगते, वहाँ क्या यह सम्भावना सदा नहीं बनी रहेगी कि एक-आध बाण उसकी निर्दोष किशोरी पुत्रियों को भी असमय ही बींध डाले! फिर तीन-तीन समझदार पुत्रियों के सम्मुख वह कभी भी अपना स्वाभाविक अभिनय नहीं कर पाती थी।

सोलह वर्ष की ही उसकी बड़ी पुत्री माणिक की नेपाली आँखों में संसार की कुटिल चालों की स्पष्ट वर्णाक्षरी, छापे के सुघड़ अक्षरों-सी ही स्पष्ट हो उठी थी। पुरुष को किस वंकिम कटाक्ष के मैग्नेट से खींचा जाता है; कैसे एक बार रेशमी पलकों को उठा, बिजली की गति से झपकाकर, बन्दी बनाया जा सकता है; फिर एक ही उदासीन दृष्टि की बिजली गिरा सदा के लिए तड़पते छोड़ा जा सकता है; किस मृत्युंजयी आम-

न्त्रणपूर्ण दृष्टि से, कैसे कठोर से कठोर हृदय पुरुष के कठिन व्यक्तित्व पर अपनी सील मुहर लगायी जाती है, यह सब कुछ माणिक ने सीख लिया था। यह कोई रटा-रटाया पाठ नहीं, स्वयं उस विलक्षण बालिका की ही जन्मजात प्रतिभा है, यह मुनीर समझ गयी थी। उसे स्वयं अपने दिन याद आते। प्राणपण से की गयी चेष्टा के फलस्वरूप ही वह आज इस सिंहासन पर बैठ सकी थी। आत्मग्लानि से तड़प-घुटकर कितनी विवशता से वह चीनी वर्णाक्षरी-सी दुरूह, प्रेम की यह बारहखड़ी सीख पायी थी। चाबुक-हण्टर की मार के साथ पढ़ाये गये, अपनी अभिशप्त जीवन-पुस्तिका के एक-एक परिच्छेद का स्मरण करते ही वह सिहर उठती। और उसी के रक्त-मांस से बनी उसकी सुन्दरी पुत्री, जिसे अभी तक वह सब के सामने टब में नंगी नहलाती, उसकी बाल-क्रीड़ाओं से सब का मन मोह लेती थी, आज अचानक कैशोर्य की सीढ़ी पर बिना पैर धरे ही, यौवन-शिखर पर खड़ी मुसकरा रही थी।

काली कुत्सित हीरा दिन पर दिन और बदसूरत होती जा रही थी। उसके घुँघराले बाल काले षटपद के टेढ़े-मेढ़े पैरों की भाँति ही भयावने बने, दिन-रात तेल ठोंकने पर भी इंच-भर नहीं बढ़ पाये थे। चेष्टा करने पर भी मुनीर उसे कभी माँ का प्रेम नहीं दे पायी और शायद इसी लिए वह मातृ-प्रेम-वंचिता शान्त बालिका बुरी तरह हकलाने लगी थी। पन्ना को पुकारने में वह कभी नहीं हकलाती थी, वह उसकी बहन ही नहीं, एकमात्र हमजोली भी थी, पर क्रूर-हृदया माणिक को कभी पुकारने का अवसर आता और वह मा मा मा कह हकलाती लाल पड़ जाती तो माणिक अपनी रूखी हँसी से उसे बुरी तरह मसल देती, "चुप भी कर कलिया, मा मा मा किये जा रही है कल्लो परी!"

पन्ना, पलटकर उसका मुँह नोंच लेती, "तुम्हें शर्म नहीं आती बड़ी दी, अपनी सगी बहन से यह सब कहते।"

"ओ, इनडीड!" निर्लज्जता से हँस, माणिक अपना सफ़ेद अँगूठा दिखाकर कहती, "सगी? हम तीनों में से कौन किसकी सगी है, बता तो ज़रा?"

सगी न होने पर भी माणिक और पन्ना के सर्वथा भिन्न चेहरों में भी आश्चर्य-जनक रूप से साम्य था। दोनों की सुतवा नाक, उठे कपोल, उठने-बैठने, हँसने और चलने की भंगिमा देखते ही कोई अपरिचित भी बता सकता था कि दोनों बहनें हैं।

अठारह वर्ष में ही माणिक और पन्ना की सौन्दर्य ख्याति, मृगनाभि की कस्तूरी की गमक-सी छिपाये नहीं छिपती थी। सौन्दर्य के अतिरिक्त दोनों बहनों के सुमधुर कण्ठ का जादू बड़े-बड़े संगीत-पारखियों को झुमाने लगा। बचकाने कण्ठ से गायी गयी दुरूह ध्रुपद, धमार की आड़ी चौगुन लयकारी, उन अनाड़ी विदेशियों को भी मन्त्रमुग्ध कर देती, जिन्हें संगीत की बारहखड़ी तक नहीं आती थी।

मुनीर दोनों पर कड़ी निगरानी रखती थी। प्रत्येक मुजरे में वह स्वयं उपस्थित रहती। मजाल थी कि कोई उन्हें एक बीड़ा पान-का तो बिना उसकी अनुमति के खिला

दे ! अपनी पेशेवर हमजोलियों के नीच स्वभाव पर उसे रत्ती-भर भी विश्वास नहीं था। क्या पता, क्यों कभी ईर्ष्यावश उसकी कण्ठ की दोनों जादूगरनियों को पान के बीड़े ही में, काँच या पारा पीसकर खिला दें ! काम इतना बढ़ गया था कि मुनीर पुत्रियों सहित दिन-रात लाट-कमिश्नर के-से दौरों पर बाहर ही रहती। एक बार ऐसे ही एक ताल्लुक़ेदार की पुत्री के विवाह में मुनीर तीनों पुत्रियों को लेकर जा रही थी। इतने वर्ष बीत जाने पर भी पन्ना उस भयावह रात को नहीं भूल पायी थी। सामने आती साइकिल पर सवार, तीन सवारियों को बचाने में, कार में बैठे तीन प्राणियों की आहुति देनी पड़ी थी। राजा साहब का ड्राइवर, मुनीर और हीरा। पलक झपकाते ही सब कुछ हो गया था। कई दिनों तक पन्ना माँ के रक्त से सनी देह, हीरा का खप्पर-सा फटा माथा याद कर, नींद में चौंककर चीख उठती। बड़ी दी उसे अपने पलंग पर खींच छाती से लगा लेती।

"क्यों रोती है पन्ना, अम्मा चली गयी तो क्या हुआ, मैं तो हूँ।" और सच, बड़ी दी ने कितनी स्वाभाविकता से माँ का आसन ग्रहण कर लिया था। जिस पटुता से उन्होंने अम्मा का व्यवसाय सँभाल लिया, उसे देखकर घाघ कारिन्दे भी दंग रह गये। मुनीर की अनुपस्थिति में दोनों नादान किशोरियों को उँगली पर नचाने की उनकी समग्र योजनाओं पर तुषारपात हो गया। वहाँ तो बित्ते-भर की माणिक, उलटा उन्हीं को उँगलियों पर नचाने लगी। पुराने ग्राहक, पुरानी दूकान की नयी साज-सज्जा, चमक-दमक, सुरुचिपूर्ण व्यवस्था देखकर परम सन्तुष्ट थे। त्रुटिहीन सेवा के उत्तरोत्तर दाम चुकाने में उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं थी। यही नहीं कभी-कभी तो अतिथियों की संख्या अकस्मात् ही इतनी बढ़ने लगी कि व्यवसाय-पटु माणिक को अपने विदेशी अतिथियों की परिमार्जित रुचि का विशेष ध्यान रख, चीनी, जापानी एवं बरमी परिचारिकाओं की नियुक्ति भी करनी पड़ी। उनके कुटिल मस्तिष्क की कुचालों और दिन-रात की कलह से, कभी-कभी पन्ना ऊब उठती, पर माणिक अपनी उन दर्शनीय कठपुतलियों को बड़े चातुर्य से नचाती, उठाती, गिराती रहती। अब वह स्वयं बहुत कम बाहर जाती थी। बड़ी अनिच्छा से पन्ना ही को रियासती यजमानी निभाने इधर-उधर जाना पड़ता।

ऐसे ही एक जलसे में उसका परिचय विद्युत रंजन से हुआ था। युवा विद्युत रंजन इन्दौर के राजकुमार कॉलेज का प्रतिभाशाली छात्र रह चुका था। पिता थे बंगाल की एक छोटी-सी रियासत के राजा, और माँ थी सौराष्ट्र की काठीवंश की राजकन्या। विलासी पिता का स्वभाव एवं माँ की अनुपम लम्बी-चौड़ी सुगठित देह ही विद्युत रंजन को विरासत में मिली थी। पन्ना को पहली ही दृष्टि में देखकर, विद्युत रंजन मुग्ध हो गये थे। माँ के भय से, वर्षों तक प्रणय का आदान-प्रदान लुक-छिपकर ही चलता रहा

था। कई महीनों तक वह पीली कोठी में पड़ा रहता, किसी को कानों-कान खबर नही लगने पाती, पर एक दिन न जाने कैसे, दबंग चतुर माँ के छिपे गेस्टापो उसे पकड़ ले गये। रातो-रात, दक्षिण की किसी बड़ी रियासत की साँवली राजकन्या से उसके फेरे भी फिरवा दिये गये। पर नवेली बहू की दक्षिणी आँखें, साँवला-सलोना चेहरा और माँ का कठोर अनुशासन भी विद्युत रंजन को बहुत दिनों तक नहीं बाँध सका। जहाँ-जहाँ पन्ना जाती, वह उसकी छाया बना घूमता फिरता। कभी-कभी माणिक पन्ना की अल्प बुद्धि पर झुँझला उठती। इस पेशे में भला एक ही व्यक्ति से ऐसे बँधकर काम चल सकता है ?

"तेरा प्रेमी तो किसी राजनीतिक दल का नेता भी है ना, री ? फिर भी वह क्यों नहीं समझता ? उसका और हमारा पेशा तो बहुत कुछ एक ही-सा है ?" माणिक कहती।

विद्युत रंजन बड़ा ही दूरदर्शी व्यक्ति था। वह जान गया था कि एक न एक दिन ललमुँहे सत्ताधारियों को सोने की चिड़िया का मोह त्याग कर, अपने यूनियन जैक का ही कफ़न ओढ़ना होगा। इसी से उसने विदेशी वेशभूषा का स्वेच्छा से ही त्याग कर, खद्दर के धोती-कुरते का परिधान ग्रहण कर लिया था, पहले दिन वह बगुले के पंख-सी सफ़ेद मोटी धोती, कुरता और जवाहरकट वास्कट पहनकर आया तो माणिक़ ने उसका उठना-बैठना दूभर कर दिया था।

"लो, सत्तर चूहे खाकर हमारी पन्ना का बिल्ला हज करने जा रहा है। मियाँ, ये टोपी तो रहने दी होती," सारंगी की गज़ में उसकी नुकीली टोपी को उसने ऐसे लटका लिया था जैसे मरी चिड़िया हो। पर आज उस टोपी ने विद्युत रंजन को महिमामय पद पर पहुँचा दिया था। एक बार की जेलयात्रा उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन गयी थी।

उस व्यक्ति के कुटिल स्वार्थी स्वभाव को पन्ना नहीं पहचानती थी, ऐसी बात नहीं थी। वह यह भी जानती थी कि उसकी सोने के अण्डे देनेवाली बतख-सी पत्नी, अपनी एक-एक बार की मायके यात्रा से अशर्फ़ियाँ-भरी थैलियाँ लेकर लौटती है। इधर पाँच ही वर्ष में पति को एक स्वस्थ पुत्र एवं दो सुन्दरी पुत्रियाँ देकर उसने अपनी गृहस्थी की नींव ठोस बना ली थी। फिर भी लाख चाहने पर भी पन्ना उसके जादुई व्यक्तित्व से सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर पायी थी। दोनों में ठनकती तो कभी-कभी पन्ना के जी में आता, उसकी छाती पर चढ़कर अपने उस अहंकारी दम्भी प्रेमी का गला घोंटकर रख दे। पर दूसरे ही क्षण उसके आलिंगन पाश में वह अपना क्रोध, कलंक और अपमान भूलकर रह जाती। पर आज, बीस वर्षों से अडिग अड़ा प्रेम का आलीशान महल, दुर्भाग्य के एक ही भूकम्पी धक्के में भरभराकर गिर गया था। वह हृदयहीन व्यक्ति उसे दुर्दिन के ज्वार-भाटे में डूबने-उतराने अकेली ही छोड़ कहीं दूर खिसक गया था।

प्रथम यौवन के गरजते-तरजते समुद्र में जब दोनों समय की पतवार दूर पटक, मस्ती से डगमगाती तरणी में तैरते, आधा फ़ासला पार कर चुके थे, तब मँझधार में ही तूफ़ान का आभास पाकर कुशल तैराक कर्णधार कूदकर तैरता किनारे से लग गया था। रह गयी थी केवल डूबती तरणी और भय से काँपती निराधार सहचरी। चालीसवें वर्ष में पन्ना माँ बनेगी। इसी हास्यास्पद परिस्थिति की व्रीड़ा से वह स्वयं ही संकुचित होकर, ज़मीन में गड़ गयी थी। कैसी विडम्बना थी? कैसे कहेगी बड़ी दी से? क्या कहेंगी बड़ी दी और विद्युत रंजन? पाँच महीने तक पन्ना ने किसी से कुछ नहीं कहा। उसकी सपाट छरहरी देह को देखकर, कोई अनुभवी ही शायद उसकी अवस्था का अनुमान लगा सकता था, पर वहाँ अनुभव ही किसे था। उधर माणिक अपने दलबल को लेकर अजमेर शरीफ़ के उर्स में चली गयी थी। जाने से दो दिन पूर्व दोनों बहनों में ठनक भी गयी थी। पन्ना के जयपुरी घराने के कत्थक नृत्य की प्रसिद्धि तब दूर-दूर तक थी। माणिक की माँ के एक पुराने मित्र ने फ़रमाइश की थी कि उनके नवासे के मुण्डन में पन्ना अपना वही बहुचर्चित नृत्य प्रदर्शित करे—

'बालम मेरो भोलो रे
मैं किस पर करूँ गुमान'

जिसे देखकर उन्होंने उसे बहुत पहले शुतुर्मुर्ग़ के अण्डों के से मोतियों की माला स्वयं पहना दी थी।

पर पन्ना ने जीवन में पहली बार अपनी रौबदार बड़ी दी की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया, "नहीं बड़ी दी, इस बार मैं कहीं नहीं नाच सकूँगी, तुम रोशन को भेज दो।"

"क्या? दिमाग़ ख़राब हो गया है तेरा? जानती नहीं कि हमारी साल-भर की रसद—दूध, दही, घी—कहाँ से आता है? कितना मानते आये हैं राय काका। आज उन्हीं ने एक सामान्य-सा अनुरोध किया और तू नाच नहीं सकेगी?"

"नहीं बड़ी दी," पन्ना गिड़गिड़ाने लगी थी, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे इस बार माफ़ कर दो, मैं नहीं नाच सकूँगी—"

"क्यों री, तबीयत तो खराब नहीं कर बैठी कहीं?" बड़ी दी की सन्दिग्ध दृष्टि ने उसके पेट की आँतों का भी जैसे एक्सरे लेकर रख दिया था। काश, पन्ना ने वह सुअवसर नहीं गँवाया होता! बड़ी दी से तब ही खुलासा कर देती तो शायद बात का बतंगड़ भी न बनता।

"नहीं बड़ी दी, ऐसी कोई बात नहीं है" उसने कह दिया था।

"तब? तब क्यों नहीं नाचेगी भला? क्या तेरे आक़ा ने नाचने-गाने की मनाही कर दी है? अगर ऐसी बात है बहन," एक लम्बी साँस खींचकर माणिक ने उसे बाँहों में भर लिया था, "तब तो उससे साफ़-साफ़ कह देना, हमारी अंचल-ग्रन्थि क्या एक ही पुरुष के चदरे से बँधी रह सकती है? वह तो हर पल, हर छिन खुल-खुलकर

नये-नये चदरे की गाँठ से बँधती रहती है। हम हर चादरें की गाँठ के साथ ऐसे ही खिंची चली गयीं तो हो चुका!"

पन्ना सिर झुकाकर रोने लगी थी। ओह, तो विद्युत रंजन ने ही मना किया होगा समझी थी माणिक।

"ग्राहक कितना ही समृद्ध क्यों न हो पन्ना," वे अनुभवी मँजे स्वर में कहने लगी थीं, "समझदार दूकानदार क्या उसी एक ग्राहक के भरोसे अपनी दूकान चलाता है? तू कुछ मत कहना, मैं बातें कर लूँगी विद्युत रंजन से। बड़े आये हैं हुकुम चलाने वाले। आधी उमर बीत गयी, अब हमें सतवन्ती बनाने चले हैं।" पर माणिक जितनी ही मीठी बातों से उसे फुसलाती, वह उतनी ही अकड़ती गयी। अन्त में माणिक भी धैर्य खो बैठी। ऐसी निरर्थक बिनती-चिरौरी का उसे अभ्यास नहीं था।

"ठीक है," वे पन्ना के सम्मुख तनकर खड़ी हो गयी थीं। "तुम्हें मेरे साथ रहना है तो रुद्राक्ष की माला जपकर नहीं रह पाओगी। कल ही अपने विद्युत रंजन के साथ चल दो। मैं भी देख लूँगी कैसे वह तुम्हारा अधेड़ अँगूठा पकड़ा है। सत्रह को राय काका के नवासे का मुण्डन है, पन्द्रह को मैं लौटूँगी। तबतक तुम्हें निश्चय कर लेना होगा। या तो तुम मुजरे का बयाना स्वीकार करोगी, या मेरी कोठी खाली कर दोगी। समझी? कोठी किसकी है, तुमसे छिपा नहीं है।" अपना अन्तिम अचूक बाण मर्म-स्थल पर लगा देख, वे अकड़कर अपने कमरे में चली गयी थीं।

कोठी किसकी थी, यह पन्ना बीस साल पहले ही जान चुकी थी। माणिक के राणा पिता ने कोठी बनते ही उसे अपनी पुत्री के नाम कर दिया था। शायद दूरदर्शी राणा बहुत पहले ही जान गया था कि मुनीर पर उसका सर्वाधिकार कभी सुरक्षित नहीं रह सकता। दूसरे दिन तड़के ही माणिक चाबी का गुच्छा छन्न से पटककर चली गयी थी। बड़ी दी को वह खूब पहचानती थी। लाख रूठें, लाड़ली बहन का वियोग क्या उन्हें सह्य होगा? आज तक एक आलाप भी वे क्या उसके बिना ले सकी हैं? फिर बड़ी दी ने उसके लिए क्या कुछ भी त्याग नहीं किया?

ढाका के प्रसिद्ध ज़मींदार रहमतुल्ला बड़ी दी के दिल्ली दरबार के प्रसिद्ध मुसाहिब थे। मुनीर की मृत्यु के तीसरे ही दिन वे बड़ी दी के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर आये थे और उनके लाख सिर पटकने पर भी बड़ी दी राज़ी नहीं हुई थीं। विधुर रहमतुल्ला के दर्शनीय व्यक्तित्व, अटूट वैभव और उदार सरल स्वभाव के सहारे बड़ी दी सम्भ्रान्त जीवन व्यतीत कर सकती थीं।

"मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाऊँगा माणिक, जहाँ किसी ने अगर तुम्हारी पिछली ज़िन्दगी का परदा उठाने की कोशिश भी की, तो मैं उसकी आँखें निकाल लूँगा," उन्होंने कहा था। और "क्या अपनी आँखें भी निकाल पायेंगे सरकार?" दुष्टता से मुसकराकर माणिक छोटी बहन के सामने ही रहमतुल्ला की गोद में सिर धरकर लेट गयी थी।

"मैं हमेशा के लिए तुम्हारी होकर 'बैतल मसूद' में आ गयी तो तुम्हीं दिन-रात मेरी जिन्दगी का परदा उठा-उठाकर झाँकते रहोगे, और फिर इसका क्या होगा भला ?" उन्होंने पन्ना को अपनी ओर खींचकर पूछा था।

"क्यों ? मेरी साली के लिए मेरी उतनी बड़ी हवेली में क्या एक कमरा नहीं जुटेगा ?" रहमतुल्ला की भूरी मूँछें सतर हो गयी थीं।

"बस मियाँ, रहे बुद्धू के बुद्धू ! यह चेहरा देखते हो ? यही मोल आँका इसका ? तुम्हारी हवेली के एक कमरे में तो इसके पैर की एक जूती भी नहीं समायेगी। ऐसी सुन्दरी बहन को दहेज में ले जाये, ऐसी मूर्ख नहीं है राणा की बेटी !" रहमतुल्ला उसी रात को रूठकर हैदराबाद चले गये और वहाँ से अपनी चचाज़ाद बहन को ब्याह लाये थे ! अपनी कमसिन् नवेली के लाड़ में डूबकर वे शायद बड़ी दी को हमेशा के लिए भूलकर रह गये थे।

पन्ना न होती तो शायद बड़ी दी आज बेगम रहमतुल्ला होती ? ऐसी स्नेही बड़ी दी से वह पन्ना इतना बड़ा कलंक छिपा क्यों गयी ? पन्ना गहरे सोच में डूबती-उतराती अपने कमरे में लेटी रही। दो-तीन बार आकर खानसामा खाने के लिए पूछकर लौट गया। पानी भी उसके कण्ठ के नीचे नहीं उतरा था। जितना ही वह सोचती, भविष्य का अन्धकार उतना ही भयावह बन उसे अपने में समेट लेता। दोपहर को विद्युत रंजन स्वयं ही न जाने कहाँ से टपक पड़े। बड़ी लड़की की ससुराल से तार पाकर भागते गये थे। दामाद की शिकार-यात्रा में हाथी के हौदे से नीचे गिरकर, हाथ की हड्डी टूट गयी थी। वहीं से लौट रहे थे। पटना में दूसरी गाड़ी के लिए उन्हें चार घण्टे रुकना था। पन्ना को बहुत दिनों से नहीं देखा था, सोचा एकदम पहुँचकर उसे अचरज में डाल देंगे। पन्ना की स्निग्ध हँसी, मधुर सम्भाषण और त्रुटिहीन सेवा, मनहूस यात्रा की सारी थकान दूर कर रख देगी। लेकिन पीली कोठी का सन्नाटा देखकर ही उनका माथा ठनक गया। न तबले की थाप, न घुँघरू की छनक, न मीठे गलों की हँसी। पता लगा, बड़ी दी लड़कियों को लेकर उर्स गयी हैं। छोटी दी हैं, तबीयत ठीक नहीं है। सुबह से बिना कुछ खाये-पीये दोमंज़िले में लेटी हैं।

विद्युत रंजन को सहसा सम्मुख खड़ा देखकर, पन्ना अपना यत्न से कण्ठस्थ किया पाठ भूल गयी।

क्या कहे ? कैसे आरम्भ करे ? सदा फूँक-फूँककर पैर रखनेवाली पन्ना, जो उद्दाम यौवन के प्रथम ज्वार-भाटे में भी चट्टान-सी दृढ़ खड़ी रही थी, आज वीतयौवना होकर कैसे ढलती वयस की सामान्य तरंगों में बह गयी।

"क्या तबीयत ठीक नहीं है पन्ना ?"

शायद विद्युत रंजन के नरम गले के प्रश्न ने ही उसकी रुलाई को उभाड़

दिया। वह सिसकियों के बीच सब-कुछ कह गयी। माणिक्क का कठोर आदेश कुछ ही दिनों का नोटिस दे गया था। "इसी बीच तुम्हें कुछ व्यवस्था करनी होगी। तुम नें एक वार कहा था ना कि तुम्हारी कहीं एक छोटी-सी शैटी है ? वही दे देना मुझे, वहीं पड़ी रहूँगी।"

"पागल हो गयी हो क्या ?" विद्युत रंजन ऐसे दूर छिटककर, कुरसी का सहारा लेकर खड़े हो गये, जैसे बिजली का झटका लग गया हो। "इसी महीनें मुनिया माँ बननेवाली है, चुन्नी की सगाई नरसिंहगढ़वालों से क़रीव-क़रीव पक्की हो गयी है। ऐसे में तुम्हें यह क्या सूझी ?"

"अच्छा ?" सदा शान्त रहनेवाली पन्ना क्रुद्ध शेरनी की भाँति उछलकर उसी के पास खड़ी हो गयी, "तुम्हारी एक बेटी माँ बननेवाली है, दूसरी दुल्हन, इसी से उस तीसरे की तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है, जिसे मैं ही नहीं, तुम भी इस संसार में ला रहे हो।"

"यह क्यों भूल जाती हो पन्ना कि इसे मैं ही नहीं, कोई और भी इस दुनिया में ला सकता है," इतना कहकर वह तीर-सा बाहर निकल गया था। पन्ना को जैसे पक्षाघात का झटका पंगु वना गया। न वह हिली, न डुली। देर तक वैसी ही खड़ी रह गयी। इतना वड़ा लांछन ? आज आठ वर्षों से बड़े से बड़ा प्रलोभन भी उसे नहीं डिगा पाया। केवल कण्ठ और नृत्य की बाज़ीगरी से ही ग्राहकों को सम्मोहित कर वह इतना कमा लेती थी कि शरीर को गिरवी रखने की न आवश्यकता ही थी, न इच्छा। विद्युत रंजन से वह कभी कुछ नहीं छिपाती थी, फिर भी इतने बड़े दुस्साहस से ऐसी कठोर वात वह कैसे कह सका ?

बड़ी दी उसे कितना समझाती रहीं, "पन्ना, तू तो समय से पूर्व ही रिटायर हो रही है री ! हमारा अनुभव ही तो हमारा मूल्य निर्धारित करता है, और फिर तू तो ज्यों की त्यों धरी है—अभी से क्यों कण्ठी पहन ली ?"

पर पन्ना ज़िद पर अड़ी रही थी, धीरे-धीरे बँधे ग्राहकों ने स्वयं ही उसकी आशा छोड़ दी। आज उसने बड़ी दी का कहना माना होता, तो वह भी इन आठ वर्षों में कलुषित धनराशि में कितने ही शून्य और बढ़ा सकती थी। आठ वर्षों में, विद्युत रंजन को छोड़ कोई पुरुष, उस की तर्जनी तक नहीं पकड़ पाया था। आज उसी का प्रेमी स्वयं अपने हाथों से उसके उजले, धुले चेहरे पर, कलुष की कालिमा पोत गया ?

घृणा, क्रोध और व्यथा से उसका सर्वांग थरथर काँप उठा। कहाँ जायेगी अब ? ऐसी अवस्था में बड़ी दी के यहाँ रहने में भी, दिन-रात अपमान की घूँट घुटकनी होगी।

बहुत पहले अम्मा उसकी रुग्ण मौसी को लेकर हवा बदलने के लिए अल्मोड़ा गयी थी। उन दिनों क्षय रोगियों को कैण्टोनमैण्ट की सरहद से बाहर रहना होता था। ब्राहटन कोर्नर के सीमान्त में विताये उन दिनों की स्मृति ही उसे वहाँ खींच ले गयी थी।

बैंक में उसका उदार विदेशी जर्नक उसके नाम जिस धनराशि को छोड़ गया था, उसे आज तक उस अदर्शी पिता के प्रति अभिमानवश ही उसने छुआ भी नहीं था। अब उसी के सहारे वह दिन काट लेगी। पर तब वह क्या जानती थी कि विधाता का क्रूर खिलवाड़ उसकी गोदी के धन को छीनकर, दूसरे की सन्तान से उसकी गोद भर देगा।

बड़ी दी को उस ने एक संक्षिप्त पत्र में ही सब-कुछ लिख दिया।

'बड़ी दी—

तुम सबके आशीर्वाद से मुझे कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई है। तुमने उस दिन कहा था ना, एक न एक दिन मुझे लौटकर तुम्हारी ही शरण में आना होगा। अब तुम्हारी शरण में दो प्राणी एक साथ आ रहे हैं—

तुम्हारी
पन्ना—

तीन

एक बार जी में आया, चिट्ठी फाड़कर फेंक दे—क्या बड़ी दी ही रह गयी हैं शरण देनेवाली? जहाँ नहीं चाहती थी वहीं नियति उसे बलि के बकरे-सी घसीट रही थी। उसके भविष्य में अब बचा ही क्या था! पर इन नन्हें प्राणों के स्पन्दन की क्या उसे कुछ भी चिन्ता नहीं है? सुदर्शन पठान पिता और पहाड़ी सुन्दरी माँ की पुत्री निश्चय ही एक दिन अपूर्व सुन्दरी होगी और नारी-सौन्दर्य की विलक्षण पारखी बड़ी दी उसे फिर क्या जाने देंगी?

और क्या पता रूठी बड़ी दी उसे लेने ही न आयें? पर पन्ना की चिन्ता व्यर्थ थी। वह पहुँची तो बड़ी दी अपने दलबल के साथ उसे स्टेशन पर लेने उपस्थित थीं। परिचित स्नेही चेहरों को देखते ही पन्ना अपनी सारी चिन्ता, शारीरिक दुर्बलता और मानसिक व्यथा भूल गयी। यही तो उसका परिवार था। गोल, चिकने चेहरेवाली नेपाली लड़की। चेहरे से भी बड़े जूड़ेवाली वाणी सेन, जिसके ओठों की हँसी धीरे-धीरे बिजली-सी चमकती आँखों तक फैल जाती और तब उस उद्भासित बड़ी आँखों की दिव्य दृष्टि मैत्री के दो हाथ फैलाकर देखनेवाले को बाँधकर सदा के लिए बन्दी बना लेती, चीनी सुन्दरी मी वांग, जिसकी तिरछी आँखें सामान्य-से स्मित में बन्द होकर रह जातीं, तुर्की गुड़िया निलोफर जिसे माणिक ने कोहनूर हीरे के दाम चुकाकर खरीदा था, और उन सबको अनुशासन की एक सामान्य-सी खाँसी का चाबुक मार-

कर ही सधी फ़ौजी टुकड़ी-सी साधनेवाली स्वयं बड़ी दी ! बड़ी दी के चेहरे को देखकर वह क्या कभी आज तक उन पतले क्रूर ओठों की दबी हँसी का रहस्य जान पायी है ? उस स्मित में व्यंग्य था या करुणा, या वे मन ही मन प्रसन्न होकर कह रही थीं, "क्यों री अकड़बाज़ छोकरी, आख़िर आयी ना मेरी शरण में !"

या उस स्मित की सील मोहर लगाकर अन्तर्व्यथा के वाष्प का ढकना बरबस बन्द कर रही थीं बड़ी दी।

देखते ही देखते पन्ना की गोदी की अमूल्य गठरी हाथों ही हाथों में उछलने लगी। अकेली माणिक ने ही उसे गोदी में नहीं लिया।

"देखो तो बड़ी दी, कैसी बड़ी-बड़ी आँखें हैं तुम्हारी भतीजी की," वाणी सेन गोदी के बण्डल को लेकर उसकी ओर बढ़ आयी, तो चट से माणिक ने आँखें बन्द कर लीं। "मर कलमुँही, ऐसे भला ख़ाली हाथ बिटिया का मुँह देखूँगी ?"

घर पहुँचते ही बड़ी दी का क्रोध, स्वयं ही पहाड़ी कुहरे-सा विलीन हो गया। जो चेहरा कुछ क्षण पूर्व पन्ना के दुस्साहसी पलायन की स्मृति में फूलकर कुप्पा बन गया था, उसी पर उनकी चिरपरिचित स्नेही मुसकान थिरकते देख, पन्ना के सिर का बोझ स्वयं ही उतर गया। बड़ी दी ने क्षमा कर दिया है उसे, एक अनोखी शान्ति से परिपूर्ण हो उसका चित्त प्रफुल्लित हो उठा।

पीली कोठी का राजसी प्रांगण, गोल कमरे में अगरु चन्दन की मदमस्त सुगन्ध, हवा में झूलते एक-दूसरे से मृदु ठनक में ठनकते झाड़-फ़ानूस के झूमके; दासियों की चहल-पहल और गुदगुदे क़ालीन पर बिछी चाँदनी पर लगा बड़ी दी का नित्य का वही दिल्ली दरबार। एक अशर्फ़ी से माणिक ने भतीजी का मुँह देखा तो चेहरा फक हो गया। "अरी पन्ना, तेरी यह बिटिया इतनी साँवली कैसे हो गयी री ? तेरा ऐसा फ़िरंगियों का-सा रंग और विद्युत रंजन भी गोरा-चिट्टा—ये मुई कहीं अपनी कलूटी हीरा मौसी पर तो नहीं पड़ी !" एक उदासीन दृष्टि का ही उत्तर देकर पन्ना चुप हो गयी।

अकारण ही उस के गले में किसी का स्मृति गह्वर अटककर रह गया। कैसे कहे वह बड़ी दी से, जो मेरी बेटी थी उसे तुमने आज देखा होता, तो ऐसे नहीं चौंकतीं। गोरा रंग, नीली आँखें और सुनहले बाल, विदेशी नाना का व्यक्तित्व ही उस 'क्षणिक अतिथि' में साकार हो उठा था।

"तुम्हें भी बड़ी दी, ख़ूब मीन-मेख निकालना आता है," वाणी सेन ने चट से बच्ची को अपनी गोदी में ले लिया। "अब देखो तो री तुम सब, भला कहाँ ऐसी काली है, अब सालिग्राम को तुम चन्दन की बटी पर टिका दो तो और भी काला दिखेगा। बड़ी दी और छोटी दी ठहरीं निखालिस मेम लोग। इसी से उन सबकी गोदी में बेचारी अपना भी रंग खो बैठी—अब हम सबकी गोदी में देखो, आहा क्या लग रही है—एकदम कृष्णकली।"

पन्ना को हँसी आ गयी। माणिक मुँह में पान दोख्ते का पीक गुलगुला रही थी, वैसे ही पीक को गालों में इधर-उधर भरकर कहने लगी, "बातें करना तो कोई वाणी से सीखे, तभी तो बैरिस्टर राय इस पर बुढ़ौती न्योछावर कर देते हैं।"

वाणी दोनों लम्बे-लम्बे हाथों को नर्तकी के नमस्कार की-सी मुद्रा में बाँधकर झुककर माणिक के सामने खड़ी हो गयी—गोदी की बच्ची को उसने माणिक के पैरों के पास धर दिया था। "तुम कहती हो एक बैरिस्टर राय? बड़ी दी, तुम्हारे आशीर्वाद से आठ-आठ ऐसे बुढ़ऊ बग़ल में दबाये फिर रही हूँ कि जब चाहे जिसके तीन-चार हज़ार उगलवा दूँ। इसे भी ऐसा आशीर्वाद दो बड़ी दी कि हमारी-तुम्हारी तरह ही हमारी कृष्णकली भी राजरानी बन, शत-सहस्र हृदयोंपर एकछत्र राज्य करे।" माणिक ने कनखियों से पन्ना को देखा। वह तो वहाँ होकर भी जैसे नहीं थी। शायद उसकी पुत्री को साँवली कह दिया था इसी से कुछ अनमनी-सी हो गयी थी बेचारी।

"चिन्ता क्यों करती है पन्ना," बड़ी दी ने उसकी पीठ पर हाथ फेरकर कहा, "मेरे पास उबटन के तीन-चार ऐसे यूनानी नुस्खे धरे हैं कि अम्मा कहती थीं, कौए को भी पोत दो तो उजला-चिट्टा बगुला नज़र आयेगा।"

"लाख रंग साँवला हो छोटी दी," क़ालीन पर हाथ-पैर मारती बच्ची को वाणी ने गोदी में उठाकर गालों से लगा लिया, "नाक देखती नहीं, कैसी खड्ग की-सी धार धरी है। ओठ! आहा, क्या मनोहारी गठन है। यह ललाट, काले चिकने घने केश और नौ रत्ती बावन तोले की ये वनमृगी-सी आँखें! तभी तो मैंने नाम धरा है कृष्णकली।" सहसा गोदी में बच्ची को लेकर वह झूम-झूमकर गाने लगी—

कृष्णकली आमी तारेई बोली—
काली तारे बोले गायेर लोक
मेघला दिने, देखे छिलेम माठे
कालो मेयेर काली हरीग चोख

वाणी के वंशी-से मीठे गले को किसी साज़-संगत के बिना ही श्रोता को मोह लेने का वरदान प्राप्त था। स्वाभाविक मुरकियाँ, मीठे स्वर का सधा आरोह, जो कभी जादुई गति से अवरोह की सोपान पंक्तियों में सुननेवाले को भी बरबस अपने साथ खींच ले जाता, उसके सुकुमार साँवले चेहरे से भी मेल खाता था। क्रूर नियति ने ही उस पढ़ी-लिखी, सम्भ्रान्त कुल की आकर्षक अध्यापिका को पीली कोठी में पटक दिया। पर जो उस कुण्ठाग्रस्त अध्यापिका को उसके जीवन ने नहीं दिया था, वह उसे पीली कोठी ने पल-भर में दे दिया। वैभव, एक से एक दामी साड़ियाँ, विलास की ऐसी-ऐसी अलभ्य सामग्रियाँ, जिनके विषय में उसने कभी सुना भी नहीं था। एक दासी उठते ही बादाम रोग़न की मालिश कर जाती, फिर दूसरी आकर हमाम में ऐसे-ऐसे बाथ सॉल्ट छिड़क जाती कि चमड़ी यदि कोई छीलकर भी तराश देता तब भी शायद उन की मादक सुगन्धि मांस-मज्जा में ही बसी रहती। कितनी बार उसे कितने सुपात्र देख-

देखकर नापसन्द कर गये थे, आज उसकी ऐसी स्थिति है कि वह कितने ही सुपात्रों को नाक-भौं चढ़ाकर नापसन्द कर देती है। अनाथा वाणी सेन के दरिद्र मामा किसी प्रकार का दहेज देने में असमर्थ थे। फिर वह असामान्य सुन्दरी भी नहीं थी। किसी प्रकार पढ़-लिखकर उसने बी. ए. की परीक्षा पास कर ली थी। इसी से जब मामा के विधुर मित्र रजनीकान्त मित्रा ने, उसे अपने गर्ल्स हाईस्कूल में अध्यापिका का पद प्रदान किया, तो उसे सहसा अपने सौभाग्य पर विश्वास ही नहीं हुआ था।

"कुमड़ो," (कद्दू) रजनी काका उसके मामा की पृथुल तोंद के कारण उन्हें इसी विचित्र नाम से पुकारते थे, एक दिन कहने लगे, "तेरी भानजी के लिए जबतक कोई सुयोग्य पात्र नहीं जुटता, क्यों न इसे मेरे स्कूल में भेज दे? लड़की गुणी है, इतना अच्छा गाती है। हमारे यहाँ संगीत की कोई अध्यापिका है भी नहीं," मामा तो मारे खुशी के रो भी पड़े थे। केवल चतुर मामी को यह मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव ज़रा भी नहीं रुचा।

"नौकरी करनी है छोकरी को तो क्या एक उसी रँडुवे मित्तर का स्कूल रह गया है? एक तो अभागा स्वयं ही मैनेजर है, उस पर दिन-रात तो उसकी कीर्ति सुनने में आती रहती है।"

मामी के उस प्रस्ताव का अनुमोदन न करने का एक कारण और भी था। सुबह से लेकर शाम तक वाणी उनकी गृहस्थी के कोल्हू में बैल-सी जुती रहती थी। इसी बीच मामा को दिल का दौरा पड़ा और वे चल बसे, मामी को उनके भाई साथ लिवा ले गये, और वाणी को रजनी काका ने स्नेहपूर्ण आग्रह से अपने पास रोक लिया।

"कुछ ही दिनों में लड़कियों के लिए एक बोर्डिंग हाउस की भी व्यवस्था करनी होगी। तुम नहीं रहोगी बेटी तो कौन उन्हें देखेगा?"

शायद उस स्नेहपूर्ण आत्मीय सम्बोधन ने ही वाणी को अटका लिया। पहले-पहल चतुर रजनीकान्त ने अपनी शरण में आयी उस अनाथा किशोरी के साथ अपना व्यवहार ऐसा उदासीन एवं तटस्थ रखा कि वाणी को स्वयं ही उनको अपनी छोटी-मोटी आवश्यकताओं से अवगत कराने के लिए इधर-उधर भटकना पड़ता। कभी सीमेंट जुटाने कटनी चले गये हैं, जब मिलते भी तो ऐसी रूखी बातें करते कि वाणी का शरीर जल उठता। तब वह क्या जानती थी कि वह कुटिल व्यक्ति अपनी उदासीनता से ही उसका विश्वास जीतना चाहता है! यह ठीक था कि पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने, यहाँ तक कि उसकी संगीत-शिक्षा का भी उन्होंने समुचित प्रबन्ध कर दिया था। एक अन्धे म्यूज़िक मास्टर उसे पक्के गाने की शिक्षा देने आते, सन्ध्या को नित्य रजनी काका के परम मित्र दुलाल बाबू उसे रवीन्द्र संगीत सिखा जाते, पर रजनी काका उसे जब

मिलते, एक न एक बात से जता ही देते कि वे उस पर बहुत रुपया खर्च कर रहे हैं।

"गाना ठीक से सीख रही हो ना? यह मत समझना कि दुलाल मेरे मित्र हैं तो तुम्हें मुफ़्त में गाना सिखा रहे हैं। दोनों को तगड़ी तनख्वाह दे रहा हूँ। चारु तुम्हारे पास सोती है ना?" अपनी एक पुरानी वृद्धा दासी की नियुक्ति उन्होंने वाणी के आते ही कर दी थी।

"हाँ काका बाबू, सोती है," कहकर वाणी चुपचाप अपने कमरे में लौट आयी थी। उतनी बड़ी कोठी में वाणी एक प्रकार से बन्दिनी का-सा जीवन व्यतीत करती थी। शहर से दूर 'मित्र निकुंज' एक प्रकार से जंगल ही में बसा था। अभी तक भी लोग उसके नये नाम की अवहेलना कर, उसे उसके पुराने नाम से ही अधिक पुकारते थे—'नील साहबेर कुठी'। यह एक अँगरेज़ साहब की बड़े शौक़ से बनवायी गयी विराट् कोठी थी जिसने नील की खेती से कभी लाखों रुपया पैदा किया था। मित्रा ने उसे मिट्टी के मोल ख़रीद, उसकी उजाड़ भव्यता को एक बार फिर सँवार लिया था। साहब के ही विदेशी रुचि से बने अतिथि भवन में अब उनकी दिवंगता पत्नी के नाम पर अमला गर्ल्स हाईस्कूल था। नीलकोठी का जो कमरा वाणी को मिला था, वह निश्चय ही उस साहब की मेम साहिबा का रहा होगा। दीवारों पर तब भी, नाखून से चूने की एक-दो परतें उखाड़ने पर शतपत्रांकित घूमिल गुलाबी 'वाल पेपर' निकल आता। एक बड़ा-सा अन्धा झाड़-फ़ानूस, टेढ़ा होकर नीचे तक झूल आया था। जहाज़ से पलंग पर थकी-हारी वाणी सोने जाती तो स्वयं ही अज्ञात भय से उसका शरीर काँप उठता। उतने बड़े पलंग में उसकी इकहरी देह जैसे डूबकर रह जाती। कुछ देर तक चारु अपने वर्षों पुराने दमे की धौंकनी चलाती रहती, और फिर बड़बड़ाने लगती, "अजीब शौक़ है बाबू का, घर की घरनी जबतक रही, बेचारी का कभी मुँह भी नहीं देखा! काली थी तो उसका क्या दोष? मैं कहती हूँ, जब देखने गये तो क्या आँखों पर पट्टी बँधी थी? आहा, कैसी लक्ष्मी बिटिया थी हमारी, एक रूप ही तो नहीं था। दहेज कितना लायी थी। किसकी बदौलत आज इस साहब की कोठी में राज कर रहे हैं, सब भूल गये हैं बाबू! अब मर गयी तो उसके नाम का स्कूल बनाकर टेसुवे बहाते फिर रहे हैं! मैं कहती हूँ, बाबा मेरी तो छुट्टी करो। जिसके साथ दहेज में आयी थी, जब वही नहीं रही तो मैं क्या करूँ यहाँ। नवद्वीप में भानजा है, वहीं जाकर निमाई के चरणों में दिन काट लूँगी। पर यह तो मारें भी और रोने भी न दें!"

कभी-कभी वाणी झुँझलाकर कह देती, "ठीक है चारु, जाना है तो कल ही चली जाओ, मुझे क्यों सुनाती हो। काका बाबू से कहो ना।"

"आहा रे काका बाबू," चारु अचानक उठकर बैठ जाती, उसकी झुर्री पड़ी लटकनों को बड़े कमरे का अन्धकार और भी बीभत्स बना देता, जैसे कोई काली डाइन आकर बैठ गयी हो। "मैं भी देखती हूँ कितने दिन भतीजी बनकर रहती हो, तुम

ऐसी बीसियों भतीजियाँ इसी कमरे में शिकार हुई हैं ।" "फिर उसके एकदम निकट खिसककर वह अपनी फुसफुसाहट का विष उगलने लगती । "भला चाहती हो तो बहाना बनाकर चुपचाप खिसक जाओ, समझी ? फूलरेनू, पुजारिनी, अभया, कृष्णा, वेनू, कितनी सौतों ने सताया मेरी मालकिन को । देखती नहीं दीवालों को ? भला कुँआरी लड़की के कमरे में ऐसी नंगी तसवीरें लटकायी जाती हैं ?"

सचमुच ही आदमक़द नग्न तसवीरों को देखकर वाणी सेन सिहर उठी थी । चाहे मेम ही ने क्यों न लटकायी हों, पर क्या सयाने काका बाबू को नहीं चाहिए था कि उसके आने के पूर्व उन्हें हटाकर कहीं और डाल देते ?

क्या पता चारु ठीक ही कह रही हो । पर वह जाये भी तो कहाँ जाये ? हृदयहीना मामी को वह जानती थी । उनके भाई की व्याघ्रदृष्टि ने उसे कुछ ही पलों में लीलने की जो निर्लज्ज चेष्टा की थी, उसे शायद मामी ने भी देख लिया था । इसी से उन्होंने भानजी को साथ ले चलने का कोई आग्रह नहीं किया । न पिता के वंश में कोई बचा था, न माँ के । रात-रात जगकर वह भविष्य की योजनाएँ बनाती, पर स्कूल पहुँचते ही काका बाबू का निर्विकार चेहरा देखकर उसके चित्त का कलुष उसे स्वयं लज्जित कर देता । ऐसे देवतुल्य व्यक्ति के लिए वह कैसी घिनौनी बातें सोचने लगी थी ? ऐसे ही यदि होते तो क्या इन सात महीनों में एक बार भी अपने कामी स्वभाव का परिचय नहीं देते ? हो सकता है वे सब बातें चारु ने केवल इसी लिए उसे सुनायी हों कि वह स्वयं ही भागकर उसका रास्ता साफ़ कर दे ।

"तुम जब जाओगी तब ही बाबू मुझे छुट्टी देंगे," वह प्रायः ही कहती रहती थी ।

पर चतुर गिद्ध क्या एकदम ही शिकार पर झपटता है ? उसी छली पक्षी की भाँति, निर्मल आकाश में गोल-गोल चक्कर काटते जब रजनीकान्त अपने शिकार पर झपटे, तो वह सँभल भी नहीं पायी ।

"चारु-चारु," उसने चीत्कार से पूरी नीली कोठी गुँजा दी थी । पर उसकी करुण चीख़ बड़े बुर्ज से टकराकर उसी के कानों में हथौड़े-सी पीटने लगी थी ।

"चारु-चारु !"

"यह कोठी बुद्धिमान् साहब ने बनवायी है । इस खूबी से कि हर चीखनेवाली की चीख टकरा-टकराकर उसी के पास लौट आती है, बाहर नहीं जाती," अपने नक़ली दाँतों की हँसी की विद्युत्वह्नि से उसे झुलसाता वह दानव उसकी पीठ थपथपाकर हँसने लगा था ।

"आराम से यहाँ पड़ी रहो । यदि और कुछ मूर्खता कर बैठी तो फिर स्वयं भुगतोगी । फूलरेनू की लाश को आज तक पुलिस नहीं ढूँढ़ पायी—"

वाणी की मांस-मज्जा तक क्रोध से भस्म होकर रह गयी थी। यह राक्षस फिर उसकी देह का स्पर्श करे इससे तो अच्छा है वह स्वयं ही उसे ठिकाने लगा दे। इससे अच्छा अवसर अब मिल ही कब सकता था? चारु भी नहीं थी, पास ही रेल के स्टेशन से आती एक के बाद एक रेलगाड़ियों के आगमन-प्रत्यागमन की सीटी वह नित्य सुनती थी। राजनीकान्त के जाते ही वह द्वार खोलकर चुपचाप निकल गयी थी। फिर कैसे, कब, किन-किन गाड़ियों में दुबककर बैठी वह बाँकीपुर पहुँच गयी थी। वह स्वयं ही नहीं जान पायी। वहीं उसे माणिक मिल गयी थी। उस दिन की काँप रही, सहमी, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली वही साँवली सामान्य-सी किशोरी, आज भरे-भरे अंगों की छटा बिखेरती लावण्यमयी वाणी सेन थी। उसे यदि आज रजनी काका देखते तो, "निश्चय ही बूढ़े का 'हार्टफ़ेल' हो जायेगा बड़ी दी," चुलबुली वाणी हँसकर कहती।

"ला पता दे दे तो एक चिट्ठी डाल दूँ।"

माणिक से वाणी का ऐसा ही हास-परिहास चलता रहता।

"पता तो दे देती बड़ी दी," गम्भीर स्वर के साथ बड़ी-बड़ी पुतलियों को भी गोल-गोल घुमाकर वाणी कहती, "पर एक साथ इतनी सारी सुन्दरी भतीजियों को देखकर, कहीं उन्हें कुछ हो गया तब? मेरे क्या दस-बीस चाचा-ताऊ हैं?"

फिर तो वाणी सेन के जो असंख्य दुलारे चाचा-ताऊ थे, उन्हीं के एक-एक कर, सब नाम गिनवाने लगतीं। उसकी सखियाँ, और वाणी हँसती-हँसती दोहरी हो जातीं।

"अरी मारियो, चुप करो अब बस।"

कभी अफ़रोज़ फिर चुटकी मारती, कभी सईदा, "चटर्जी काका, राय काका, घोषखूड़ों, दस्तिदार, राय चौधरी काका, टामस अंकल, डेविड अंकल, हाय राम दम फूल गया गिनते-गिनते, हमारी वाणी सेन का तो आधा संसार इन ससुरे चचों से भरा है।"

माणिक फिर एक छौंक लगाती, "अरी, उसको भूल गयीं क्या? कुमुदरंजन मण्डल? वह तो इन सबका भी चचा है। वही तो सुनता है इससे रवीन्द्र संगीत!"

वाणी रूठी बालिका का सा अभूतपूर्व अभिनय करती, ठुड्डी पर हाथ धरकर तुनक उठती, "ख़बरदार बड़ी दी, जो मेरे बूढ़े से कुछ कहा। आहा रे, एक-एक बाल सफ़ेद, खाँसता है तो पूरा डेंचर निकलकर दूर छिटकता है, मुँह से लहसुन की बदबू। लकवे के झटके से गरदन ऐसी हिलाता है जैसे कत्थक का नचैया हो। ऐसा प्रेमी बड़े भाग्य से जुटता है बड़ी दी!"

शायद प्रत्येक प्रेमी के घृणित व्यक्तित्व को घुटककर नीलकण्ठ बनने की उस अपूर्व क्षमता से ही वाणी सेन माणिक की सबसे मुँहलगी सदस्य बन गयी थी। माणिक कहीं भी जाती, वाणी सेन छाया की भाँति उसके साथ रहती, पीली कोठी में एक से एक बिगड़ैल घोड़े आते, पर चतुर गहरेबाज़ की दक्षता से वाणी सेन ही उन्हें अपने सधे चाबुक से साध लेती। पन्ना का पत्र पाकर क्रोध से बौखला गयी थी

माणिक। जब उसकी अनुपस्थिति में ही वह बड़े विश्वास से दिये गये चाबी के गुच्छे को मुंशीजी को सौंपकर भाग गयी थी, तब क्या अभागी नहीं जानती थी कि गुच्छे में तिजोरी की भी चाबी धरी है ? उस तिजोरी का वैभव क्या कुबेर के कोष से किसी अंश में कम था ? यह ठीक था कि मुंशीजी उस के परम विश्वासी कर्मचारी थे, पर नीयत बिगड़ते क्या कुछ देरी लगती है !

"मैं उससे साफ़-साफ़ कह दूँगी, जहाँ जाना है चली जाये, पीली कोठी में ऐसी नमकहराम छोकरी को क़दम नहीं रखने दूँगी मैं।"

रात-भर पैर पकड़कर वाणी सेन ने ही उसे मनाया था।

"लाख हो छोटी दी तुम्हारी छोटी बहन है। फिर इस निगोड़ी कोठी में एक बच्ची की ही तो क़सर है ! देख लेना कोठी गुलज़ार हो उठेगी।" वाणी सेन की भविष्यवाणी सचमुच में सार्थक हो गयी थी।

जब देखो तब वाणी उसे गालों से लगाकर गाती रहती :

कृष्ण कली आमी तारेई बोली
काली तारे बोले गायेर लोक—
एमनि कोरे कालो काजल मेघ
ज्येष्ठ मासे आसे ईशान कोने—
एमनि कोरे कालो कोमल छाया
आषाढ़ मासे नामे तमाल बने
एमनि कोरे श्रावण रजनीते—
हठात् ख़ुशी धनिये आसे चित्ते—
कालो ?
ता से यतई कालो होक
देखेछि तार कालो हरिण चोख

(क्या ऐसे ही काले काजल मेघ, जेठ के महीने के साथ ही ईशान कोण पर नहीं घिर आते ? क्या ऐसे ही आषाढ़ में काली कोमल छाया तमाल वन पर नहीं उतर आती ? क्या ऐसे ही काली श्रावणी रजनी के बीच हृदय आनन्द से पुलकित नहीं हो उठता ?

काली ?
कितनी ही काली क्यों न हो—
मैंने उसकी हिरणी-सी काली आँखें देख ली हैं)

यही गाना गाते-गाते भाव-विभोर हो प्रौढ़ दुलाल बाबू उसकी ओर एक टक ऐसे निहारने लगते थे कि वह स्वयं ही सिहरकर आँचल ठीक करने लगती। आज वह उस भूखी दृष्टि का अर्थ समझ सकी है।

वाणी की मांस-मज्जा तक क्रोध से भस्म होकर रह गयी थी। यह राक्षस फिर उसकी देह का स्पर्श करे इससे तो अच्छा है वह स्वयं ही उसे ठिकाने लगा दे। इससे अच्छा अवसर अब मिल ही कब सकता था? चारु भी नहीं थी, पास ही रेल के स्टेशन से आती एक के बाद एक रेलगाड़ियों के आगमन-प्रत्यागमन की सीटी वह नित्य सुनती थी। राजनीकान्त के जाते ही वह द्वार खोलकर चुपचाप निकल गयी थी। फिर कैसे, कब, किन-किन गाड़ियों में दुबककर बैठी वह बाँकीपुर पहुँच गयी थी। वह स्वयं ही नहीं जान पायी। वहीं उसे माणिक मिल गयी थी। उस दिन की काँप रही, सहमी, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली वही साँवली सामान्य-सी किशोरी, आज भरे-भरे अंगों की छटा बिखेरती लावण्यमयी वाणी सेन थी। उसे यदि आज रजनी काका देखते तो, "निश्चय ही बूढ़े का 'हार्टफ़ेल' हो जायेगा बड़ी दी," चुलबुली वाणी हँसकर कहती।

"ला पता दे दे तो एक चिट्ठी डाल दूँ।"

माणिक से वाणी का ऐसा ही हास-परिहास चलता रहता।

"पता तो दे देती बड़ी दी," गम्भीर स्वर के साथ बड़ी-बड़ी पुतलियों को भी गोल-गोल घुमाकर वाणी कहती, "पर एक साथ इतनी सारी सुन्दरी भतीजियों को देखकर, कहीं उन्हें कुछ हो गया तब? मेरे क्या दस-बीस चाचा-ताऊ हैं?"

फिर तो वाणी सेन के जो असंख्य दुलारे चाचा-ताऊ थे, उन्हीं के एक-एक कर, सब नाम गिनवाने लगतीं। उसकी सखियाँ, और वाणी हँसती-हँसती दोहरी हो जातीं।

"अरी मारियो, चुप करो अब बस।"

कभी अफ़रोज़ फिर चुटकी मारती, कभी सईदा, "चटर्जी काका, राय काका, घोषखूड़ों, दस्तिदार, राय चौधरी काका, टामस अंकल, डेविड अंकल, हाय राम दम फूल गया गिनते-गिनते, हमारी वाणी सेन का तो आधा संसार इन ससुरे चचों से भरा है।"

माणिक फिर एक छौंक लगाती, "अरी, उसको भूल गयीं क्या? कुमुदरंजन मण्डल? वह तो इन सबका भी चचा है। वही तो सुनता है इससे रवीन्द्र संगीत!"

वाणी रूठी बालिका का सा अभूतपूर्व अभिनय करती, ठुड्डी पर हाथ धरकर तुनक उठती, "ख़बरदार बड़ी दी, जो मेरे बूढ़े से कुछ कहा। आहा रे, एक-एक बाल सफ़ेद, खाँसता है तो पूरा डेंचर निकलकर दूर छिटकता है, मुँह से लहसुन की बदबू। लकवे के झटके से गरदन ऐसी हिलाता है जैसे कत्थक का नचैया हो। ऐसा प्रेमी बड़े भाग्य से जुटता है बड़ी दी!"

शायद प्रत्येक प्रेमी के घृणित व्यक्तित्व को घुटककर नीलकण्ठ बनने की उस अपूर्व क्षमता से ही वाणी सेन माणिक की सबसे मुँहलगी सदस्य बन गयी थी। माणिक कहीं भी जाती, वाणी सेन छाया की भाँति उसके साथ रहती, पीली कोठी में एक से एक बिगड़ैल घोड़े आते, पर चतुर गहरेबाज़ की दक्षता से वाणी सेन ही उन्हें अपने सधे चाबुक से साध लेती। पन्ना का पत्र पाकर क्रोध से बौखला गयी थी

माणिक। जब उसकी अनुपस्थिति में ही वह बड़े विश्वास से दिये गये चाबी के गुच्छे को मुंशीजी को सौंपकर भाग गयी थी, तब क्या अभागी नहीं जानती थी कि गुच्छे में तिजोरी की भी चाबी धरी है? उस तिजोरी का वैभव क्या कुबेर के कोष से किसी अंश में कम था? यह ठीक था कि मुंशीजी उस के परम विश्वासी कर्मचारी थे, पर नीयत बिगड़ते क्या कुछ देरी लगती है!

"मैं उससे साफ़-साफ़ कह दूँगी, जहाँ जाना है चली जाये, पीली कोठी में ऐसी नमकहराम छोकरी को क़दम नहीं रखने दूँगी मैं।"

रात-भर पैर पकड़कर वाणी सेन ने ही उसे मनाया था।

"लाख हो छोटी दी तुम्हारी छोटी बहन है। फिर इस निगोड़ी कोठी में एक बच्ची की ही तो क़सर है! देख लेना कोठी गुलज़ार हो उठेगी।" वाणी सेन की भविष्यवाणी सचमुच में सार्थक हो गयी थी।

जब देखो तब वाणी उसे गालों से लगाकर गाती रहती :

कृष्ण कली आमी तारेई बोली
काली तारे बोले गायेर लोक—
एमनि कोरे कालो काजल मेघ
ज्येष्ठ मासे आसे ईशान कोने—
एमनि कोरे कालो कोमल छाया
आषाढ़ मासे नामे तमाल बने
एमनि कोरे श्रावण रजनीते—
हठात् खुशी धनिये आसे चित्ते—
कालो?
ता से यतई कालो होक
देखेछि तार कालो हरिण चोख

(क्या ऐसे ही काले काजल मेघ, जेठ के महीने के साथ ही ईशान कोण पर नहीं घिर आते? क्या ऐसे ही आषाढ़ में काली कोमल छाया तमाल वन पर नहीं उतर आती? क्या ऐसे ही काली श्रावणी रजनी के बीच हृदय आनन्द से पुलकित नहीं हो उठता?

काली?
कितनी ही काली क्यों न हो—
मैंने उसकी हिरणी-सी काली आँखें देख ली हैं)

यही गाना गाते-गाते भाव-विभोर हो प्रौढ़ दुलाल बाबू उसकी ओर एक टक ऐसे निहारने लगते थे कि वह स्वयं ही सिहरकर आँचल ठीक करने लगती। आज वह उस भूखी दृष्टि का अर्थ समझ सकी है।

"वाणी, मुझे लगता है, यह गाना तुम्हें ही देखकर लिखा गया है," उन्होंने पहले दिन कहा तो वाणी ने लजाकर माथा झुका लिया था।

गोदी की नन्हीं बच्ची को निहारती वाणी मन ही मन सोच रही थी, गाना मेरे लिए नहीं, इसके लिए लिखा गया है। असीम लाड़ और दुलार के बीच पल रही कृष्णकली की मलिन कान्ति को, माणिक के यूनानी उबटनों ने सचमुच ही उजला कर दिया था। "छोटी दी, तुम्हारी लड़की का नाम अब बदलना ही पड़ेगा। देखती नहीं, दिन पर दिन कैसा रंग निखरता जा रहा है निगोड़ी का ?"

वाणी समय पाते ही उसे गोदी में लेकर बैठ जाती। कभी-कभी रात को भी वह उसे संग सुलाने उठा ले जाती। कली, कृष्णकली, अमार कालो चाँद, अमावस्या; कितने ही अटपटे नामों से उसे पुकारती वाणी पगला-सी जाती।

कली जैसे-जैसे बड़ी हो रही थी, उसका साँवला रंग स्वयं ही गेहुँवन आभा की कान्ति को स्पष्ट करता जा रहा था। "बड़ी दी" पन्ना कहती, "पाँच साल की होते ही इसे बोर्डिंग में डालना ही होगा।"

"क्यों री, क्या अभी से इतनी भारी हो गयी बिटिया ?"

"नहीं बड़ी दी, वाणी ने इसे गोदी की ऐसी आदत डाल दी है कि गोदी से नीचे रखते ही चीखने लगती है।"

पन्ना का काम इधर बहुत बढ़ गया था, कई बार तो उसे रिकार्डिंग करवाने कलकत्ता भी जाना पड़ता था।

एक वाणी सेन ही नहीं, पूरी पीली कोठी की दुलारी थी कली। जब से उसने चलना और तुतला-तुतलाकर बोलना सीख लिया था, वाणी सेन तो उस पर मरी-मिटी जाती थी। वाणी से कहती थी, 'तानी', पन्ना से 'तन्ना', और बड़ी दी से 'तड़ी दी।'

"कहो ककड़ी, केला" वाणी उसे तोते-सा पढ़ाती।

"ततरी-तेला," चेहरे से भी बड़ी आँख घुमाकर कली कहती। हँसी का फ़व्वारा-सा छूटने लगता। कभी-कभी सजी-सजायी गुड़िया-सी कली को मुखरा वाणी बड़ी दी के भरे दरबार में लाकर दूध-सी धुली चाँदनी पर बिठा देती।

"अरी, करती क्या है ?" बड़ी दी हड़बड़ाकर उठाने लगती, "गीला कर देगी—"

"तो क्या हुआ। गंगाजल उठा-उठाकर माथे पर धरेंगे तुम्हारे दरबारी, तो सब पाप-कलुष धुल जायेगा—क्यों है ना री मेरी कली !"

सिखायी बन्दरिया-सी कली न जाने कैसे सब-कुछ समझकर नन्हीं-सी नाक चढ़ाकर हँस देती।

"तेरी माँ कौन है, बता दे तो मेरी सोना," वाणी चतुर नटिनी की भाँति आकर्षक कली को अपने अनुशासन की रस्सी पर साधकर पूछती।

"तन्ना।"

"तेरा बाबा कौन है बेटी," वाणी फिर अपनी मुखरा चपल दृष्टि का डमरू बजाती।

"ये छब," कली अपनी तिनके-सी तर्जनी पूरे दरबारियों की ओर घुमा देती।

"अरे, वाह्-वाह्!"

"क्या दिमाग़ पाया है!"

"बिलकुल माँ पर पड़ी है।"

कुछ ही पलों में, पूरे दरबार को अपनी नन्हीं मुट्ठी में बन्द कर कली वाणी की गोदी में किलकती चली जाती।

यही कली का अक्षरारम्भ था क्या? क्या डॉ. पैट्रिक ने ऐसी ही शिक्षा देने उसे सौंपा था?

पन्ना कभी-कभी अपनी दुर्बलता पर स्वयं ही क्षुब्ध हो उठती। डॉ. पैट्रिक के पत्र प्रायः ही आते रहते। अपने वायदे की पक्की निकली थी डॉ. पैट्रिक। कली के छठे जन्म-दिवस पर उन्होंने पन्ना को एक कृतज्ञतापूर्ण लम्बा पत्र लिखा था। कली की सुन्दर तसवीर को देखकर वे मुग्ध हो गयी थीं।

इसकी सज्जा ही देखकर मैं समझ गयी हूँ कि तुम इसे कितने यत्न से पाल रही हो! क्या यह मुझे बताना होगा कि मैं तुम्हारी आजन्म कृतज्ञ बनी रहूँगी?

पर मैं अपना वायदा नहीं भूली हूँ। मैंने तुमसे इसे केवल एक वर्ष पालने का अनुरोध किया था, तुमने इसे पाँच वर्ष की बना लिया है! मेरी एक विधवा बहन, इसी वर्ष नैनीताल आ गयी है। वहीं के कान्वेण्ट में नन है, इसी से मुझे पूरी सुविधा है। ऐसे पवित्र वातावरण में निश्चय ही इसके जन्म का इतिहास धुलकर उजला निखर आयेगा। यदि तुम्हें इसे नैनीताल पहुँचाने की सुविधा न हो तो मेरी बहन इसे स्वयं आकर ले जायेगी।

पर हो सकता है पन्ना, तुम्हें इस छोटी-सी अवधि में इस अभागी के लिए ऐसा मोह हो गया हो, जिसका बन्धन अब तुम्हें दिन-प्रतिदिन बाँधता जा रहा है। यदि ऐसा है तो मेरी डार्लिंग पन्ना, ईश्वर के दिये इस उपहार को तुम मेरे अभिनन्दन सहित स्वीकार करो।

तुम्हारी,
रोज़ी

हड़बड़ाकर पन्ना ने चिट्ठी फाड़कर फेंक दी थी। अच्छा हुआ कमरे में बड़ी दी नहीं थीं। शक्की माणिक उसे चिट्ठी पढ़ते देखती, तो आफ़त कर देती। 'किसकी चिट्ठी है?, किसने लिखी है?, क्या लिखा है, देखूँ?'

यह भी सम्भव था कि बड़ी दी अपने अधैर्य से उसके हाथ से चिट्ठी लेकर पढ़ भी लेती। फिर क्या उस सूक्ष्म दृष्टि से पन्ना कुछ छिपा सकती थी ? हो सकता था वह स्वयं ही डॉ. पैंद्रिक के पास जाकर कली के जन्म का पूरा इतिहास ही जान लेती।

उसी दिन, कमरा बन्द कर पन्ना ने चिट्ठी लिखकर स्वयं अपने हाथों से लेटर-बॉक्स में डाल दी थी। कली को जब रोज़ी ने एक बार पन्ना की गोदी में डाल दिया है, तो अब वह उसे नहीं जाने देगी। 'कली दिन पर दिन कितनी सुन्दर होती जा रही है रोज़ी', उसने लिखा था। 'तुम शायद इसे देखने पर पहचान भी नहीं पाओगी। अब उस साँवली मरघिन्नी-सी बच्ची पर जैसे विधाता ने जादू की छड़ी फेर दी है। पाँच ही वर्ष में यह सात-आठ वर्ष की हृष्ट बालिका लगने लगी है। मुझे तो कभी-कभी भय होता है रोज़ी, यौवन कहीं असमय ही आकर इसे न दबोच ले।'

पत्र के उत्तर में रोज़ी ने स्वयं अपने आने की सूचना दी थी। अपनी बहन के साथ क्रिसमस मनाकर वे कली को देखने आयेंगी। कई वर्षों से कहीं नहीं गयी थीं। पैरों का गठिया कब उन्हें एकदम ही पंगु बना दे, कुछ कहा नहीं जा सकता था। वैसे ही बिना लाठी के सहारे वे एक पग भी नहीं चल पाती थीं। 'तुम्हारे पास आकर और नन्हीं कली को देख लेने पर मैं निश्चयं ही बहुत कुछ स्वस्थ हो उठूँगी। मेरी दैनिक आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित हैं, अतः तुम्हें कोई विशेष असुविधा नहीं होगी।'

पगली रोज़ी, उसकी आवश्यकताएँ कैसी ही क्यों न हों, पीली कोठी क्या एक से एक ठसकेदार विदेशी अतिथियों की आवश्यकताओं को पहले नहीं निभा चुकी है ? पर वह सर्वस्व-त्यागिनी तपस्विनी क्या इस परिवेश में एक रात भी रह पायेगी ?

चार

द्वितीय युद्ध की समाप्ति के साथ ही बड़ी दी का व्यवसाय बुलन्दी पर पहुँच गया था। युद्ध में अनायास ही कमायी गयी ठेकेदारों की धनराशि की नहरें, एक साथ ही पीली कोठी में आकर बहने लगी थीं। बड़ी दी की पूर्व-परिचिता, पाँच वैकाई, अपनी खाकी मर्दानी वर्दियों को तिलांजलि दे, एक बार फिर पीली कोठी के सुनहले पिंजरे में, पालतू पढ़ी-पढ़ायी मैना-सी चहकने लगी थी, पहले रविवार को पीली कोठी दिन-भर की छुट्टी मनाती थी। बड़ी दी अपनी सेवन सीटर में अपने रंगीन दलबल को भरकर दूर-

दूर तक घूमने निकल जातीं। कभी राजगृह, कभी राजमहल। कैसा ही सम्मानित अतिथि क्यों न हो, उसे रविवार को आने पर निराश होकर ही लौटना पड़ता। पर अब रविवार को भी कोठी में मेले की-सी भीड़ रहती। क्या कहेगी रोज़ी! वह तो इतवार को अखबार भी नहीं पढ़ती थी!

इस सस्ते वातावरण में वह कली को देखकर क्या प्रसन्न होगी? क्रिसमस के दिन बड़ी दी की किरंटियों ने पीली कोठी के गोल कमरे की छटा ही बदल दी थी। ऐसा उत्साह तो बड़ी दी ने कभी बकरीद पर भी नहीं दिखाया था। पता नहीं कहाँ से मैंगी एक छोटा-सा हरा पेड़ जुटा लायी थी। उस पर जगमगाते बिजली के हरे, पीले, नीले लट्टू, क्रेप के लाल-पीले काग़ज़ों में लिपटे रेशमी रिबन से बँधे उपहार, जापानी कन्दील अनोखी जगमगाहट से जगमगा रहे थे। एक ओर बड़ी मेज़ पर लिज और सोनिया मोमबत्ती-दानों में बड़ी-बड़ी मोमबत्तियाँ सजा रही थीं। आज उन्होंने बड़ी दी से विशेष अनुमति लेकर अपनी पूरी ऐंग्लो इण्डियन बिरादरी को आमन्त्रित किया था। वैसे बड़ी दी इस बिरादरी से दो गज़ की दूरी ही बरतती थी। पीली कोठी के अधिकांश ग्राहक, बँधे-बँधाये पुश्तैनी यजमानी निभानेवाले ग्राहक थे। उस ऊँचे तबक़े के अतिथियों से कभी किसी प्रकार की सस्ती ही-ही, ठी-ठी, या ओछे आचरण की बड़ी दी को आशंका नहीं रहती थी।

"पीते भी हैं तो 'दे नो हाउ टू कैरी देयर ड्रिंक्स'," बड़ी दी कहती, "और ये मरी इन अधकचरी मेमों के साहब, कोई इंजन ड्राइवर हैं तो कोई गार्ड। चाहते हैं कि मेरी लड़कियों को भी रेलगाड़ी के बेजान डिब्बों की ही तरह अपने साथ जैसे चाहे खींचते ले जायें। पर मैंगी को अप्रसन्न भी नहीं कर सकती थीं बड़ी दी। कन्धे तक सुनहले बालों के रेशमी पशम झुलाती, नीली आँखों और चपल स्मित का जादू बिखेरती मैंगी माणिक के रत्न संकलन का सबसे दामी रत्न थी। उसकी मुट्ठी-भर की कमर, पत्थर की मूर्ति की-सी ऐसी तराशी गयी देह, जिसका एक-एक सुगठित अंग सवा-सवा लाख का था, वास्तव में अपूर्व थी। उसकी रुचि को देखकर कभी-कभी माणिक दंग रह जाती। कभी चौदह आने गज़ की लाल छींट का ऊँचा काली गोट लगा लहँगा और काठियावाड़ी कंचुकी पहनकर, हाथ में एक सामान्य-सा चाँदी का कड़ा और गले में हँसुली पहने गोल कमरे में उतर आती। नीली आँखों से मेल खाती नीले रँगे मल-मल की अबरक से चमचमाती ओढ़नी फड़फड़ाकर एक साथ उसके कितने ही प्रेमियों के हृदय में दावानल-जैसा प्रज्वलित कर देती। कभी वह आती ठेठ विदेशी वेशभूषा में। टार्टन स्कर्ट के ऊपर महा औदार्य से प्रदर्शित हाथीदाँत-सा शुभ्र कठोर वक्षस्थल, शंखग्रीवा पर पतली सोने की चेन में झूलता, नवरत्न का पेण्डेण्ट, जो देखनेवाले की दृष्टि को बरबस बाँधता अपने साथ खुले गले की क्रमशः नीचे उतरती आकर्षक घाटी की ओर खींच ले जाता था। मैंगी सप्ताह में केवल दो बार पीली कोठी के गोल कमरे में उतरती थी। "मैं स्वभाव से ही नाज़ुक हूँ माणिक," उसने अपनी सखी से आते ही

कह दिया था, "पर मैं तुम्हें इतना विश्वास दिलाती हूँ कि जितनी तुम्हारी लड़कियाँ एक सप्ताह काम करने पर कमायेंगी, उतना मैं एक ही दिन नीचे आने पर भी कमा लूँगी।"

ऐसी सोना उगलनेवाली मशीन को भला माणिक क्या खो देने की मूर्खता कर सकती थी?

"मेरा पेशा कैसा ही क्यों न हो, मैं एक आदर्श क्रिश्चियन हूँ, यह तुम्हें मानना पड़ेगा माणिक," मैगी के मर्दाने कन्धे गर्वीले बनकर और उन्नत हो गये। "मैं हर इतवार को गिरजाघर जाती हूँ, और हफ़्ते की उन दो मनहूस रातों में जब मेरी एक साँस भी अपनी नहीं रह जाती, मैं समय निकालकर बाइबिल पढ़ ही लेती हूँ, इसी से मैं चाहती हूँ इस बार का हमारा क्रिसमस डिनर ऐसा हो कि मेरे अतिथि तुम्हारे ख़ान-सामा के हाथ चूम लें।" अपनी भुवनमोहिनी हँसी का अचूक बाण छोड़कर मैगी अपने कमरे में चली गयी थी।

क्रिसमस डिनर सचमुच में ऐसा था कि भारी खाने और महँगी शराब में डूबे मैगी के अतिथि घर लौटना भी भूल गये थे। कोई सोफ़े पर ही लदा पड़ा था, किसी की गरदन कुरसी के हत्थे पर लटकी थी, पाँच-सात अतिथि निर्जीव लाशों की भाँति ग़लीचे पर बिछे थे। मैगी गार्ड की छाती पर माथा टिकाये सो रही थी, मद्यपान ने जैसे उसका मुखौटा उतारकर दूर फेंक दिया था। कितनी अधेड़ और थकी लग रही थी मैगी! सोनिया, लिज, बैटी और ऐनी पियानो पर ही औंधी हो गयी थीं। गार्ड के सिर पर टेढ़ा लगा क्रेप पेपर का लाल कँगूरेदार ताज, मैगी के सुनहले बालों पर चिड़िया के पंख जड़ी हरे क्रेप काग़ज़ की तिरछी टोपी, उनके खर्राटों के साथ-साथ हिलती देख पन्ना के पीछे खड़ी वाणी सेन ज़ोर से हँसने लगी। "आहा हा, वारी जाऊँ इन ललमुँहों की छटा पर! ऐ छोटी दी, इस ससुरे गार्ड बाबू की मूँछें असली हैं या नक़ली? खींचकर देखूँ तनिक?" और वह सचमुच् ही सोये गार्ड की मूँछों की ओर दो अँगुलियों की सनसी बनाये झुक ही रही थी कि धीमे से द्वार खोलकर, हाथ में बैग लटकाये, मुसकराती रोज़ी खड़ी हो गयी।

हड़बड़ाकर वाणी को पीछे धकेल, पन्ना दौड़कर रोज़ी से लिपट गयी। "यह क्या रोज़ी, तुमने तो लिखा था तुम क्रिसमस के बाद आओगी? किसमें आयी? ताँगे में—कहती क्या हो! एक तार तो कर दिया होता, घर ढूँढ़ने में कितनी आफ़त आयी होगी!"

"नहीं डार्लिंग," उस सौम्य सन्त चेहरे की एक-एक रेखा निर्विकार थी, "पीली कोठी को सब जानते हैं।"

चौंककर पन्ना ने रोज़ी की ओर देखा, फिर सहमकर आँखें झुका लीं।

"वाणी, तुम ताँगे से सामान ऊपर मेरे कमरे में पहुँचा दो, रोज़ी मेरे साथ ही रहेगी।"

कई घेर-घुमावदार सीढ़ियाँ पार कर रोज़ी पन्ना के कमरे में पहुँची। सीढ़ियों के दोनों ओर लगे आदमक़द शीशे, हाथीदाँत के बने हैंगर, जिन पर कई निशाचरों के ओवरकोट अपने निर्जीव स्वामियों की अचल देह की भाँति ही झूल रहे थे, वास्तव में दर्शनीय थे। अपने कमरे में पहुँचकर पन्ना ने रोज़ी के दोनों हाथ पकड़कर बड़े लाड़ से उसे अपने रेशमी गुदगुदे बिछावन पर बिठा दिया और स्वयं कुरसी खींचकर उस के पास बैठ गयी।

"कितनी सुन्दर कोठी है!" रोज़ी ने प्रशंसापूर्ण दृष्टि से पन्ना के कमरे की स्वच्छ विदेशी सज्जा को देखकर कहा।

"सुन्दर? तुम भी इसे सुन्दर कह सकती हो रोज़ी?" आश्चर्य से पन्ना उसे एकटक देखने लगी। क्या ताना मार रही थी रोज़ी?

"क्यों नहीं पन्ना, बनानेवाले ने हर चीज़ सुन्दर नहीं बनायी है क्या?" वह अपनी स्वच्छ दन्त-पंक्ति दिखाकर हँस उठी। "मुझे तो इस संसार में आज तक सब सुन्दर ही सुन्दर दिखा है डार्लिंग! पर यह तो बताओ तुमने उस सुन्दर तोहफ़े को कहाँ छिपाकर रख दिया है, जिसे देखने मैं इतनी दूर से भागती आयी हूँ?"

"उसे मैं अपने कमरे में नहीं सुलाती। तिमंज़िले में मेरी, हीरा और बड़ी दी की पुरानी नर्सरी थी, वहीं सोती है। चलोगी क्या? सोयी होगी। दिन-भर शैतानी करती, उछल-कूद मचाती रहती है। फिर थककर ऐसी चूर होती है कि सात ही बजे सो जाती है।"

नर्सरी के कमरे में लगे नीले रेशमी परदों को हलके से उठाकर पन्ना रोज़ी को भीतर ले गयी। पास के पलंग पर काली भुजंग-सी आया हथेली पर खैनी चूना मल रही थी। धोती जाँघों तक उठी थी, आँचल गोदी में पड़ा था। अचानक इतनी रात को स्वामिनी को कमरे में देखकर वह हड़बड़ाकर उठने लगी।

"श श" पन्ना ने उसे हाथ से बैठने का संकेत दिया।

फलालेन की गुलाबी नाइटी में कली सो रही थी। एक हाथ गाल के नीचे था, दूसरा छाती पर।

कैसी सलोनी सूरत थी! कौन कहेगा यह वही चूज़े की-सी गरदन है, जिसे पार्वती ने क्रूरता से मरोड़कर दूर फेंक दिया था? क्या ये वे ही सूखे निर्जीव अधर हैं, जिन्हें खोल-खोलकर बड़े यत्न से रोज़ी ने ब्रैण्डी से रात-भर सिक्त किया था? क्या यह वही नन्हा कलेजा धड़कता फलालेन की नाइटी को उठा-गिरा रहा है, जो एक बार केवल एक नन्हें स्पन्दन से ही रोज़ी को आश्वासित कर पाया था?

रोज़ी चुपचाप खड़ी पिंजरा पलंग पर सोयी उस देवांगना-सी सुन्दरी बालिका को एकटक निहार रही थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। मानव को कैसी अपूर्व दैवी शक्ति प्रदान की है उस सिरजनहार ने! मानव यदि किसी के प्राण ले सकता

हैं तो किसी को जीवनदान दे भी सकता है। इस नन्हीं बालिका को क्या सचमुच रोज़ी ने ही जीवनदान दिया है ?

वह जो इस सजे-सजाये कमरे के गुदगुदे पलंग में सोयी मीठे सपनों में डूबी पड़ी है, उसका श्रेय-किरीट क्या स्वयं उस उदार पिता ने रोज़ी के माथे पर धर दिया है ?

"रोज़ी, अब चलें, बहुत रात हो गयी है," धीमे से रोज़ी को टसकाकर पन्ना बाहर खींच ले गयी।

"इट इज़ सो सिली ऑफ़ मी डार्लिंग" रोज़ी ने छाती से रूमाल निकालकर आँखें पोंछी, नाक सिनकी और हँसकर पन्ना का हाथ थपथपाने लगी। हँसने पर रोज़ी का चेहरा इसी भोली निर्दोष बालिका-सा लगने लगता था।

"पता नहीं क्या हो गया मुझे, पर उस सुन्दर बच्ची को देखकर क्षण-भर को मैं विश्वास ही नहीं कर पायी कि यह वही मरी चुहिया-सी बच्ची है, जिसे मैंने जब तुम्हारी गोदी में डाला, तो इतनी भी उम्मीद नहीं थी कि यह महीना-भर भी जी पायेगी।"

"कितने यत्न से तुमने इसे पाला होगा पन्ना, मैं समझ सकती हूँ। नाक, आँख, कुटिल ओठ, सब असदुल्ला पर गये हैं," रोज़ी फुसफुसाकर कहने लगी। "लम्बी भी कितनी है, एकदम पठान की बेटी है पन्ना। पर आँखें देख रही हो ? 'ओह द पूअर रैंच !' रोग से पहले उस की आँखें कितनी सुन्दर थीं, और पलकें, ओह पन्ना, मैंने ऐसी सुन्दर आँखें आज तक फिर नहीं देखीं। उसके हँसने से पहले उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हँसने लगती थीं। बोलने से पहले उसकी आँखें बोलती थीं और अब...."

रोज़ी सहसा स्वयं ही सहमकर चुप हो गयी।

"अब क्या रोज़ी ?" पन्ना साँस रोककर बैठ गयी।

"अब ? अब वह अन्धी है पन्ना, उसका रोग अब अच्छी से अच्छी औषधियों से भी मोर्चा लिये खड़ा है।" रोज़ी का कण्ठस्वर भय से काँप उठा। पन्ना का गला सूख गया। जीभ जैसे तालू से चिपक गयी।

"क्या तुम सोचती हो," वह रुक-रुककर पूछ उठी, "कि कभी पिता के नाक-नक़्श और माँ की बड़ी आँखों की यह अविकल प्रतिमूर्ति भी इस महारोग का शिकार बन सकती है ? क्या यह सम्भव नहीं है रोज़ी कि जिस विचित्र प्रकृति ने इसे पिता का माथा, क़द और रंग दिया है, माँ की बड़ी-बड़ी आँखें दी हैं, वह इसे माँ-बाप का बड़ा रोग भी दे दे ?"

"नहीं पगली" रोज़ी ने पन्ना को बाँहों के आश्वासनपूर्ण घेरे में बाँध लिया। "फिर इसने तुम्हारी-सी स्वस्थ माँ का स्तनपान किया है। तुम्हें कभी ऐसा कोई भय नहीं होना चाहिए। निश्चिन्त रहो पन्ना, तुम्हारी सुन्दरी बिटिया को कभी इस रोग

का भय नहीं रहेगा, पर इसे एक भय सर्वदा रहे, यह मैं चाहती हूँ। जानती हो किसका ?"

"किसका रोज़ी ?"

"उसका", आकाश की ओर अपनी गठिया से पंगु टेढ़ी अँगुली उठाकर रोज़ी सहसा गम्भीर हो गयी। "तुमने बाइबिल पढ़ी है ना पन्ना ? उन दस कुष्ठ रोगियों की कथा याद है जिन्हें ईसू ने अपने दिव्य स्पर्श से रोग मुक्त कर दिया था, पर उन दसों में से केवल एक ही उसके पास कृतज्ञता-ज्ञापन करने आया था। मैं चाहती हूँ यह उस दस में से एक-सी ही कृतज्ञ बनी रहे।"

"उस महान् अदृश्य व्यक्तित्व के अस्तित्व को क्या यह यहाँ रहकर जान पायेगी ?"

"इसी लिए मैं तुमसे इसे माँगने आयी हूँ पन्ना। मैं चाहती हूँ इसे नैनीताल के कॉन्वेण्ट में उन तापसियों के बीच ले जाकर छोड़ दूँ, जहाँ पाप या कलुष की छाया भी नहीं पड़ सकती।"

"ओह रोज़ी, तुम क्या सोचती हो कि पीली कोठी में रहने पर मैं इसे अपने ही रंग में रँग दूँगी।"

"पन्ना, माइ प्रेशियस," रोज़ी कुरसी पर बैठकर हाँफने लगी थी। इतनी सीढ़ियाँ एक साथ चढ़ने-उतरने का उसे अभ्यास नहीं था। "कोयले की कोठरी से क्या कोई भी बिना कालिख लिये लौट पाता है ? तुम घबड़ाती क्यों हो पन्ना, जिसने तुम्हारा स्तनपान किया है वह कहीं रहे, तुम्हें क्या सहज ही में भूल पायेगी ? मैं अभी दो दिन यहाँ रहूँगी, इस बीच तुम स्वयं सोच-विचार कर निर्णय ले सकती हो।"

पन्ना ने बाणी को पहले ही समझा-बुझा दिया था कि कली को वह स्वयं तैयार कर मेमसाहब से मिलाने लायेगी। नित्य कली माँ का नाश्ता निबटने पर रेशमी चूड़ीदार पाजामा और क़मीज़ ओढ़नी में, इत्र में बसी, सजी-बजी गुड़िया-सी उससे मिलने आती थी। दोनों बहनों के बीच उसकी छोटी कुरसी लगी रहती। बड़ी माँ के साथ नाश्ता कर वह आया के साथ घूमने जाती। लौटने पर मौलवी साहब उर्दू पढ़ाते और मैगी आण्टी अँगरेज़ी। फिर छोटी माँ उसे स्वयं एक घण्टे तक कत्थक नृत्य की कठिन घुरनियों में चरखी-सी घुमाती रहती।

"एक-दो दिन कली का रियाज़ बन्द रखना होगा बड़ी दी, रोज़ी को शायद यह सब अच्छा नहीं लगेगा," खिसियाये स्वर में पन्ना ने बड़ी दी से कहा तो वह आश्चर्य से उसे देखती रही थी।

"क्यों दो दिन के लिए कहीं से तेरी रोज़ी आयी है तो लड़की का नाचना-गाना ही बन्द कर देगी ? लड़की तेरी है या उसकी ? तुझे पता है पन्ना, कच्ची मिट्टी को ही

चतुर कुम्हार जैसा चाहे-वैसे मोड़ सकता है, पक्की मिट्टी को नहीं। एक बार इन मिशनरियों के हाथ में लड़की सौंप दी तो समझ लेना गयी। वह उसे अपनी ही विद्या सिखायेंगी, हमारी बिल्कीज़ नहीं भूल गयी आपा को ?"

बिल्कीज़ मुनीर की बड़ी बहन की लड़की थी। देखने में उजली-चिट्टी मेम, पर एकदम दुबली-पतली। पता नहीं किसने बिल्कीज़ की माँ से कह दिया कि भक्तिन स्कूल में भेजने पर, उसकी बिटिया निखर आयेगी। शायद स्वयं बिल्कीज़ के विदेशी पिता का भी आग्रह था। चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् बिल्कीज़ घर लौटी तो स्वयं उसकी माँ ही उसे नहीं पहचान पायी और फिर क्या बिल्कीज़ उसके साथ रहना चाहती थी ?

न वह मिर्च-मसाले का सालन खा पाती, न रोटी चपाती। काँटे-छुरी के बिना उसके कण्ठ के नीचे ग्रास नहीं उतरता। लाख चेष्टा करने पर भी उसकी माँ न उसे गाना सिखा पायी, न नाच। दिन-रात माँ-बेटी में खनकती रहती और एक दिन बिल्कीज़ किसी मेल गाड़ी के ऐंग्लो इण्डियन ड्राइवर के साथ भाग गयी थी।

"तुम भूलती हो बड़ी दी," पन्ना ने कहा, "रोज़ी की ऐसी कोई शर्त नहीं है। बिल्कीज़ आपा की मेम ने तो पहले ही लिखत-पढ़त करवा ली थी कि पढ़ाई पूरी होने तक उसे एक वार भी घर नहीं आने देंगी। पर रोज़ी का कहना है कली हर छुट्टी में यहाँ आ सकती है और चाहने पर मैं भी उससे मिलने जा सकती हूँ। और फिर क्या तुम सोचती हो हमें इस ज़िन्दगी में बड़ा भारी सुख है जो कली को भी उसी ज़िन्दगी के लिए तैयार करूँ ?"

"कहती क्या है छोटी, तुझे यहाँ दुःख है ? कौन-सी ऐसी तकलीफ़ है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ ? क्या मैंने कभी कोई ज़बरदस्ती की है ? जब वह मुँहजला मजुमदार महीनों यहाँ बिना कुछ दिये मेरी हज़ार-हज़ार रुपये की बोतलें खाली करता पड़ा रहता था, तब भी मैंने कुछ नहीं कहा तुझसे...."

"चुप करो बड़ी दी, रोज़ी सुनेगी तो क्या कहेगी," पन्ना ने द्वार भिड़ा दिया था।

"भाड़ में जाये तेरी रोज़ी। एक से एक ग्राहक उठकर लौट जाते थे, पर मजाल है जो मैंने कभी तुझसे कुछ कहा हो। फिर एक दिन तेरे गले में यह ढोल लटकाकर नाशपीटा भाग गया, तो तू इतनी बड़ी बात मुझसे ही छिपा गयी ! जिसके आँचल से मैं आँखों की तिजोरी की चाबियाँ लटकाकर गयी, वही मुझसे धोखाधड़ी कर स्वयं सटक सीताराम ! और फिर जब नाक कटवाकर लौटी तो किसने शरण दी तुझे ? तब कहाँ थी यह रोज़ी ?"

दोनों बहनों में आज तक कभी ऐसे उच्च स्वर में बहस नहीं हुई थी। पन्ना ने देखा, मैगी, वाणी, सोनिया, लिज, सब ऊपर की मंज़िल पर झुण्ड बनाकर, एक-दूसरे पर गिर पड़ रही थीं।

"क्या सीन क्रीएट कर रही हो बड़ी दी। कली मेरी लड़की है, मैं जहाँ चाहे उसे भेज सकती हूँ।"

"अच्छा ? जब मरियल-सी उस कलूटी को लेकर यहाँ आयी थी, तभी क्यों नहीं भेज दिया उसे गिरजे में ? कलूटी ईसाइनों के बीच में ठीक लगती। तब उसकी औक़ात थी हमारे बीच रहने की ? छूने में भी घिन आती थी हरामज़ादी को...."

पन्ना और नहीं सुन सकी। क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा। वह पता नहीं क्या कहने जा ही रही थी कि परदा उठाकर शान्त मूर्ति रोज़ी खड़ी हो गयी।

"पन्ना, माई प्रेशियस," उस ने हँसकर कहा, "तुम्हारी बहन तुम्हारी कली को कितना चाहती है। शायद उसे स्कूल भेजने में इसी से उन्हें इतना कष्ट हो रहा है। कोई बात नहीं, मैं कली को नहीं ले जाऊँगी।"

"तुम ले जाओगी," तड़पकर माणिक रोज़ी की ओर मुड़ गयी, "कली को ही नहीं, उसकी माँ को भी। मैंने आज तक आस्तीन में साँप पाला था, यही समझकर सन्तोष कर लूँगी। फिरंगी की दोगली बिटिया भला मेरी सगी होगी ? इसी से तो आज अपनी ही बेवफ़ा क़ौम का दामन पकड़कर चल दी है।"

"ठीक है बड़ी दी, इतना चीखने-चिल्लाने से गला बैठ जायेगा। तुम्हें आज रात की बैठक का ध्रुपद भी तो अब अकेले ही गाना होगा।" मर्मस्थल पर तीर का अचूक निशाना साध पन्ना रोज़ी का हाथ पकड़कर बाहर निकल गयी।

यही तो बड़ी दी की एकमात्र दुर्बलता थी। पन्ना के बिना उसके सधे कण्ठ का सँवरे से सँवरा आलाप भी बेसुरा होकर बिखर जाता था। फिर उस दिन की बैठक क्या ऐसी-वैसी थी ? संगीत का अनोखा जौहरी स्वयं सीप के मोती बीनने आ रहा था। क्या कहेगी अब नवाब शमसुद्दीन से ? बयाना भी तो पहले ही ले चुकी थी।

इधर बढ़ते रक्तचाप ने हृदयहीन शत्रु की भाँति उसकी गरदन दबोच ली थी। कई बार जोंकें लगवा-लगवाकर सेरों ख़ून निकलवा चुकी थी। फिर भी जब देखो तब नाक का गुस्सा ओठों पर उतर आता और जो जी में आता, वही बकने लगती। पर करती भी क्या ? क्या पन्ना ने उसे यह दूसरी बार धोखा नहीं दिया था ?

एक बात और भी थी। ज़माना देखते ही देखते बदल रहा था। जिन लड़कियों को वह जैसे चाहे नचा लेती थी, उन्होंने अब दुष्टा मैगी के संरक्षण में एक छोटा-मोटा यूनियन बना लिया था। सप्ताह में एक दिन की छुट्टी देनी होगी। पर उस दिन भी उन्हें दिन-भर का वेतन देना होगा। उस पर हरामज़ादियाँ कैसी छुट्टी मनाती हैं, खूब समझती थी माणिक !

इधर-उधर घूमघामकर सौन्दर्य की फेरी लगाती छोकरियों को वह एक-दो बार रँगे हाथों पकड़ भी चुकी थी। जबतक गोरे फ़ौजियों की टुकड़ी छावनी में रहेगी, उन फेरी लगानेवालियों की बिक्री धड़ाधड़ होती रहेगी, और जबतक मैगी उनकी

ठेड बनी रहेगी, तबतक "वह उनमें से एक से भी कैफ़ियत नहीं माँग सकेगी, यह भी वह खूब समझती थी।

इसी से सुन्दरी कली को वह एक सुरक्षित जीवन बीमे की अटूट धनराशि के रूप में ही देखने लगी थी। यह ठीक था कि लड़की ने दुर्भाग्य से माँ का रंग नहीं पाया था, पर उसका अपूर्व अंग सौष्ठव, चपल दृष्टि, सुकुमार चेहरे पर पड़ रही समय से पूर्व आ गये अप्रत्याशित यौवन-अतिथि की स्पष्ट छाया उसे दिन-प्रतिदिन आश्वस्त करती जा रही थी।

सुरीले कण्ठ में स्वयं सरस्वती उतर आयी थी। कभी-कभी माँ की गायी ठुमरी की वह ऐनमेन नक़ल उतारकर रख देती—

गोरी तोरे नैन—
बिन काजर कजरारे।

और सुननेवाले गुणी पारखी दाँतों तले अँगुली दबा लेते। उस नन्हीं स्वरलयनटिनी की मृगी-सी भयत्रस्त आँखों के सहारे ही वह अपना बुढ़ापा काट सकती थी।

विधाता-प्रदत्त इस अनोखे मूलधन को वह किसी चतुर वणिक्पुत्र की ही भाँति, चक्रवर्ती ब्याज पर चढ़ाकर, पल में चौगुना बढ़ा लेगी। न रहे सोनिया, लिज, न रहे वाणी सेन और लिवीराना, एक अकेली कली ही झूम-झूमकर उसके नन्दन वन की शोभा द्विगुणित कर देगी। पर उसी कली का मूल्य क्या वह खूसट मेम पन्ना के कानों में आकर फुसफुसा गयी थी? सारी रात माणिक सो नहीं पायी।

दूसरे दिन उठी तो पन्ना सामान बाँध चुकी थी। गैरेज में दो-दो मोटरें पड़ी थीं, पर पन्ना ने ताँगा मँगवा लिया है, यह भी वाणी सेन उससे आकर कह गयी थी।

"बड़ी दी, छोटी दी बिना कुछ खाये-पिये ही चली जा रही हैं," डरती-डरती वह कह गयी थी।

"मरने दे अपनी छोटी दी को, मैंने क्या दुनिया-भर के भिखारी-कोढ़ियों को जिमाने का ठेका लिया है?" माणिक के पुरुष कण्ठ की गुरु गर्जना, दो-तीन दीवारों को भेदकर, पन्ना के कानों से टकरा गयी थी। व्यंग्य रोज़ी पर था, यह वह समझ गयी।

बड़ी दी जानती थी कि रोज़ी कुष्ठाश्रम की डाक्टरनी है।

एक छोटे-से सूटकेस में बड़ी दी के कली को दिये गये बहुमूल्य उपहार भरकर पन्ना फिर भी कली की अँगुली पकड़े बड़ी दी के कमरे में पहुँच गयी। बहुत बड़ी आईना जड़ी पलंग पर बड़ी दी चुपचाप लेटी थी। यह पलंग अम्मा का था। और एक क्षण को पन्ना थमककर खड़ी रह गयी। उसे ऐसा लगा जैसे यह बड़ी दी नहीं, स्वयं अम्मा ही लेटी हो। वैसी ही माथे पर हाथ धरकर लेटने की अम्मा की चिर-परिचित मुद्रा! चेहरा उतरकर छोटा-सा निकल आया था। रेशम की गुलाबी नाइटी में बड़ी

दो का सफ़ेद मक्खन-सा गोल चिकना शरीर और भी पृथुल लग रहा था। दोनों आँखें सूनी थीं। कितनी बीमार लग रही थी बड़ी दी! सहसा पन्ना का चित्त अनोखी ममता से भर आया। "बड़ी दी, मैं जा रही हूँ," उसने धीमे स्वर में कहा। न जाने किस दिवा-स्वप्न में डूबी माणिक चौंककर उठ बैठी।

"यह तुम्हारे दिये गहने हैं, उसने चुपके से सूटकेस माणिक की पलंग के नीचे खिसका दिया। बड़ी दी का चेहरा विवश हो गया। वह एक शब्द भी नहीं बोली।

"यह कली आयी है बड़ी दी, तुम्हें प्रणाम करने," सहमी-सी कली को पन्ना ने बड़ी दी के सामने ढकेल दिया।

"निकल जा मेरे कमरे से," बड़ी दी पहली बार गरजी। पन्ना सहमकर पीछे हट गयी। तमतमाये चेहरे पर सहमकर अंगारे-सी दहकती बड़ी दी की आँखें जैसे फट-कर बाहर निकलने को उद्यत हो गयीं। कली सहमकर बाहर भाग गयी थी। अकेली पन्ना चुपचाप खड़ी रह गयी।

"जिसने तुझे छाती से लगाकर पाला, तेरे लिए सजी-सजायी दुलहन की डोली को लात मारकर ठुकरा दिया, उसी को तू नागिन-सी डसकर अब प्रणाम करने आयी है?

"ठीक कहती थी अम्मा। रण्डी की औलाद अपनी सगी माँ की भी सगी नहीं होती। फिर तू तो उस फिरंगी की औलाद है जो अपने सगे बाप को भी बूढ़ा होने पर लात मार बाहर कर देता है।

"खबरदार जो इसके बाद मैंने तेरा और इस बंगाली की छोकरी का मुँह देखा। दफ़ा हो जा, समझी?"

माणिक उत्तेजना से बुरी तरह हाँफने लगी थी। लग रहा था उसके अन्तर में धधकती क्रोध की भट्ठी का अदृश्य धुंआ उसके कानों से भी निकलने लगा है।

"रुक जा," बाहर जाती पन्ना बड़ी दी की गर्जना सुनकर फिर रुक गयी।

माणिक के कठोर आदेश की गर्जना सुनकर अपने-अपने कमरों से निकली कई लड़कियाँ एक साथ फिर डरी चुहियों-सी दुबक गयीं।

"मैं तेरा और तेरी मेम का पूरा सामान देखूँगी। बिस्तरा भी खुलवाना होगा, समझी? इन फिरंगियों की चालाकी मैं खूब समझती हूँ।"

पन्ना का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। क्या यह सचमुच स्नेही बड़ी दी कह रही थी। उस पर अविश्वास? जिस पन्ना ने कभी बड़ी दी का धेला भी नहीं छुआ, जो चलते समय बड़ी दी का दिया पन्ने का सतलड़ा हार तक खोलकर कली के गहनों के साथ लौटा गयी है, उसी छोटी बहन की तलाशी लेगी बड़ी दी? क्या कहेंगे पुराने नौकर-चाकर, क्या कहेंगी वाणी सेन, मैगी, लिबी और सोनिया, लिज?

सामान ताँगे पर लद चुका था पर कस्टम के हृदयहीन अधिकारियों की ही भाँति बड़ी दी ने उसकी एक-एक साड़ी को झटक-झटककर फैला दिया। वहाँ था ही क्या ? वाणी का दिया कली के अन्नप्राशन का सोने का गड़ुवा मंजीर-सा बजता-ठुनकता, लुढ़कता चला गया तो पन्ना ने उठा लिया। सब लड़कियाँ बड़ी दी के भय से सहमकर परदों से झाँक रही थीं, अकेली वाणी वहीं पर खड़ी थी। उसके जी में आ रहा था माणिक को झकझोरकर रख दे।

"वाणी यह गड़ुवा भी तुम रख लो," पन्ना ने गड़ुवा वाणी की ओर बढ़ाया तो अबतक ओठ काटकर रुलाई रोकती वाणी उससे लिपट गयी।

"मरे को क्या मारती हो छोटी दी ! मैं इसके बिना कैसे रहूँगी यहाँ," वह बिलखने लगी।

सदा चुपचाप रहनेवाली शान्त प्रकृति की सौम्या पन्ना वाणी की एकमात्र सखी थी। फिर जब से कली आयी थी, वाणी ही एक प्रकार से उसकी माँ बन गयी थी। छोटी दी से छीन-झपटकर वह कली को अपने कमरे में उठा लाती। वही उसके मलिन जीवन-क्षितिज की एकमात्र क्षीण रेखा थी। कभी-कभी कमरा बन्द कर वह अपना स्तन उन क्षुधातुर नन्हें अधरों से लगा देती, अबोध कली कभी टुकुर-टुकुर उसे देखती, फिर सूखे स्तन से चिपट जाती। वाणी को लगता, नन्हीं कली की समस्त स्फूर्ति उसके प्राणों में समा गयी है। जो सुख उसे माणिक की सम्पन्न पीली कोठी में कभी नहीं मिला था वह उसे कली का क्षणिक सहवास पल-भर में दे गया था। कभी वह उसे गाल से चिपकाये, मीठी-मीठी लोरियाँ गाती, कभी नीले आकाश की ओर देखती, छुमक-छुमककर हाथ-पैर फेंकती कली की बालक्रीड़ा देखकर एकान्त में ही आनन्द-विभोर हो उठती। आज वही कली मृगतृष्णा की सी क्षणिक बहार दिखाकर उससे सदा के लिए बिछुड़ी जा रही थी। वह जानती थी कि कली अब लौटकर कभी नहीं आयेगी। मनोमालिन्य की लोहे की दीवार दोनों बहनों के बीच अभेद्य दृढ़ता से खड़ी हो गयी थी, माणिक की स्वार्थपरता को वह कई बार परख चुकी थी। माणिक प्राण रहते कभी भी नेकी कर दरिया में नहीं डाल सकती थी। बड़ी दी की लोलुप दृष्टि क्या वह कई बार सुन्दरी कली के एक-एक अंग पर निबद्ध नहीं देख चुकी थी ?

"पन्ना गाड़ी का समय हो गया है, अब चलो," रोज़ी ने कहा और पन्ना ने अपने को वाणी के बाहु-बन्धन से छुड़ा लिया। एक बार उसने बड़ी दी की ओर बड़ी आशा से देखा। क्या पता बड़ी बहन स्नेहपूर्ण आश्वासन देकर फिर कह उठे, 'जाने दे पन्ना, पता नहीं गुस्से में तुझसे क्या-क्या भला-बुरा कह गयी, न हो तो कली को रोज़ी के साथ भेज दे, तू मत जा।'

पर माणिक की आँखों से अभी भी चिनगारियाँ छूट रही थीं।

ताँगे में बैठकर पन्ना ने अन्तिम बार पीली कोठी को देखा। कैसी अद्भुत विदा की वेला थी ! पाप से विदा, दुराचार से विदा, निर्लज्जता से विदा, पाखण्ड से

विदा ! गुलावी नाइटी में अर्द्धनग्ना माणिक, कुरसी के हत्थे पर माथा टेक सिसकती वाणी सेन, रेशमी परदों से झाँकती सोनिया, लिज, मैगी और पिंजरे में वन्द, सींकचों में चोंच मारता अफ़्रीकी काकातुआ ! उसके प्रेमी का एकमात्र वही स्मृति-चिह्न तो रह गया था। कितने वर्ष पूर्व उसके जन्मदिन पर विद्युत रंजन सोने के पिंजरे में वन्द कर वह वहुमूल्य भेंट उसके लिए नैरोवी से ले आये थे। पाँवों में वँधी थी सोने की पतली-सी ज़ंजीर और उसी को थामकर विद्युत रंजन वड़े खिलवाड़ में उसे कन्धे पर चढ़ाकर दरवार में जाते थे।

आज पन्ना चलने लगी तो काकातुआ ने तूफ़ान मचा दिया। कें कें कें कें जैसे कोई उसकी गरदन मरोड़ रहा हो। क्या पशु-पक्षियों को भी विधाता ने ऐसी अलौकिक सूक्ष्म दृष्टि दी होगी ? क्या वह जान गया होगा कि उसकी स्वामिनी अव कभी लौटकर नहीं आयेगी ? पन्ना ने धीरे-धीरे ओझल होती पीली कोठी को अन्तिम वार देखकर, आँखें वन्द कर लीं,। स्मृतियों का सागर उमड़ उठा—जब वह, हीरा और माणिक उस झूले पर पेंग लेती-लेती आकाश छू लेती थीं, जव उस वड़े-से जामुन के पेड़ से रसीले जामुन गिरा-गिराकर, लोटे में हिला नमक मिर्च से सान, माणिक गिन-गिनकर वहनों को जामुन वाँटती थी, जव तीनों वहनों के पैरों से वँधे घुँघरुओं की मीठी झनकार से पीली कोठी गूँज उठती और मखमली कुरसी में वैठी मुनीर अपनी नृत्य-प्रवीणा पुत्रियों को वाँहों में भर-भरकर चूम लेती थी। वड़ी दी की कीर्तिस्तम्भ पीली कोठी आकाश में गर्वीली गरदन उठाये कुछ देर तक दिखती रही, फिर ओझल हो गयी। रोज़ी चुपचाप वैठी थी। अवतक वह एक शब्द भी नहीं वोली थी। धीरे से उसने पन्ना का हाथ पकड़कर थपथपा दिया। अचानक उस मैत्रीपूर्ण स्पर्श ने पन्ना की मूक वेदना को प्रगल्भ वना दिया। चेष्टा करने पर भी वह अपनी सिसकी को नहीं घुटक पायी।

पाँच

"अव क्या होगा रोज़ी, कहाँ रहूँगी मैं ?"

"चिन्ता क्यों करती हो पन्ना, सच्चा आनन्द केवल सेवाव्रत में है, जवतक मैं हूँ तुम्हें चिन्ता किस वात की है ?"

पर पन्ना को आज पहली वार अपने दायित्व का भास हुआ था, वह क्या अव अकेली थी ? फिर अकेली भी होती तो क्या वह रोज़ी के साथ कुष्ठाश्रम में रह पाती ?

क्या वह उस रोज़ी की भाँति महान् हो सकती थी, जिसे स्वयं अपने हाथों से वीभत्स कुष्ठ रोगियों के हाथ-पैरों के व्रण धोते वह कई बार देख चुकी थी....

एक बार रोज़ी ने बड़ी स्वाभाविकता से कहा था, 'पार्वती की आँखों में दवा डाल देना तो पन्ना।'

और वह बैठी नाक, झड़ी अँगुलियों और पलकहीन उन बड़ी आँखों को देखकर घृणा से निहार उठी थी। बड़ी चेष्टा से उसने बिना पलकों की उन आँखों में दवा डाली थी, और घर आकर अपनी अँगुलियों को खूब रगड़कर डेटॉल से धोने पर भी उसकी सिहरन नहीं गयी थी। आज उसी पार्वती की पुत्री के लिए भोग-विलासपूर्ण समस्त सामग्री को स्वेच्छा से ही ठुकराकर वह चली गयी थी।

"रोज़ी" उसने कहा, "मेरे पास बैंक में बीस हज़ार रुपया पड़ा है। शायद पाँच-सात हज़ार का गहना निकल आये। क्या तुम सोचती हो इतने में मैं कली को लिखा-पढ़ाकर ठिकाने लगा सकूँगी?"

"बहुत समय है पन्ना, अभी क्यों घबरा रही हो," रोज़ी ने उसकी पीठ थप-थपाकर, एक बार फिर उसे अपने मृदुल आश्वासन में बाँध लिया था।

रोज़ी का आश्वासन व्यर्थ नहीं था। वह चतुरा विदेशिनी पहले ही दोनों बहनों के सम्भावित मनोमालिन्य को सूँघ चुकी थी।

पन्ना तो उसकी सूझबूझ देखकर दंग रह गयी थी। नैनीताल के सीमान्त पर बसी 'देवदार' कोठी को, पूरे साल-भर का किराया देकर रोज़ी ने उसके लिए दो महीने पहले ही बुक कर दिया था।

"मैं जानती थी, एक न एक दिन तुम मेरे पास ही आओगी और फिर अपनी इस सुन्दर धरोहर को मैं क्या कुष्ठाश्रम में रख सकती? इस एकान्त में, तुम स्वयं चाहने पर ही किसी से मिल सकती हो—उसके लिए भी तुम्हें एक मील नीचे उतरना होगा। तुम्हारे सबसे निकट 'रोज़ विले' है। वहाँ मेरे मित्र बिशप लियाँ रहते हैं। उसके नीचे उस लाल छतवाले बँगले में एक पहाड़ी परिवार रहता है। बड़े भले लोग हैं। मैंने उनसे भी कह दिया है, तुम्हें देखती रहेंगी मिसेज़ जोशी।"

"पर मैं यहाँ अकेली कैसे रहूँगी रोज़ी?" पन्ना को उस विराट् बँगले के किसी बड़े जहाज़ के केबिन-जैसे कमरे काट खाने को दौड़ रहे थे। कली का स्कूल इतनी दूर था और रोज़ी का कहना था कि वह लाड़-प्यार में इतनी बिगड़ चुकी थी कि उसे बोर्डिंग में ही रखना पड़ेगा। कभी-कभी होम लीव मिलने पर वह पन्ना के पास आकर रह सकती थी।

"कुछ दिनों तक मैं तुम्हारे पास आकर रहूँगी। और यदि तुम मेरे पास ही आकर रहना चाहो, तो तुम्हारा स्वागत है। मैंने तुमसे पहले भी कहा था पन्ना, उस सेवाव्रत से बढ़कर तुम्हारे कठिन असाध्य मानसिक रोग की और कोई ओषधि नहीं हो सकती।"

उत्तर में पन्ना ने सिर झुका लिया था। क्या रोज़ी के उस महान् सेवाव्रत के लिए वह कभी अपने अविवेक लम्पट चित्त को मना पायेगी ?

कली के जीवन का इतिहास रेवरेण्ड मदर से छिपा नहीं था। रोज़ी उन्हें सब कुछ बता चुकी थी। "उन तापसियों के दरबार में मिथ्याभाषण नहीं चलता पन्ना। मैं बात बनाकर कह देती, तो शायद स्वयं मेरा ही चित्त गवाही नहीं देता। मदर ने सरनेम के लिए पूछा तो समझ में नहीं आया क्या लिख दूँ—खान या मजूमदार ?"

"मजूमदार ही लिखाना रोज़ी, क्या पता कभी यह खान नाम ही उसके विवाह-मार्ग में रोड़ा बनकर अटक जाये ?"

रेवरेण्ड मदर ने केवल एक ही कड़ी शर्त रखी थी। बिना कली की रक्तपरीक्षा के वे उसे बोर्डिंग में नहीं लेंगी। किन्तु कली का रक्त भी उसके सुन्दर निर्दोष चेहरे की भाँति निर्दोष निकला था।

कली के बोर्डिंग में जाने पर पन्ना को उस भाँय-भाँय करती विराट् कोठी की रिक्तता का आभास हुआ। आसपास कहीं भी कोई बँगला नहीं था। कोई रात-आधी-रात आकर गला भी घोंट दे तो किसी को कानोंकान खबर नहीं होगी।

"यह सब पहाड़ में नहीं होता पगली," रोज़ी ने उसे आश्वासन दिया था, "मैंने जान-बूझकर ही तुम्हारे लिए यह बँगला छाँटा है। जिस दलदल से तुम निकलकर आयी हो, और जिन्होंने तुम्हें वहाँ से निकलते देखा है, उनमें से किसी की भी दृष्टि तुम पर नहीं पड़े, यही सोचकर तुम्हें यहाँ लायी हूँ। मैं जानती हूँ कि जिस कोलाहल में तुम्हें रहने का अभ्यास है, उसके बाद तुम्हें यहाँ मौत का-सा सन्नाटा लगेगा। पर एक नये जीवन की सृष्टि के लिए माँ को कितनी मर्मान्तिक यातना सहनी पड़ती है इसका तो तुम्हें अनुभव है ना ?"

काँच के नीले बटन की-सी उस विदेशिनी की स्नेह-स्निग्ध नीली आँखों में कैसी अनुभूत वेदना की झलक थी ! क्या रोज़ी ने भी ऐसी वेदना सही होगी ? क्या उसने भी कभी किसी निष्ठुर प्रेमी की ठोकर खाकर सेवाव्रत की उस 'क्षुरस्य धारा' पर चलना स्वीकार किया होगा ? आज तक कभी भी पन्ना ने उसके जीवन के अन्तरंग कक्ष का परदा उठाकर झाँकने की धृष्टता नहीं की थी। "क्यों रोज़ी, क्या कभी भी तुम्हें अपने स्वदेश की याद नहीं आती ?" एक ही बार उसने पूछा था।

"मेरा स्वदेश मेरा आश्रम है पन्ना", हँसकर दिये गये उस उत्तर ने ही पन्ना की जिज्ञासा का अन्त कर दिया था।

जाने से पहले रोज़ी ने उसे अपने साथ ले चलने का प्रस्ताव भी दोहराया था। "तुम चाहो तो अल्मोड़ा शहर में भी आकर रह सकती हो। पर यहाँ रहने पर तुम्हें एक-एक क़दम फूँक-फूँककर धरना होगा। अब तुम पीली कोठी की पन्नाबाई नहीं, कली की माँ हो।"

"मैं यहीं रहूँगी रोज़ी, मुझे तो अब लगने लगा है जैसे विधाता ने इस अरण्य-स्थित 'देवदार' की सृष्टि ही मेरे लिए की थी।"

कुमाऊँ के नरभक्षियों को पिस्सुओं की भाँति मसलनेवाले प्रख्यात शिकारी कोरवेट का बनाया वह बँगला उसी के दुस्साहसी व्यक्तित्व का आवास बनने के उपयुक्त था। सन्ध्या होते ही वहाँ सियारों की पूरी बिरादरी जुट जाती। पहाड़ में मोटे अजदहे नहीं होते यही रोज़ी सुनती आयी थी। पर एक दिन वह पन्ना के साथ टहलने निकली तो रोडीडेंड्रान के मोटे तने से लिपटे विकराल पायथन को देखकर थर-थर काँपने लगी थी। पेड़ के तने से भी मोटी चिकनी देह को वह पहाड़ की क्षणिक धूप-छाँह में उलट-पुलटकर सुखा रहा था।

"मैं तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ सकती पन्ना, बाप रे बाप! लगता है, जिम कोरवेट अपनी पुस्तक के जीते-जागते सब 'इलस्ट्रेशन्स' यहीं छोड़ गया है!"

कोई भी चौकीदार वहाँ आने को राज़ी नहीं हुआ था।

"नहीं, मेमसाहब, कोरवेट साहब के बँगले में तो पाँच ही बजे से भालू नाचने लगते हैं, और वैसे डराना तो नहीं चाहिए", बूढ़ा माली रोज़ी को बँगले का पूरा अभिशप्त इतिहास बता गया था, "बँगला भुतहा भी है। एक बार सौ रुपये महीने पर मैं यहाँ की चौकीदारी करने को आया। एक पंजाबी ने यहाँ बँगला खरीदा था। बोला, जिस कमरे में जैसे चाहो वैसे रहो, कोई काम न धन्धा, बस दिन-भर खाना-पीना और सोना। सिर्फ़ दो महीने के लिए गरमियों में सूद साहब आता, पर बाप रे बाप, पहले ही दिन रात के नौ भी नहीं बजे थे कि हाथ में बन्दूक़ लिये शिकारी साहब का परेत और पीछे-पीछे चिंघाड़ते तराई के हाथी, हिमालय के भालू और कुमाऊँ के आदमख़ोर। कौन करेगा इस बँगले की चौकीदारी।"

पर पन्ना की निर्भीक हँसी देखकर रोज़ी दंग रह गयी थी।

"क्यों घबरा रही हो रोज़ी! कैसे-कैसे अकड़बाज़ साहब लोगों से पाला पड़ चुका है, तुम निश्चिन्त रहो, मैं ख़ूब मज़े से रह पाऊँगी।"

सचमुच ही उस बीहड़ वन में पन्ना ने सुदीर्घ दस वर्ष काट दिये। न वह किसी से मिलती-जुलती, न भूल से भी किसी को चिट्ठी लिखती। कभी-कभी रोज़ी का मित्र, बूढ़ा फ्रेंच पादरी बिशप लियाँ, उस से मिलने चला आता। महीने में एक बार रोज़ी आकर उस के साथ दो-तीन दिन की छुट्टियाँ मना जाती।

"इस वर्ष कली सीनियर कैम्ब्रिज कर लेगी। और मैं चाहती हूँ पन्ना, कि अब वह तुम्हारे साथ रहकर यहीं पढ़े," रोज़ी ने कहा था। वह कली की प्रगति से बहुत सन्तुष्ट नहीं थी। देखने में असाधारण रूप से सुन्दरी होने के गर्व का विष ही शायद उस दम्भी लड़की की रक्त-मज्जा में घुल गया था।

कुछ ही दिन पहले रेवरेण्ड मदर ने रोज़ी को एक लम्बी चिट्ठी लिख भेजी थी—

"यह तुम्हारी वार्ड न होती, तो मैंने इसे कब का हटा दिया होता। लड़की की बनने-सँवरने में जितनी रुचि है, उसकी आधी भी यदि पढ़ने में होती, तो यह हमारे कान्वेण्ट का नाम उज्ज्वल करती। ऐसी प्रखर बुद्धि की छात्रा हमारे कान्वेण्ट में अरसे से नहीं आयी। पर इस नन्हें प्रखर मस्तिष्क की कुटिल चाल देखकर मैं सहसा विश्वास ही नहीं कर पाती कि यह भोली वर्जिन मेरी के-से चेहरेवाली बच्ची ऐसा कर कैसे सकती है? हमसे कहाँ यह त्रुटि हो गयी? क्यों कि अपने बचपन से लेकर अपनी किशोरावस्था तक की एक-एक सीढ़ी यह हमारी ही अँगुली पकड़कर चढ़ी है। मुझे लगता है, जैसा ही अस्वाभाविक रूप से प्रखर इसका मस्तिष्क है, वैसी ही दैवी सूक्ष्म दृष्टि भी इसे विधाता ने दी है। शायद उसी अद्भुत शक्ति से इसने जान लिया है कि इसके जन्म के पीछे कोई रहस्य अवश्य है। जब यह छोटी थी, तब बार-बार मुझसे पूछती थी—'मदर, सबके डैडी स्कूल स्पोर्ट में आते हैं। हर बार मेरी ममी ही अकेली क्यों आती हैं?"

मैं उसे क्या उत्तर दे सकती थी? मैंने तुमसे उसी दिन कहा था रोज़ी, एक न एक दिन यह प्रश्न वह अवश्य पूछेगी। फिर धीरे-धीरे उसने जैसे स्वयं ही उत्तर पा लिया है। एक बात और भी है, मिसेज़ मजूमदार से उसे सब कुछ मिला, थैला भर चॉकलेट, पुस्तकें, फ्रॉक, गुड़िया और भी बहुत कुछ, पर एक ही वस्तु उसे तुम्हारी सखी नहीं दे पायी—माँ का प्यार। घर जाने की होम लीव मिलने पर भी वह विचित्र लड़की घर नहीं जाना चाहती। अपने जन्म की अनजान पिता की इस उलझी गुत्थी को सुलझाना चाहती है, पर सुलझा नहीं पाती। और वही तनाव इसे अस्वाभाविक रूप से क्रूर, हृदयहीन, विद्रोहिणी बना रहा है। कई बार इसके बक्से से साथ की लड़कियों की घड़ियाँ बरामद हुई हैं। लिपस्टिक, रूज़, विदेशी परफ़्यूम, पता नहीं कहाँ-कहाँ से यह जुटा लेती है। मुझे लगता है इस सुन्दरी कठपुतली की कमर में बँधे दो धागों में से एक मेरे हाथ में है और दूसरा स्वयं विधाता के। चाहने पर भी उसे खींच-कर न तुम इसे अनुशासन में बाँध सकती हो, न मैं, और न इसकी माँ। इस वर्ष मेरा कठिन दायित्व तुम्हारे और इसकी माँ के कन्धों पर पड़ रहा है, ईश्वर तुम्हें धैर्य और इसे सद्बुद्धि दे।

—रेवरेण्ड मदर"

पत्र पढ़कर रोज़ी ने फाड़कर फेंक दिया। पन्ना से उसने कुछ भी नहीं कहा। क्या पता इसी पत्र को पढ़कर माँ-बेटी के बीच पल-पल बढ़ता जा रहा मनोमालिन्य और भी बढ़ उठे। वर्षों पूर्व की पार्वती की लोलुप दृष्टि की स्मृति रोज़ी को दंश दे उठी। मेज पर लापरवाही से पड़ा उसका रुपया, टॉर्च; रोगिणियों की सुप्तावस्था में गले से ग़ायब हो गयी चाँदी की ज़ंजीर, यहाँ तक कि रोगियों के कोटों के बटन और सेफ़्टीपिन भी वह चतुर दस्युकन्या एक आलिंगन में साफ़ कर लेती थी। और जब

अपराधिनी को पकड़कर रोज़ी के पास लाया जाता, वह अपनी निर्दोष हँसी और निष्पाप बड़ी आँखों की मूठ चलाकर सबको परास्त कर देती।

"हाय राम, मेमसाहब मैं भला क्या करूँगी चाँदी की ज़ंजीरों का, लो तलाशी ले लो ना!" और कड़ी से कड़ी तलाशी लेने पर भी एक धेला भी कभी बरामद नहीं हो पाता था।

आज उसी पार्वती का इतिहास क्या उसकी पुत्री दोहराने लगी थी! कई बार रोज़ी के जी में आया, वह पन्ना से सब कुछ कह दे। पर क्या कहने पर भी पन्ना उसे साध पायेगी?

बोर्डिंग से कली अपनी पढ़ाई समाप्त कर लौटी, तो उसने आते ही मुँह फुला लिया। "इतनी दूर से भला कोई रोज़ नीचे उतर सकता है? पता नहीं तुम यहाँ कैसे अकेली रह जाती हो, माँ! मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मैं फ़ैज़ाबाद चली जाऊँगी।"

"फ़ैज़ाबाद?" आश्चर्य से पन्ना उसे देखती ही रह गयी थी। "वहाँ कौन है भला?"

"वाह, विवियन के पापा वहाँ के डी. एम. हैं। खूब मज़ा आयेगा। हम दोनों पापा के साथ दौरे पर जायेंगी। उसके पापा शिकार के भी शौक़ीन हैं, लिखा है हमें डक शूटिंग के लिए भी ले चलेंगे?"

पन्ना स्वभाव से ही शान्त थी, पर उस उद्दण्ड किशोरी की मनमानी योजना सुनकर वह बौखला गयी, "कली, जिस-किसी से ऐसे वायदे तुमने कर कैसे लिये? कौन है तुम्हारी यह विवियन, और कौन हैं उसके पिता? ऐसे अनजान लोगों के बीच मैं तुम्हें क्या कभी भेज सकती हूँ?"

"अच्छा माँ, विवियन के पिता कौन हैं, यह तो तुम नहीं जानती, पर मेरे पिता कौन हैं, तुम यह भी क्या नहीं जानती?"

सामने कुरसी पर बैठी वह अबाध्य उद्दण्ड किशोरी दोनों पैर कुरसी पर खींच-कर दुष्टता से मुसकराने लगी।

पन्ना का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। क्या किसी ने कुछ कह दिया था इस छोकरी से? पर कहेगा कौन? उसके जीवन का रहस्य केवल चार ही प्राणियों तक सीमित था। रोज़ी, स्वयं वह, रेवरेण्ड मदर और रोज़ी की बहन मदर ओनीला। उन चारों में से कोई भी कभी उस रहस्य को प्राण रहते उद्घाटित नहीं होने देगी। तब?

"कली, क्या तुमने स्कूल में यही सब सीखा है? गुरुजनों से कैसे बोलते हैं, यह क्या अबतक नहीं सीख सकी तुम?"

"पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो माँ, आज मैं बिना सुने नहीं उठूँगी। रोज़ी आण्टी से पूछना व्यर्थ है। बड़ी घुन्नी है बुढ़िया। साथ की लड़कियों के अलबम देखती

हूँ तो जलभुनकर रह जाती हूँ। एक-एक पेज पर उनके माँ-बाप जड़े हैं, और तुम्हारे कमरे में तो आज तक मैंने अपने अभागे बाप की एक भी तसवीर नहीं देखी।

"कृष्णकली मजूमदार, नाम तो तुमने इतना सुन्दर रख दिया माँ, पर यह मुझे मजूमदार बनानेवाला आखिर है कौन ?"

"कली," पन्ना ने बड़े साहस से उसकी बड़ी-बड़ी विद्रोही आँखों की ओर अपनी गम्भीर दृष्टि निवद्ध कर दी, "तुम्हारे नाम के पीछे कोई मरीचिका नहीं है, तुम्हारे पिता से मेरी नहीं बनी और हम दोनों अलग हो गये। वह अब कहाँ हैं, क्या करते हैं, मैं कुछ नहीं जानती। तुम आज तक बोर्डिंग में थी, इसी से न कभी यह प्रसंग उठा, न उठाया गया। पर कली, सच कहना बेटी, क्या मैंने कभी तुम्हें पिता का अभाव खटकने दिया ? कौन-सी ऐसी चीज़ थी, जो तुमने माँगी और मैंने नहीं दी ?

"स्वयं तुम्हारी रेवरेण्ड मदर कहती थीं, मिसेज़ मजूमदार, इतना दे-देकर लड़की को आप बिगाड़ रही हैं, तुम्हारे प्रत्येक जन्मदिन पर क्या दस-दस पौण्ड का केक बनाकर नहीं भेजा मैंने ?

"तुमने घड़ी माँगी, मैंने अपनी घड़ी खोलकर तत्काल तुम्हें भिजवा दी। फिर भी तुम बराबर बड़बड़ाती ही रही...."

कुरसी पर बैठी दोनों सुडौल पैर हिलाती कली दुष्टता से मुसकरा उठी, "अच्छा माँ, तुम्हीं बताओ, वह घड़ी थी या घड़ा ? न जाने कहाँ से बाबा आदम के ज़माने की घड़ी तुमने निकालकर भेज दी और फिर यह सोचने लगी कि मैं घड़ी की तारीफ़ों के पुल बाँध दूँ ? यह कली से कभी नहीं होने का।"

"मैं पिछली बार मदर से मिलने गयी, तो मुझे लगा वे तुम्हारे स्वभाव से कुछ रुष्ट हैं। कहने लगीं, मिसेज़ मजूमदार, आपकी लड़की बड़ी 'डिफ़ाएण्ट' होती जा रही है !"

"अच्छा, ऐसा कहा मदर ने ?" कली की शोख आँखों में फिर विद्रोह की तरंगें नाचने लगीं। "यह कोई दुर्गुण है क्या माँ ? मदर क्या चाहती हैं कि मैं चुपचाप उनकी धमकी सहती रहूँ ? छोड़ो भी, माँ, क्यों इस सड़ियल बँगले की मनहूसियत बढ़ा रही हो। सोच रही हूँ क्यों न थोड़ा घूमघाम लिया जाये।" वह निर्लज्जता से हँसकर शरीर से चिपकी जीन्स के ऊपर स्पोर्ट्स शर्ट की सिलवटें हाथ से ठीककर सर्र से बाहर निकल गयी।

कहाँ जा रही है, कब लौटेगी, कुछ भी पूछना व्यर्थ था। पन्ना खिड़की पर खड़ी-खड़ी उसे देखती रही। नीली जिम्स और ग्रे शर्ट में वह नितान्त बालिका-सी दीखती उद्दण्ड कली को क्या किसी अंकुश से साध पायेगी ? अभी तो वह सत्रह की भी पूरी नहीं हुई थी। ऐसे जंगली स्वभाव को एक ही व्यक्ति के अनुशासन का कड़ा चाबुक साध सकता था। बड़ी दी, काश आज बड़ी दी के सम्मुख वह इसे हाथ-पैर बाँधकर डाल सकती ! एक ही गरज से बड़ी दी उसका नशा हिरन कर देतीं। पर उसका

छूटे गाँव से अब रिश्ता ही क्या रह गया था। कई बार जी में आता, हाथ झाड़ ले इस छोकरी से! चली जाये जहाँ उसे जाना है। अब बैंक की धनराशि भी दिन-प्रति-दिन क्षीण होती चली जा रही थी। रामगढ़ के एक विदेशी परिवार ने उसे अपने साथ अरविन्द आश्रम ले चलने का वायदा किया था। कई दिनों से जी में आ रहा था कि यह बँगला छोड़-छाड़कर वहीं चली जाये। पर फिर कली का क्या होगा? जैसे-जैसे वह लड़की बड़ी हो रही थी, माँ के प्रति उसका अविश्वास बढ़ता जा रहा था। कितनी गोरी थी उसकी माँ! एकदम अँगरेज़। नीली आँखें, सुनहले बाल और लाल ओठ। उसकी सूरत तो माँ से एकदम ही नहीं मिलती, तब क्या वह अपने पिता पर पड़ी थी?

"माँ, तुम तो इतनी गोरी हो फिर मैं साँवली कैसे हुई?" उसने बहुत पहले एक बार रोज़ी की उपस्थिति में ही पन्ना से पूछा था।

"साँवली होने पर भी क्या तुम अपनी माँ से सुन्दर नहीं हो?"

रोज़ी आण्टी ने माँ को उत्तर ही नहीं देने दिया था। रोज़ी आण्टी को वह वैसे भी फूटी आँखों नहीं देख सकती थी। जब-जब बुढ़िया आती, माँ को कुछ न कुछ पट्टी पढ़ा जाती। यह कली कहाँ घूमने चली जाती है? इतनी देर तक इसका घूमना ठीक नहीं, रोज़-रोज़ कैसे पिक्चर देखती है, फ़ैज़ाबाद नहीं जा सकती कली, उसे दिल्ली और आगरा जाना होगा। रोज़ी आण्टी न होती तो माँ का अनुशासन भी उतना कड़ा नहीं रहता।

आज तो वह और भी रात को लौटेगी। मज़ा चखायेगी माँ को। बड़ी आयी है उसके पिता से अलग रहनेवाली। कैसे होंगे उस के पिता? क्या पता ख़ूब बड़े अफ़सर हों, द्वार पर शायद नयी फ़ियेट खड़ी रहती होगी, विवियन के पापा की भाँति शायद शिकार के भी शौक़ीन होंगे। उसकी सूरत माँ से नहीं मिलती, तो निश्चय ही अपने पिता से मिलती होगी। तब तो उसके पापा निश्चय ही सुन्दर होंगे। ऐसे सुन्दर पिता को भला माँ ने क्यों छोड़ दिया होगा? निश्चय ही दाल-भात में मूसलचन्द बनी खूसट रोज़ी आण्टी ही ने झगड़ा करवाया होगा। खुद तो बुढ़िया कोढ़ियों के बीच में रहती है।' जब-जब रोज़ी आण्टी उसके गालों को चूमती, वह ग़ुसलख़ाने में भागकर रगड़-रगड़कर गाल धो डालती। पता नहीं बुढ़िया कब उसे भी 'इन्फ़ेक्शन' दे डाले।

उस दिन कली मन भरकर इधर-उधर डोलती रही। पहले किश्ती में बैठकर खूब देर तक तल्लीताल से मल्लीताल की सैर की, ताल के पानी में हाथ डाल-डालकर पंक्तिबद्ध तैरती बतखों को डराकर दूर भगा दिया। फिर ठोंगा-भर मूँगफलियाँ खाकर बेंच पर बैठ गयी। अँधेरा घिर आया तो वह घोड़ा लेकर घर को चली। घर पहुँचते-पहुँचते रात के नौ बज गये थे। चिन्तातुर पन्ना बरामदे में खड़ी थी।

"कली, कितनी रात कर दी बेटी ? अभी तीन दिन पहले माली की बँधी गाय को खूँटे से खोलकर आदमखोर खींच ले गया।"

"तुम भूल जाती हो माँ, मैं किसी खूँटे से नहीं बँधी हूँ। मुझे खानेवाला आदमखोर अभी पैदा नहीं हुआ।"

और वह धड़धड़ाती अपने कमरे में चली गयी थी।

"खाना नहीं खाओगी कली ?"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है, फ़्लैट जाने पर मैं क्या आज तक कभी बिना चाट खाये लौटी हूँ ?"

पन्ना ने खाना ढककर रख दिया और भूखी सो गयी।

जिस अनाथ बालिका को अपने स्नेहपूर्ण वात्सल्य से वह एक दिन अपना बनाकर अपने अभिशप्त जीवन की समस्त व्याख्या को भूलने का स्वप्न देखती आयी थी, उसकी मृगतृष्णा अब उसे और नहीं छल सकती थी।

पराये रक्त-मांस से बनी देह भी सदा परायी रहती है, यह कटु सत्य उसे अब कण्ठ तले घुटकना ही होगा। प्रकृति से विरोध सम्भव है, पर उसे सम्पूर्ण रूप से पराजित नहीं किया जा सकता। कली यदि उसकी सगी बेटी होती तो क्या ऐसी हृदयहीनता से कमरा बन्द कर अकेली ही सो जाती ? क्या उसके घर रहने पर पन्ना कभी अकेली खाने की मेज़ पर बैठी है ? कली उद्दण्ड थी, वाणी सेन के प्रारम्भिक लाड़-दुलार ने उसे बचपन से ही सिर चढ़ा लिया था। पर ऐसी रूखी तो वह नहीं थी।

"यह उम्र ही ऐसी होती है पन्ना, स्वयं ठीक हो जायेगी," रोज़ी कहती रहती। पर पन्ना उसके लाख समझाने पर भी आश्वस्त नहीं हो पा रही थी।

उस रात पन्ना बेचैन करवटें बदलती रही। कैसी मूर्खता कर बैठी थी वह ! उसी दिन झाड़कर क्यों नहीं लौट आयी ? उस एकान्त बँगले में उसके विस्मृत प्रेमी की स्मृति उसे रह-रहकर दग्ध कर उठती थी।

विद्युत रंजन अब मिनिस्टर ही नहीं, लक्षाधिपति भी बन गया था, यह वह अखबारों में पढ़ती रहती थी। कैसे अब विरोधी दल के सदस्य उसकी देशसेवा के नाम पर कमायी गयी अटूट धनराशि पर थुड़ी-थुड़ी करते, विधानसभा में प्रश्नों की बमबारी से उसकी धज्जियाँ उड़ा रहे थे, पन्ना पढ़-पढ़कर मन ही मन चिन्तित भी हो उठती थी। अबतक वह अपनी सरकार को टैक्स न देकर छल-कपट की चकरघिन्नियाँ खिलाता गया था, पर अब विरोधी पक्ष का पाया मजबूत होकर उसकी छाती में धँसा जा रहा था। जिस खद्दर की टोपी ने उसे कभी बिना ताज का बादशाह बना दिया था, वही अब पत्थर की शिला बनी उसे धरातल में धँसा रही थी। पन्ना अखबार का एक-एक पन्ना चाट लेती थी।

जिसे वह अपने सुख के क्षणों में नहीं सुमिर सका, उस पन्ना को वह क्या अपने

दुर्भाग्य के क्षणों में कभी याद करता होगा ? क्या पीली कोठी में बिताये गये भावभीने रंगीन दिवसों की स्मृति उसे भी कभी विह्वल करती होगी ?

पर पन्ना जितनी अच्छी तरह उस व्यक्ति को जानती थी, शायद स्वयं उसकी पत्नी भी उसे उस अन्तरंगता से नहीं जानती होगी। दुर्भाग्य को वह व्यक्ति पूरी शक्ति से पीछे ढकेल सकता था। आज यह कली न होती, तो शायद एक बार फिर उस मोहक व्यक्तित्व के मोहपाश में बँध गयी होती। और वह भी क्या उसे एक बार देख लेने पर सहज में छोड़ पाता ? इतने वर्षों में भी पन्ना उन्नीस से बीस भर ही बदली थी।

जिन चिकने घने बालों को वह यत्न से पंक्तियाँ बना-बनाकर, कलिंग पिन्स में दबाकर रखती थी, अब उनमें स्वयं ही स्वाभाविक पंक्तियाँ बन आयी थीं। गौर वर्ण को पहाड़ के एकान्तवास ने और भी निखार दिया था। नीली आँखों में गहरे विषाद की रेखा उभर आयी थी। वह कभी नीचे घूमने उतरती, तो लोग मुड़-मुड़कर देखने लगते। लगता कोई मेम ही साड़ी पहनकर घूम रही है।

कभी-कभी पन्ना के जी में आता वह कली को कह दे कि उसका पिता फ़लाँ मन्त्री है, और फिर क्या वह कली को नहीं जानती ? गरदन पर सवार होकर वह पिता का सारा मन्त्रीपना निकाल देगी।

पर क्या वह स्वयं ऐसा कर सकती थी ? बड़ी रात तक पन्ना सो नहीं पायी। सुबह आँखें खुलीं, तो दिन चढ़ आया था, वह हड़बड़ा कर उठी। कली को बेड-टी का अभ्यास था। वहीं मेज़ पर स्टोव धरा रहता, एक प्याला चाय बनाकर पन्ना नित्य उसके सिरहाने धर आती थी। आज वह गयी तो कमरे में कोई नहीं था। मेज़ पर धरा बेड-लैम्प वह शायद जान-बूझकर ही जलता छोड़ गयी थी, जिससे माँ की दृष्टि उससे दबे पत्र पर पड़ सके। कली के गोल-गोल अक्षरों में लिखी चिट पन्ना ने उठा ली।

"माँ, मैं दिन-भर के लिए नीचे जा रही हूँ। मुझे मेरी एक दोस्त ने लंच पर बुलाया है। तुम सो रही थी, फिर कल रात भी मैं बड़ी देर तक तुम्हारे कमरे की जलती बत्ती देखती रही थी, मैंने इसी से तुम्हें नहीं जगाया। मैं रात तक लौटूँगी—कली।"

कली को घर आये एक महीना हो चला था, और इस बीच उसके ऐसे नित्य के निरर्थक आदेश पढ़कर निःशब्द ग्रहण करने की पन्ना अभ्यस्त हो चुकी थी। अकेली ही खाना खाकर वह बरामदे में कुरसी डालकर अखबार पढ़ने लगी। महीने का आखिरी शनिवार था। दोपहर की बस से रोज़ी भी आती ही होगी। और उसके आने पर वह आज कली के उद्दण्ड स्वतन्त्रता प्रेमी स्वभाव के विषय में सब कुछ कह

देगी। यह भी अच्छा है कि कली स्वयं ही दिन-भर के लिए बाहर चली गयी है। उस चतुरा छोकरी का क्या कुछ ठिकाना रहता था? कब किस दीवार से लगी बातें सुन रही है, पता नहीं चलता था।

अचानक अखबार पढ़ते पन्ना का चेहरा फ़क़ पड़ गया।

नहीं, इस नाम का क्या कोई अन्य व्यक्ति भी हो सकता है? उसने कई बार पढ़ा, जितनी ही बार वह पढ़ती, उतनी ही बार उस व्यक्ति का सुदर्शन चेहरा जैसे हँसता-मुसकराता सामने आ जाता। 'हाँ, जी हाँ, मैं ही हूँ, और कौन ठहर सकता है यहाँ भला? आकर देख लो ना?'

राजभवन के सम्मानित अतिथियों की सूची में प्रथम दो नाम तीखे भालों की भाँति पन्ना के हृदय में धँस गये।

श्री एवं श्रीमती विद्युत रंजन मजूमदार।

आज वह इतने वर्षों का प्रतिशोध ले सकती थी। कलीका हाथ पकड़कर वह आज राज्यपाल के दरबार में अपनी सत्रह वर्ष पुरानी फ़रियाद की फ़ाइल खोल कर रख देगी।

'लो, सँभालो अपनी धरोहर। रोज़ यह मुझ से पूछती थी, मेरा पिता कौन है माँ? आज ईश्वर ने स्वयं ही तुम्हें यहाँ भेज दिया है।'

कैसा चेहरा बनेगा दोनों का? चार बजे तक कली आवेगी। क्यों न उसके आने से पहले ही वह एक बार रंजन से फ़ोनपर ही बातें कर ले।

उत्तेजना से पन्ना का सर्वांग काँप रहा था। फ़ोन पर बातें करने में तो कोई दोष नहीं था, बँगले में था ही कौन, जो उसकी बातें सुन सकता था।

"हैलो" उसने अपने उत्तेजित कण्ठस्वर को यथाशक्ति संयत करने की चेष्टा की, फिर भी उसकी आवाज़ काँप गयी, "मैं क्या विद्युत रंजन मजूमदार से बात कर सकती हूँ।"

छह

मृदुभाषी ए. डी. सी. ने उसका नाम पूछा तो वह क्षण-भर को चुप रह गयी। फिर हँसकर बोली, "आप कहिएगा, उनसे एक महिला कुछ पूछना चाहती है।" बड़ी देर तक फ़ोन का चोंगा हाथ में लिये पन्ना खड़ी रही। फिर उसने कुरसी खींच ली और बैठकर पसीना पोंछने लगी। ओफ़्, बिना देखे ही उसका यह हाल

था, कहीं रंजन और वह आमने-सामने खड़े होते, तो शायद मूर्छित पन्ना धरा पर ही लोटती नज़र आती।

"हेलो," फ़ोन में वर्षों पुराना परिचित स्वर उसी नम्रता से गूँज उठा।

पन्ना का गला घुट गया, वह चाहने पर भी दो-तीन बार पुनरावृत्ति की गयी हेलो का उत्तर ही नहीं दे पायी।

"मैं बोल रहा हूँ, विद्युत रंजन मजूमदार। कहिए क्या कहना है?"

"मैं-मैं...." पन्ना की आँखें बरसने लगीं। हाथ काँप रहा था। लगा फ़ोन अब गिरा तब गिरा।

"जी, मैंने पहचाना नहीं, आप कौन हैं?"

"मैं पन्ना हूँ," और उत्तर के साथ ही एक दबी सिसकी सुननेवाले के कानों तक पहुँच गयी।

अब उसकी बारी थी।

कुछ क्षणों तक वह भी शायद अपनी सारी राजनीतिक प्रगल्भता भूलकर रह गया।

"रंजन, मैं हूँ पन्ना," पन्ना ने अब अपने स्वाभाविक धैर्य को फिर पा लिया था, "मैं तुमसे मिलना चाहती हूँ। क्या तुम चाहोगे कि मैं ही राजभवन चली आऊँ? शायद नहीं, तब क्या तुम अभी ऊपर आ सकते हो?"

अचानक उस नम्र प्रणयी के परिचित मीठे कण्ठ-स्वर ने पन्ना की यत्न से बनायी गयी योजना क्षण-भर में चौपट कर दी थी। मूर्खा पन्ना उसे अपना पता-भर देकर रह गयी थी। जब वह नहीं आयेगा तब? क्या पता चुपचाप, वहीं से आज ही खिसककर उसे घिस्सा दे दे। फिर भी वह धड़कते हृदय से उसकी प्रतीक्षा करने लगी। जिन उपेक्षित बालों का उसने वर्षों से ढंग से जूड़ा भी नहीं बनाया था, उन्हीं को यत्न से सँवारकर उसने ढीला जूड़ा बनाया। वैसा ही कन्धे पर ढलने को तत्पर ढीला जूड़ा, जैसा वह पहले बनाया करती थी और जिसे रंजन खिलवाड़ में बार-बार खोलकर उसके कन्धों पर फैला दिया करता था। "तुम हमेशा गुलाबी साड़ी पहना करो पन्ना," वह कहता था। "गुलाबी रंग में तुम मुझे खिले शतपत्र-सी ही लगती हो।"

हलके गुलाबी रंग की चँदेरी साड़ी पहनकर उसने दक्षिणी कुंकुम का बड़ा-सा टीका लगाया। उसकी अँगुली में अभी भी रंजन की दी माणिक की अँगूठी दमक रही थी।

आईने में उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा और स्वयं ही लजा गयी। छिः-छिः, इस बुढ़ापे में क्या ऐसा श्रृंगार उसे शोभा देता है! कहीं छोकरी कली आ गयी तो आफ़त कर देगी। पर कली एक बार जाने के बाद क्या कभी दिन डूबने से पहले लौट सकती थी!

सामान्य-सी आहट होने पर ही पन्ना चौंककर धड़कता कलेजा कसकर दाब ले रही थी। दूर-दूर तक की पगडण्डियों पर जब वह कहीं भी घोड़े या डाँडी को नहीं देख पायी, तो निराश होकर भीतर चली आयी।

रंजन अब क्या आयेगा ? दो घण्टे बीत चुके थे। इस बीच एक बार फ़ोन की घण्टी बजी, तो उसका कलेजा बुरी तरह धड़क उठा था। निश्चय ही रंजन कहेगा, वह आज नहीं आ सकता। पर फ़ोन रोज़ी का था। उसकी एक रोगिणी की अवस्था बहुत ख़राब हो गयी थी। वह इस शनिवार को पन्ना के साथ छुट्टी मनाने नहीं आ पायेगी।

फ़ोन सुनकर पन्ना द्वार बन्द करने जा रही थी कि ऊँचे भूरे घोड़े से उतरती क़द्दावर आकृति को देखकर ठिठक गयी।

उस व्यक्ति ने बटुए से निकालकर घोड़े के साईस को किराया दिया और इसकी ओर मुड़कर वैसे ही मुसकराया, जैसे पहली बार उसे देखकर मुसकराया था।

"पन्ना, क्या तुम इजिप्शियन ममी के से किसी ताबूत में बन्द रही थी ? मुझे देखो, एकदम बूढ़ा हो गया हूँ ना ?"

बूढ़ा होने पर भी वह व्यक्ति अभी भी सुन्दरी प्रौढ़ा के हृत्पिण्ड को घड़ी के पेण्डुलम-सा हिला रहा था, वह क्या स्वयं इससे छिपा था ? पन्ना के आरक्त कपोल कितनी बार उन विलासी अधरों के निर्मम प्रहार से और भी आरक्त हो उठे थे, यह क्या वह कभी भूल सकता था ? शायद पन्ना के काँपते ओठों और भीगी पलकों को उसने कनखियों से ही देख लिया था, ओह तो अभी भी वह उसे क्षमा नहीं कर पायी है।

"वाह, ख़ासा बँगला है तुम्हारा ! पर यहाँ कैसे आ गयी पन्ना ?" दिन-रात विरोधी पक्षों से जूझनेवाला राजनीति का कुटिल खिलाड़ी मर्मस्थल पर चोट करना ख़ूब जानता था।

पन्ना ने अपनी नीली आँखों की करुण दृष्टि उसके चेहरे पर गड़ा दी। उसकी मूक दृष्टि के उपालम्भ से रंजन तिलमिला गया।

अभी भी कितनी सुन्दर थी वह ! इसी सौन्दर्य-पात्र की मादक मदिरा वह कभी चाहने पर ही तृपित अधरों से लगा सकता था। यह मरालग्रीवा, नीली आँखें, सुनहले बाल, शतदल कमल की पँखुड़ियों-सी चम्पक अँगुलियाँ—सब, कभी उसी की थीं। आज इतनी पास होकर भी वे पकड़ से इतनी दूर कैसे चली गयी थीं।

"पन्ना," विद्युत रंजन उठकर उसके पास बैठ गया। बड़े लाड़ से उसने उसके घुटने पर धरी सफ़ेद कलाई को उठा गालों से लगाकर आँखें बन्द कर लीं, "पन्ना, मैं जानता हूँ तुम मुझे आज भी क्षमा नहीं कर सकी हो, पर मुझसे दूर भागकर क्या तुमने बहुत बड़ी मूर्खता नहीं की ? क्या तुम मेरी विवशता, मेरे वंश-परिवार के प्रति मेरे कर्तव्य, और सबसे बड़ी बात, मेरी माँ को नहीं जानती थी ? क्या तुम

बड़ी दी के ही पास बनी रहती, तो मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकता था ? क्या हम उसी स्वतन्त्रता से बेरोक-टोक नहीं मिल सकते थे ?"

पन्ना चुपचाप सर झुकाये बैठी थी। विद्युत रंजन का एक हाथ अब उसके कन्धे पर था, दूसरे हाथ में वह पन्ना की कलाई थामे, बार-बार गालों से लगाता, कभी कसकर छाती से सटा देता।

"मैं कई बार बड़ी दी के पास गया, वह तुम्हारा नाम भी नहीं सुनना चाहती थी। एक बार उसने मेरा ऐसा अपमान किया कि यदि तुम्हारी बहन न होती, तो मैं उसे जड़ से उखाड़कर बंगाल की सरहद के बाहर फेंक देता।" अबतक प्रस्तर मूर्ति-सी बनी पन्ना अब वर्षों से बिछुड़े प्रणयी के कन्धे पर ढुलक गयी थी। अपना मान-अभिमान, उपालम्भ, पीड़ा सब कुछ उस एक ही स्पर्श को पाते वह जैसे भूल गयी थी।

"पन्ना," विद्युत रंजन ने उसे कठोर बाहुपाश में जकड़ लिया, "मेरी ओर देखो पन्ना, क्या अभी भी तुमने मुझे क्षमा नहीं किया ?"

पन्ना ने पहली बार आँखें उठायीं। कहाँ बूढ़ा हुआ था रंजन ? क्या उन लाल डोरीदार आँखों में अभी भी रसवन्ती फुहार मन्दी पड़ी थी ? कनपटी के आसपास बालों का गुच्छे का गुच्छा सफ़ेद हो गया था और तिरछी खद्दर की टोपी ने ललाट पर झुककर, प्रशस्त माथे की परिधि थोड़ी सीमित कर दी थी, बस इतना ही तो बदला था वह !

"मेरी बच्ची कितनी बड़ी हो गयी पन्ना ? वाणी सेन कह रही थी कि बहुत ही सुन्दर है कली," उसने बड़े दुलार से पन्ना के कान के पास ओठ सटाकर पूछा। प्रश्न के साथ-साथ जैसे अदर्शी बिटिया के प्रति उसका समस्त ममत्व, शराब के झाग की भाँति छलक उठा।

"मैंने उस सन्तान को निर्ममता से त्याग दिया और उसकी सज़ा भी मुझे मिल चुकी है," विद्युत रंजन का गला भर्रा गया। क्षण-भर वह कण्ठ के गह्वर को घुटकता रहा, फिर कहने लगा, "दोनों को उसने सात महीने के भीतर ही भीतर छीन लिया, मुनिया प्रथम प्रसव में जाती रही, चुनिया खाना बना रही थी, स्टोव फट गया, झुलसी देह को न मैं पहचान सका, न उसकी माँ।"

पन्ना उसके पार्श्व में गूँगी बनी बैठी थी।

"जब वाणी सेन ने कहा कि तुम कली को लेकर कहीं चली गयी हो और अपना कोई अता-पता भी नहीं छोड़ गयी हो, तो भी मैं तुम्हें ढूँढ़ता रहा। वाणी से ही पता लेकर उस मेम को दो-तीन चिट्ठियाँ लिखीं, जो अल्मोड़ा के किसी कुष्ठाश्रम में थी और जिसके साथ ही तुम पीली कोठी छोड़कर गयी थी। पर पता शायद ठीक नहीं था, किसी भी चिट्ठी का उत्तर नहीं आया। मैं चाहता था तुम्हें प्रत्येक माह

कुछ रुपया भेज दूँगा पर चारा ही क्या था। पन्ना, क्या कली अभी भी वोर्डिंग में ही रहती है?"

"नहीं, कहीं घूमने गयी है, आती होगी," रूखे उत्तर से भी विद्युत रंजन ने हार नहीं मानी।

"क्या वह अपनी माँ-सी सुन्दर है या पिता-सी तेजस्वी ?" विद्युत रंजन ने सामान्य-सी रसिकता की चुटकी लेकर, अस्वाभाविक रूप से तनी रूठी प्रेयसी को गुदगुदाने की चेष्टा की।

"यही तो दुख है रंजन," एक लम्बी साँस खींचकर पन्ना वोली, "न वह तुम-सी है न मुझ-सी, चलो भीतर के कमरे में चलें। पता नहीं कली कव आँधी की तरह आकर हम दोनों को उड़ाकर दूर पटक दे। इतने वर्षों से जो तूफ़ान मेरे तन-मन को विक्षिप्त कर रहा है, वह आज तुम्हें भी दिखा दूँ।"

अपने वेडरूप में विद्युत रंजन को ले जाकर, पन्ना ने हाथ पकड़कर उसे पलंग पर विठा दिया।

"आज कितने वर्षों वाद मेरे पलंग पर वैठे हो! ठीक से बैठो ना, अजी वाह, दोनों पैर क्या ऐसे ही लटकाये बैठे रहोगे। निश्चिन्त होकर वैठो, तुम्हारे जाने के बाद कोई इस पर नहीं वैठा रंजन, इसी से कह रही हूँ, निश्चिन्त होकर वैठो। मेरा पेशा तुम्हारे साथ ही मुझे छोड़कर चला गया था।"

झुककर पन्ना ने उसी भाँति उसके जूते खोले, आँचल से दोनों लम्वे पैर पोंछे, और तकिया उठाकर पीठ के पीछे लगा दिया।

"कुछ भी नहीं भूली हूँ, देखा ?" एक वार वह पुनः इठलाती चतुरा वारवधू वन गयी थी।

"पन्ना," मत्त प्रणयी ने उसे हाथ पकड़कर अपने पास खींचना चाहा, पर वह परिचित कटाक्ष से उसे वींध पैरों के पास बैठ गयी।

"अभी नहीं, पहले तुम्हें मेरी पूरी कहानी सुननी होगी।"

फिर पन्ना सव कुछ कह गयी। उस अरण्य स्थित भुतहे देवदार में बिताये गये लम्वे ग्यारह वर्ष, उद्दण्ड कली के अभिशप्त जीवन का पूरा इतिहास, असदुल्ला, पार्वती, रोज़ी, अल्मोड़ा प्रवास, आधी रात को उसकी गोदी में डाल दी गयी कली, बड़ी दी की स्वार्थपरता—एक-एक बात वह कहती गयी और स्तब्ध विद्युत रंजन सुनता रहा।

"आज वही अकृतज्ञ मुझे दूध की मक्खी-सा निकालकर दूर फेंक रही है। वार-बार अविश्वास से पूछती है, मेरे पिता कौन हैं ? एक बार जी में आता है, साफ़-साफ़ कह दूँ, छोकरी अपने को हूर समझती इठलाती फिरती है, तेरा पिता है कोढ़ी, और माँ है कोढ़िन, जाने किन गलियों में भीख माँगते फिर रहे होंगे। क्या पता यहीं,

नैना देवी के मन्दिर के बाहर बैठी कोढ़ियों की पंगत में ही तुझे तेरा पिता अँगुलियों के डुण्ठ चमकाता मिल जाये, या नन्दा देवी के मेले में कोढ़ियों की भीड़ में तुझे तेरी अन्धी माँ ही दिख जाये। रोज़ी बता रही थी कि अभागिनी को रोग ने पंगु ही नहीं, अन्धी भी बना दिया है। एक दिन रोज़ी के बक्स का ही सफ़ाया कर, लम्पट भाग गयी और फिर नहीं लौटी। कैसी मूर्खता कर बैठी हूँ मैं, ऐसे माता-पिता की इस दुर्दमनीय सन्तान को मैं क्या कभी सुधार पाऊँगी ?''

''चिन्ता मत करो माँ, तुम्हें नहीं सुधारना होगा,'' हाथ का बटुआ झुलाती कृष्णकली द्वार पर खड़ी थी। अधलेटा विद्युत रंजन हड़बड़ाकर उठ बैठा। पन्ना का चेहरा फ़क़ पड़ गया। यह कहाँ से आ गयी! इतनी जल्दी तो वह कभी लौटती ही नहीं थी!

''वाह, अच्छा किया जो बिना पिक्चर देखे ही लौट आयी, नहीं तो आज अपने घर में ही चल रही ऐसी 'इण्टरेस्टिंग मैटिनी' मिस कर जाती।''

वह हँसती, हाथ का बटुआ मेज़ पर पटक धम्म से कुरसी पर बैठ गयी।

कली को सहसा द्वार पर आविर्भूता देख, दोनों सँभलकर बैठ गये थे। पर रंजन हड़बड़ी में पन्ना की कलाई छोड़ना भूल गया था। उसकी मज़बूत पकड़ में पन्ना की कलाई काँप उठी और उस मुँहफट छोकरी का दुस्साहस देखकर रंजन और भी बौखला गया।

''क्यों बेटी, क्या अपनी माँ से तुम हमेशा ऐसे ही बोलती हो ?''

''मेरी माँ ? बँगला की एक कहावत है, सुनी नहीं क्या आपने,—'सात काण्ड रामायण पोड़े, सीता कार बाप'। किसी ने सात काण्ड रामायण पढ़कर पूछा था कि सीता किसका बाप है, वही हाल आपका भी है। इतनी बढ़िया रामायण बाँची गयी और आप पूछते हैं कि क्या मैं माँ से ऐसे ही बोलती हूँ। माँ मेरी है ही कहाँ मौशाई!'' बचपन में वाणी सेन से सीखी बँगला कली अभी भी नहीं भूली थी। फिर कान्वेण्ट में भी दो-तीन बंगाली सखियाँ जुट गयी थीं। इसी से उसकी बँगला में अभी भी ज़ंग नहीं लग पाया था।

''अब आप लोग इतने सालों में मिले हैं। दाल-भात में मूसरचन्द नहीं बनूँगी, चल दिया जाये।'' वह फिर उसी बेहयाई से हँसकर उठ गयी। ''अब देरी नहीं करूँगी, थोड़े-बहुत कपड़े रख रही हूँ माँ, तलाशी लोगी क्या अपनी बड़ी दी की तरह ?''

पन्ना ने आहत दृष्टि से रंजन की ओर देखा, जैसे कह रही हो, 'देख रहे हो ना ? यह मुझे रोज़ ऐसे ही जलाती है।' रंजन को उस उद्दण्ड छोकरी की अभद्रता असह्य हो उठी। वह स्वयं अपने बच्चों को सदा कड़े अनुशासन में साधता चला आया था, उसकी एक ही गर्जना से दाढ़ी-मूँछ निकल आने पर भी जवान लड़के सहमकर रह जाते थे।

"जाना है तो चली क्यों नहीं जाती !" उसका चेहरा तमतमा उठा, "क्या जन्म से अबतक जला-जलाकर उसे तुमने अधमरी नहीं बना दिया है ?"

"वाह," कली ने बटुवा उठाकर कन्धे पर लटका लिया, "मुझे लगता है आप मन्त्री से अधिक, किसी बम्बइया फ़िल्म में फ़िल्मी पिता के रूप में चमकते। वैसे मैं आपसे बहुत छोटी हूँ, और सच पूछिए तो दो घण्टे पहले तक आपकी पुत्री ही थी, पर क्यों नहीं आप दोनों सचमुच किसी फ़िल्मी माता-पिता की भूमिका निभाने बम्बई चले जाते ?"

"मैं स्वयं उसी लाइन में जाने की सोच रही हूँ। पर अभागे माँ-बाप का रोग पता नहीं कब गरदन दबोच ले। अच्छा, 'सो लांग' माँ, थैंक्स फ़ॉर एवरी थिंग', और मन्त्रीवर," वह अपनी पतली कमर को बेंत के लचीले धनुष-सी मोड़ती दुहरी हो गयी, "थैंक्स फ़ॉर गिविंग मी योर सरनेम, कृष्णकली मजूमदार ही आपने बना दिया है, तो क्यों न स्वदेश की ओर चल दूँ।"

वह अपना सुडौल पृष्ठभाग लयबद्ध ताल में साधती कमरे से बाहर हो गयी। पन्ना ने उठकर शायद उसके पीछे जाने की चेष्टा की, पर रंजन ने उसे खींचकर बिठा दिया। "जाने दो," वह फुसफुसाया, "स्वयं ही फोड़ा फूट रहा है, तो उसमें चीरा लगाकर क्या करोगी। जब सब सुन ही चुकी है, तो अब उसका तुम्हारे साथ रहना ठीक नहीं है। तुमने उसके लिए जितना किया और कोई नहीं कर सकता। तुम अपना कर्तव्य कर चुकी हो, अब मेरी बारी है।"

विद्युत रंजन पत्नी से बिना कुछ कहे ही निकल आया था। वह भूखी बैठी होगी यह ध्यान आते ही वह उठ बैठा। क्लान्त पन्ना उसकी छाती से लगी चुपचाप पड़ी थी। रंजन कल चला जायेगा, फिर वह उस एकान्त बँगले में अकेली रह जायेगी। रंजन के हास्यास्पद प्रस्ताव को वह स्वीकार नहीं कर सकती थी। दार्जिलिंग में रंजन के तीन-चार बँगले थे। वह चाहता था पन्ना वहीं चलकर रहे। बीच-बीच में वह आकर उससे मिलता रहेगा। रंजन की चतुरा माँ अब नहीं रही थी, उसकी मूर्खा मोटी पत्नी को पति के मन्त्रिपद एवं वैभव ने और भी मोटी, थुलथुली और आलसी बना दिया था। दोनों पुत्र अपनी-अपनी पत्नियों में मगन थे ?

"तुम्हें कभी कोई चिन्ता नहीं रहेगी। मैं असम के दौरे और भी बढ़ा दूँगा, चाहने पर महीने में दो बार भी आया जा सकता है।"

पन्ना के निर्विकार चेहरे पर उत्साह की एक भी रेखा नहीं उभरी। "नहीं रंजन," वह आँचल सँभालकर उठ बैठी, "जैसे फाँसी दिये जाने के पहले अभियुक्त की प्रत्येक इच्छा पूरी कर दी जाती है ना ?" वह हँसी, "ऐसे ही मैंने अपनी मनचाही वस्तु कलेजे में सँजोकर छिपा ली है, अब मैं आगे नहीं बढ़ूँगी। एटकिंसन का पूरा

परिवार अब भीमताल छोड़कर अरविन्द आश्रम जा रहा है, उसने मुझे साथ ले चलने का वायदा किया है।"

"कौन है एटकिंसन ?" झल्लाकर प्रश्न पूछते ही रंजन स्वयं खिसिया गया।

कोई भी हो एटकिंसन, उसे क्या अधिकार था पन्ना की गतिविधि पर रोक-टोक रखने का, जिसकी मरे-जिये की सुधि भी उसे आज तक कभी नहीं आयी थी।

"एटकिंसन मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, अरविन्द आश्रम की एक ज़मीन का मुख्या भीमताल में भी है, उसी की देख-रेख का भार आश्रम ने उन्हें सौंप दिया था। दोनों पुत्रों ने संन्यास ले लिया, एक अरविन्द आश्रम में है माँ के पास, दूसरा न जाने हिमालय की किन गहन कन्दराओं में जाकर खो गया है। तुम मेरी चिन्ता मत करो रंजन," प्राणाधिक सुन्दर चेहरा रंजन के गालों के पास आकर सट गया, "न मुझे अब तुम पर क्रोध है, न प्रतिशोध की ही कोई भावना। कैसा आश्चर्य है सच, कुछ घण्टों पहले जब मैंने तुम्हें फ़ोन किया, तुम्हें पाने पर कच्चा चबा सकती थी। पर अब जैसे स्वयं ही सब-कुछ धुलकर साफ़ हो गया है।

"कली को भी क्या दोष दूँ—जब रक्त-मांस की बनी सगी बड़ी दी ही मेरी शत्रु बन बैठीं तो उस परायी लड़की के लिए यह सोचना कि वह कभी मेरी बनेगी, सचमुच ही मेरा बचपना था। फिर भी एक बार आश्रम जाने से पहले बड़ी दी से मिलने की बड़ी इच्छा है।"

"तुम्हारी बड़ी दी क्या वहाँ अब बैठी हैं ?" रंजन ने सिगार की राख झाड़कर, मुँह में दबा लिया। दोनों हाथ पीठ-पीछे बाँधकर वह फिर लेट गया।

"क्यों ? पीली कोठी ?" पन्ना ने पूछा।

"पीली कोठी में अब प्लानिंग का दफ़्तर है। बड़ी दी पाकिस्तान चली गयीं, कोई रहमतुल्ला हैं, उन्हीं से निकाह पढ़ लिया। मैत्री ने कलकत्ते में ब्यूटी क्लिनिक खोल लिया है। वाणी सेन दिल्ली में है, उसी ने तो बताया मुझे यह सब।"

"दिल्ली में ? वहाँ क्या कर रही है वाणी ?"

"मोटी स्त्रियों को तन्वी बनाती है। 'स्लिमिंग सेण्टर' में अपनी पत्नी को लेकर गया, तो देखा दफ़्तर में बनी-ठनी वाणी सेन बैठी है। वैसी ही धरी है अभी भी—दुबली-पतली, छरहरी। मुझे देखा, पहचाना, पर पट्ठी ने चेहरेपर पहचान की एक रेखा भी नहीं उभरने दी। एकान्त में मिली, तो पहला प्रश्न उसने यही पूछा, 'क्या मैंने उसकी कली को देखा है ?'

"मैंने जब कहा कि मैं न कली से मिला हूँ, न उसकी माँ से, तो वह उदास हो गयी। उसी ने मुझे बताया कि कैसे नये क़ानून बनते ही बड़ी दी का कारोबार एकदम ठप हो गया। वाणी दिल्ली चली आयी और वहाँ उसने किसी योगी के साथ साझे का क्लिनिक खोल लिया। वह बता रही थी कि जितना पैसा उसने उस क्लिनिक से कमाया उतना उस धन्धे में कभी नहीं कमा पायी थी। वाणी झूठ नहीं बोल रही थी

पन्ना ! ओफ़, कैसी-कैसी कारों की लम्बी क़तार खड़ी थी। कितनी ही विदेशी दूतावास की मेमें सिर के वल खड़ी योगाभ्यास कर रही थीं।

"गेरुए रेशमी वस्त्रों में वाणी के रँगीले स्वामी को देखा तो दंग रह गया। हाथ में थीं हीरे की अँगूठियाँ, गले में रुद्राक्ष की माला और सिर के वाल तो, लगता था, 'फ़िक्सो' लगाकर खड़े किये हैं। 'वाह वाणी', मैंने कहा 'तुम और तुम्हारे योगिराज दोनों इस क्लिनिक के जीते-जागते विज्ञापन हो!' गाजर, मूली, टमाटर का रस पिला और सिर के वल खड़ी कर सचमुच वाणी ने मेरी पत्नी का वज़न पूरा एक स्टोन घटा दिया था। वाणी सेन से यदि मिलना चाहो, तो अलबत्ता मिला सकता हूँ...."

"नहीं, अव किसी से नहीं मिलूँगी, जिससे मिलना चाहती थी, उससे मिल चुकी हूँ और जिस से बिछुड़ना चाहती थी, उससे भी बिछुड़ चुकी हूँ। देख आऊँ, क्या सचमुच ही चली गयी?"

उसके पीछे-पीछे उठकर रंजन भी चल दिया, दोनों ने बँगले का कोना-कोना छान मारा, कली कहीं नहीं थी।

"हो सकता है कहीं मिलने-मिलाने चली गयी हो, दिमाग़ ठण्डा होगा तो खुद ही चली आयेगी।"

"नहीं, अव वह कभी नहीं लौटेगी, मैं उसके स्वभाव को क्या नहीं पहचानती। मुझे और किसी की चिन्ता नहीं है, वस यही भय होता है कि रोज़ी न जाने क्या सोचेगी! उसे आज ही फ़ोन पर यह सव बताना होगा।"

"क्यों अपना दिमाग़ खराब कर रही हो पन्ना," रंजन ने टोपी उतारकर हाथ से उसकी मुड़-तुड़ी भाँज ठीक की, तिरछी कर माथे पर टिकाया, फिर अपना 'ब्रीफ़केस' उठाकर खड़ा हो गया।

"मैं अव चलूँ, कल सुवह फिर आऊँगा।" पाँच ही घण्टों में उसके सम्मुख खड़ी पन्ना की वयस के जैसे दस वर्ष घट गये थे।

"क्या मुझे छोड़ने थोड़ी दूर तक भी नहीं आओगी, पन्ना?" प्रणयी के आतुर आह्वान को पन्ना कैसे टालती।

कोठी का द्वार वन्द कर उसने ताला लगाया और रंजन के साथ मन्थर गति से पगडण्डी उतरने लगी।

कल तक कौन सोच सकता था कि नित्य एक ही गति से वहते उसके जीवन में ऐसी उथल-पुथल मच जायेगी। क्या वह कभी स्वप्न में भी सोच सकती थी कि रंजन उसे अचानक मिल जायेगा, और कली ऐसी हृदयहीनता से उसे ठुकराकर अकेली छोड़ जायेगी?

निःशब्द दोनों कितनी दूर तक उतर आये।

"अव तुम लौट जाओ पन्ना," रंजन थमककर पलट गया, "वहुत दूर आ गयी

"हो, मैं कल सुबह नौ बजे तक आ पाऊँगा, तब फिर निश्चय करेंगे, मैं तुम्हें यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता।"

पन्ना ने हँसकर दोनों हाथ उसके कन्धे पर धर दिये। देवदार के लम्बे पेड़ के तने से उसने अपनी पीठ टिका ली, "अब तुम्हें कोई निश्चय नहीं करना है रंजन, निश्चय मैं कर चुकी हूँ। हमें यहीं आज ही विदा लेनी होगी, कल नहीं।

"तुम्हारी पत्नी है, युवा पुत्र हैं, उनसे मैं तुम्हें छीन लूँगी, तो कभी तुम स्वयं ही मुझे क्षमा नहीं कर सकोगे। मैं जा रही हूँ रंजन।"

इससे पहले कि रंजन उससे कुछ कहता, वह बिजली की गति से मुड़कर पगडण्डियों में यन्त्र-सी घूमती, तिरोहित हो गयी।

बड़ी देर तक विद्युत रंजन खड़ा सोचता रहा। क्या करे? लौट चले पन्ना के बँगले में? फिर उसके कर्तव्य-बोध ने उसे सहसा झकझोरकर रख दिया। मूर्ख! अभी तक केवल देशसेवा के बहाने देश का रुपया लूटने-खसोटने का ही कलंक लगा है, अब क्या चरित्र-हत्या भी करवायेगा? फिर राजभवन में मुख्यमन्त्रियों की सभा है ठीक पाँच बजे, चार यहीं बज गये हैं। तू उस पतिता वेश्या के पीछे भागने की सोच रहा है। स्वयं अपनी अन्तरात्मा की एक ही धमकी से रंजन सहम गया। उसने टोपी सीधी की, रूमाल से पसीना पोंछा और 'ब्रीफ़केस' बग़ल में दबाकर, तेज़ी से उतार उतरने लगा।

सात

'ए मैन ईटिंग टाइगर इज़ ए टाइगर दैट हैज़ बीन कम्पेल्ड थ्रू स्ट्रेस ऑफ़ सरकमस्टान्सेज़ बियाण्ड इट्स कण्ट्रोल, टु एडॉप्ट ए डाइट एलाइन टु इट'—जिम कोरबेट। किशोरी कुमाँउनी शेरनी परिस्थितियों से बाध्य होकर अब सचमुच ही जिम कोरबेट की-सी खूँख़ार आदमख़ोर शेरनी बन चुकी थी। गोल चेहरा अब लम्बोतरा पान के आकार का बन और भी सलोना हो गया था। तीन वर्ष के कलकत्ता प्रवास ने उस तन्वी के लचीले शरीर को दुबला बना दिया था या कसे शरीर से सिले कपड़ों की चुस्त काट-छाँट का जादू था? शायद पन्ना भी उसे पहली झलक में नहीं पहचान सकती थी। पहचानती भी कैसे! टाटा टेक्स्टाइल की लिबास में वह पहली बार मॉडल बनी तो स्वयं डायरेक्टर ने आकर उसे बधाई दी थी। विलक्षण मॉडल थी वह। जैसे विधाता ने ही उस अपूर्व मॉडल को स्वयं अपने हाथों से गढ़कर इसी अभिप्राय से धरा पर अवतरित किया था। पेशेवर मेकअप करनेवाली की तूलिका कर ही क्या लेती।

क्या उन अस्वाभाविक रूप से बड़ी आँखों, लम्बी ऊपर को मुड़ी पलकों या नन्हें अधरों की 'क्यूपिड' गढ़न में कहीं भी काट-छाँट की कोई गुंजाइश थी ! सबसे अधिक आकर्षण था कली के बच्ची के-से मासूम चेहरे का। हँसती तो गालों में पड़ते गहरे गढ़ों को जान-बूझकर विलम्बित स्मित में देर तक गहरे खोदकर रख देती।

धीरे-धीरे वह सलोना चेहरा, साबुन के विज्ञापन से उठकर बहुत ऊपर चला आया। हैण्डलूम एक्सपोर्ट कार्पोरेशन के इक्ज़ीक्यूटिव डायरेक्टर ने स्वयं पत्र लिखकर उससे अनुरोध किया था कि वह भारतीय वस्तुओं के प्रदर्शन में, विदेशी मार्केट को अपनी उपस्थिति से धन्य करे। न्यूयार्क के 'सोना' इम्पोरियम में लाखों अमरीकियों के हृदय वह अपनी साड़ी के एक-एक भाँज में बन्द कर हाल ही विदेश से लौटी थी। पर अब उसे नित्य मोटी बदसूरत चमकती-दमकती स्त्रियों की भीड़ में घूम-घामकर नित-नवीन साड़ी, चूड़ीदार, मिनी स्कर्ट के प्रदर्शन से ऊब उठने लगी थी। अब उसी की एक परिचित ने उसे मोटी तनख्वाह पर 'रिसेप्शनिस्ट' के पद पर रखवा दिया था। सप्ताह में चार दिन ही उसे काम पर जाना होता। न भाग-दौड़, न नित्य की सज्जा, लेप-थोप। पर जिस बंगाली परिवार के साथ वह रहती थी, उसकी गृहिणी अब उसके लिए विशेष सिरदर्द बनती जा रही थी।

'इतनी रात तक कहाँ रहती हो ?'

'कैसी नौकरी है भई तुम्हारी ? कहती हो खाना-पीना सब वहीं मिलता है, उस पर सप्ताह में चार दिन पड़ी-पड़ी खाट तोड़ती हो ! हमसे तो तुम्हीं भली।'

'जैसी धनेखाली डूरे साड़ी पहनकर तुम कल दफ़्तर गयी थीं, ऐसी ही एक मेरे लिए भी ला देना भाई कली, पैसे किराये में काट लूँगी।'

बेला सेन की फ़रमाइशें पूरी करते-करते कली को मकान का किराया बहुत भारी पड़ने लगा। एक कमरा और साझे का ग़ुसलखाना उसे बहुत महँगा पड़ रहा था। किराये की भी उसे चिन्ता नहीं थी, चिन्ता थी उस आवश्यकता से अधिक मुखरा स्त्री के कौतूहली सदा जागरूक स्वभाव की। वह कहीं जाये, कुछ भी करे उसका क्या ? फिर ऐसे जासूसी-भरे वातावरण में वह आश्वस्त होकर ठीक से सो भी नहीं पाती थी। पहले तो उसका व्यवसाय ही ऐसा था कि उसे सदा प्राण अपनी नन्हीं हथेली पर धरकर नट की-सी रस्सी पर चलना पड़ता था।

पहले-पहल कलकत्ता आयी तो विवियन की ही दूर के रिश्ते की मौसी के यहाँ टिकी थी। मौसी का बहुत बड़ा पॉल्ट्री फ़ॉर्म था, लेगहॉर्न मुर्ग़ियों के साथ-साथ विवियन की लौरीन आण्टी, और भी बहुत-सी सोने के अण्डे देनेवाली मुर्ग़ियों का व्यापार करती है, यह समझने में कली को विलम्ब नहीं हुआ। ऐसी सुन्दरी, लुभावनी मुर्ग़ी, सहसा छप्पर फाड़कर लौरीन के फ़ॉर्म पर फड़फड़ा उठी तो उसने लपककर हथेली पर बिठा लिया। आसपास चीनियों के कई परिवार रहते थे। उन्हीं के बीच, एक चीनी जूतेवाले के दरबे-से गन्दे मकान में रहती थी लौरीन। बाहर से एकदम रिकेटी दिखते

उस मकान का बरामदा भी किसी बूढ़े के हिलते दाँत-सा नीचे लटक आया था। जालो से घिरे अहाते में कई मुर्ग़ियाँ दिन-रात फड़फड़ाती रहतीं और तीन-चार कलँगीवाले मोटे-ताज़े मुर्ग़े अकड़ से नये दूल्हे का-सा सेहरा उठाये घण्टाघर की घड़ी से स्वर मिलाते बड़े तड़के ही बाँग देकर कली की नींद तोड़ देते। टूटे मकान की श्रीहीन कान्ति देखकर कली का कलेजा काँप गया था। यहाँ कैसे रहेगी वह? कहाँ 'देवदार' का वैभव, सेण्ट मेरीज़ कान्वेण्ट की जीभ से चाटी गयी स्वच्छ सज्जा और कहाँ मुर्ग़े-मुर्ग़ियों और पंख-विहीन घिनौने चूज़ों का सान्निध्य!

लौरीन बड़ी-बड़ी छातियों, चौड़े जबड़ों और घोड़ी के-से चेहरेवाली अनोखी स्त्री थी। वह अपने घने बालों की चोटी को तिब्बती स्त्रियों की केशसज्जा में चपटे सिर के चारों ओर दुहरी लड़ में लपेटकर रखती थी। चौड़ी कमर में बँधा उसका ऐप्रन, हंगेरियन कढ़ा ब्लाउज़ और स्वच्छ स्कर्ट देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि वह दिन-भर मुर्ग़ियों के दरबे में हाथ में झाड़ू लिये सफ़ाई करती रहती है। सफ़ाई के पीछे बुढ़िया दीवानी थी। इसी से उसके जीर्ण-शीर्ण मकान का भीतरी कलेवर बाहरी गन्दगी से एकदम अछूता था, ठीक जैसे कोई रूपसी मुसलिम युवती गन्दा बुर्क़ा ओढ़े बैठी हो। बंगाल की वर्षा से पीली दीवारों पर कहीं-कहीं पुराने मक़बरे की-सी काई जमकर घास के नन्हें गुच्छे उग आये थे, पर स्वयं लौरीन का कमरा सदा स्वच्छ दर्पण-सा चमकता। कमरे की सज्जा प्रत्येक ऐंग्लो इण्डियन के कमरे की सी सज्जा थी। मेण्टलपीस पर सजाये क्रिसमस कार्ड, चित्रों में वधू वेश में हाथ में बड़ा-सा गुलदस्ता लिये लौरीन। पुत्री के बपतिस्मा पर उसको गोद में लिये लौरीन, उसी के पास सुनहले फ़्रेम में महारानी विक्टोरिया का एक बहुत बड़ा-सा चित्र और धरा रहता, जिसे लौरीन नित्य बड़े यत्न से पोंछ-पाँछकर चमकाती रहती। लौरीन के साथ उसकी अनाथ भतीजी सूजन भी रहती थी। बचपन में मोटर के नीचे दब जाने पर उसकी पूरी टाँग काट दी गयी थी। पर अपनी लकड़ी की टाँग को बैसाखी के बल घसीटती वह आश्चर्यजनक तेज़ी से चल सकती थी।

"सूजन, मुझे यहाँ आये आठ दिन हो गये हैं, कबतक ऐसे बैठी रहूँगी? आण्टी से कहूँगी अब मुझे कहीं कुछ काम दिला दें।"

"काम?" सूजन ठठाकर हँस पड़ी थी, "यहाँ तो काम ही काम है ईडियट! चिन्ता क्यों करती है, आण्टी इतना काम लाद देंगी कि सँभाले नहीं सँभलेगा। आज इसी चक्कर में तो बुढ़िया बाहर गयी है। इधर आ," वह बैसाखी पटक अपने रेल के बर्थ के-से पलंग पर बैठ गयी थी।

"मेरी यह टाँग देखती है ना? यही तो आण्टी की सोने के अण्डे देनेवाली बतख़ है। देख।" उसने अपनी निर्जीव टाँग से लगी अदृश्य अर्गला खोलकर रख दी थी।

"इसी में एक साथ तीस-तीस सोने की पट्टियाँ स्मगल कर सकती हूँ। बुढ़िया के असली फ़ार्म की नित्य बड़े अण्डे देनेवाली लेगहार्न मुर्ग़ी हूँ मैं, समझी!"

असदुल्ला और पार्वती का रक्त सचेत हो गया। सूजन के साथ-साथ कली भी फिर बड़ी स्वाभाविकता से पर फड़फड़ाती घूमने लगी—कभी कलकत्ता, कभी बम्बई और कभी मद्रास। यू. ए. आर. और चीन का मनों सोना तब मद्रास में ही उतर रहा था। मद्रास की सीमा के पास ही कली की कार को उस बार तीन-चार 'रेवेन्यू इण्टेलिजेंस' के धृष्ट कर्मचारियों ने घेर लिया था। सूजन का लकड़ी का पैर भय से ठक-ठक काँप उठा। स्वयं कली की मुट्ठी-भर की कमर में शिव के गले से लिपटी पतली नागिन-सी सोने की कई पत्तियाँ एक क्षण को विचलित हो उठी थीं।

गुजराती लड़की रश्मि दवे, आण्टी के पॉल्ट्री फ़ॉर्म की सबसे नयी और फूहड़, डरपोक मुर्ग़ी थी।

"हाय मैं मर गयी, अब क्या होगा। मेरे पिता मुझे गोली से उड़ा देंगे," वह काँपने लगी थी।

"चुप कर मूर्ख," कली फुसफुसायी थी। "तेरे पिता मन्त्री हैं, और वर्षों से यही काम कर रहे होंगे। खबरदार जो तूने चेहरे पर शिकन भी आने दी।"

कार से उतरकर वह बड़ी मस्ती से मुसकराती सींग घुसड़ने को तत्पर क्रोधी साँड-से चारों अफ़सरों की ओर बढ़ गयी।

"कहिए, आप लोगों ने हाथ ऊँचे कर क्या हमें ही कार रोकने का आदेश किया था," वह बड़ी दुष्टता से मुसकराने लगी।

"जी हाँ," चारों में सबसे गम्भीर और मोटे तगड़े पुलिस की वर्दी पहने अफ़सर ने रूखा-सा उत्तर दिया।

"ओह," कली माइलस्टोन पर बैठ, धूप का फ़ैण्टम चश्मा उतारकर रूमाल से पोंछती हँसकर बोली, "मैंने सोचा शायद 'हैण्ड्स अप' कर के, हम चारों के सौन्दर्य से डरकर आप चारों स्वयं ही हथियार डाल रहे हैं।"

चारों में सबसे छोटा और चुलबुला-सा छोकरा अफ़सर 'खु-खु' कर हँसने लगा, पर दूसरे ही क्षण वरिष्ठ गम्भीर अफ़सर की कठोर दृष्टि से सहमकर वह एटेंशन की मुद्रा में खड़ा हो गया।

"हमें सूचना मिली है कि कुछ सोना स्मगल कर आज यहाँ लाया जा रहा है। आप ही की नहीं, हर आने-जानेवाली गाड़ी की हम तलाशी ले रहे हैं।"

"ओ आई सी," कली फिर हँसी। उसके गालों के गहरे गड्ढों में वर्दीधारी वरिष्ठ अधिकारी को छोड़कर शेष तीनों छोकरे अफ़सर वर्दी सहित गले तक धँस गये।

"ले लीजिए ना तलाशी, पर तलाशी किसकी लेंगे हमारी या हमारी कार की?"

"सूजन डार्लिंग, तुम लोग सब नीचे उतर आओ, ये महाशय हमारी तलाशी लेंगे। कहते हैं, हम सोना स्मगल करने आयी हैं।"

तीनों लजाती-मुसकराती अप्सराएँ नीचे उतर आयीं, अकेला घनी मूँछोंवाला घाघ सरदार ड्राइवर ह्वील पकड़े निर्विकार मुद्रा में सीट पर जमा ही रहा था।

कली हँसकर कहने लगी, "वाह सरदारजी, आप भी उतर आइए ना! सबसे कड़ी तलाशी इन्हीं की लीजिएगा सर, क्या पता घनी दाढ़ी और जुट्टे के जटाजूट में सोने की कोई भागीरथी छिपाये बैठे हों।"

अचानक न जाने कहाँ से पास के कॉलेज के छोकरों की भीड़ कार को घेरकर खड़ी हो गयी।

"माला सिन्हा है, आइ केन वेट," एक स्वर फुसफुसाया। फिर वही छुतही गूँज पूरी भीड़ में गूँज उठी।

"देखा ना?" कली को वही अस्पष्ट फुसफुसाहट नयी प्रेरणा दे गयी। उसने अपनी भुवनमोहिनी हँसी के दर्पण में गालों के गहरे गढ़े फिर चमकाये, "आप नहीं पहचान सके, मेरे 'फैन' ने मुझे पहचान लिया। महाशय, हम सोना स्मगल करने नहीं, अपितु नीरस दक्षिण प्रदेश में सुवर्ण-वृष्टि करने आयी हैं, समझे?"

अबतक खिलवाड़ करती परिहास-रसिका कली ने गिरगिट का-सा रंग बदल दिया। उसके पतले नथुने क्रोध से फड़कने लगे, "यहाँ हम फ़िल्म की शूटिंग के लिए आयी हैं। सोचा था आपका मद्रास हमारे स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछा देगा, पर देखा ना रश्मि, कैसे मूर्ख ज़ाहिल लोगों का देश है! चाहने पर आपको सू कर सकते हैं, यह जानते हैं क्या आप?"

"कहा था ना मैंने माला है, मिस ऑटोग्राफ़।"

"इसी कापी पर दे दीजिए मिस, इन्हें अभी भगाते हैं। आप चिन्ता मत करिए।" और चारों रौबदार अफ़सरों को विद्यार्थियों की भीड़ ने दूर तक खदेड़ दिया।

'रेवेन्यू इण्टैलिजेंस' के चारों अधिकारी दूर से ही विद्यार्थियों की कापियों और पाठ्य-पुस्तकों पर हस्ताक्षर करती चार अप्सराओं को विवशता से हाथ बाँध देखते रहे थे। चलते-चलते कली ने एक फ़्लाइंग किस चारों की ओर उड़ा दिया और विनोद-प्रिया तारिकाओं का रहस्यमय दल, तेज़ी से कार भगाता मद्रास के गन्तव्य स्थान पर सोना उँडेल रात ही रात कलकत्ता लौट गया था। इसके बाद कली ने स्वेच्छा से ही वह धन्धा छोड़ दिया। अब उसके पैर स्वयं ही महानगरी में जम गये थे, किसी के कन्धे का सहारा लेने की अब उसे आवश्यकता नहीं थी।

जिस फ़्लैट में कली रहती थी उसके सामने ही एक लाल ईंटों का बना बड़ा सुन्दर-सा मकान था। कली को वह कलकत्ते के आधुनिक कलात्मक फ़्लैट्स की भीड़ में खड़ा ऐसा लगता, जैसे बनी-ठनी उसकी-सी आधुनिकाओं की खोखली प्रतिमाओं के बीच, कोई घूँघट काढ़े सलज्ज ग्राम-वधू ही खड़ी हो। न उसके द्वारों में पर्दे थे, न खिड़कियों में। तनिक निकट जाने पर ही भीतर के कमरों की अन्तरंग छवि का स्पर्श करती कली की उत्सुक दृष्टि सीधे रसोईघर तक पहुँच जाती, जहाँ गृह की सज्जा से

मेल खाती सरल प्रौढ़ गृहस्वामिनी कभी कढ़ाई में ठेठ उत्तर प्रदेशी मसालों में पालक का साग छौंकती, और काल्पनिक स्वाद लेते कली के नथुने फड़क उठते।

'देवदार' में माँ के पड़ोस में रहती थीं मिसेज़ जोशी। कली ने उन्हें कभी हँसते नहीं देखा। जब छुट्टियों में घर आती, देखती उदास जोशी चाची रसोई में कढ़ाई में कुछ न कुछ घोट रही हैं। लगता हाथ कहीं हैं, चित्त कहीं। कभी स्वयं ही बड़बड़ाने लगतीं, कभी चुप हो गुमसुम बैठ जातीं। स्वयं उन्हीं की पुत्री ने एक दिन कली को बताया था, तीन पुत्रियों के बाद जन्मा उनका सुकुमार पुत्र घोड़े से गिरकर मर गया था। तभी से माँ ऐसी हो गयी हैं। कली जब भी जाती वे बड़े प्रेम से उसे चौके में बिठाकर स्वयं अपने हाथों से नाना प्रकार के स्वादिष्ट पहाड़ी व्यंजन बनाकर खिलातीं।

कलकत्ते के उस लाल ईंटों के मकान की गृहस्वामिनी को देखकर कली को जोशी चाची की ही याद हो आती। वैसी ही उदास दृष्टि, बड़ा-सा टीका, यहाँ तक कि दबे ओठों का संयमित स्मित भी एकदम चाची का-सा था। एक दिन वह दफ़्तर जा रही थी, नित्य के अभ्यास से उसकी दृष्टि स्वयं ही लाल कोठी की ओर उठी। बरामदे में ही वह सौम्य महिला खड़ी थी।

"क्यों बेटी, कहीं नौकरी करती हो क्या, रोज़ इसी समय तुम्हें जाते देखती हूँ?"

"जी हाँ," कली उस सीधे पल्ले में एकदम अबंगाली महिला के मुख से सुस्पष्ट बँगला सुनकर अवाक् हो गयी।

"क्या यहीं रहती हो?"

"जी हाँ, बस तीन फ़्लैट छोड़कर चौथे में।"

"कभी आना, मैं अकेली रहती हूँ। मन बहल जायेगा।"

और फिर तीसरे दिन, नियति ने कली को किसी जादुई ग़लीचे में बिठाकर वहाँ सामान सहित ही पहुँचा दिया था।

रेवती शरण तिवारी को कलकत्ते में रहते दो पुश्त बीत चुकी थीं। उनके दादा को कालीमन्दिर में शतचण्डी पाठ करने कलकत्ते के प्रसिद्ध ज़मींदार ने पहाड़ से बुलवाया था। धीरे-धीरे कलकत्ते में उनकी यजमानी में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। उस निष्ठावान् तेजस्वी ब्राह्मण के दमकते ललाट, सुमधुर कण्ठ, सुस्पष्ट संस्कृत उच्चारण ने उन्हें बंगाल के समृद्ध वैष्णव परिवारों का पुरोहित बना दिया। पुत्र को भी उन्होंने इसी आशा से संस्कृत पढ़ने काशी भेजा था कि शास्त्री की परीक्षा पास कर पिता की यजमानी सँभाल लेगा। पर शास्त्री-पुत्र ने पिता का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कलकत्ते के ही एक मारवाड़ी कॉलेज में वह संस्कृत पढ़ाने लगा, फिर स्वयं अपने पुत्र

रेवती शरण को भी उसने अँगरेज़ी स्कूल में दाखिल करा दिया। ऊँची शिक्षा प्राप्त कर, रेवती शरण ने सर्वोच्च सरकारी पद पर पहुँचकर अपने शास्त्री पिता का, पुत्र को अफ़सर बने देखने का, स्वप्न पूरा कर दिया था। अब वे अवकाश ग्रहण कर, पुश्तैनी मकान में रहते थे। दोनों पुत्रियाँ अपने ही समाज में ब्याह दी थीं, बड़ा पुत्र प्रवीर काबुल दूतावास में उच्चपदस्थ अफ़सर था, छोटे पुत्र सुवीर की दो वर्ष पूर्व भारत-पाकिस्तान युद्ध में मृत्यु हो चुकी थी। शायद उसी सुदर्शन युवा पुत्र की अकाल मृत्यु ने वृद्ध दम्पति को अस्वाभाविक रूप से गुमसुम बना दिया था।

फिर पिछले वर्ष उसी परिवार में एक और दुर्घटना घट चुकी थी। परिवार का ज्येष्ठ पुत्र जब माता-पिता के लाख सिर पटकने पर भी विवाह के लिए राज़ी नहीं हुआ तो हारकर बड़ी बहन ने छोटे भाई के लिए ही सुन्दर-सी बहू खोज दी। उसी के रिश्ते की ननद लगती थी।

विवाह को साल-भर भी नहीं हुआ था कि सुवीर को युद्ध में जाना पड़ा। कभी बाडमेर, कभी जोधपुर, कभी कश्मीर। जहाँ-जहाँ पाकिस्तानी बम गिराते, वहीं जैसे जान-बूझकर ही उसे जाने का आदेश मिलता। फिर भी कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सका। पर जैसे ही युद्धबन्दी की घोषणा हुई, किसी विश्वासघाती पाकिस्तानी की एक ही गोली ने उसे ठण्डा कर दिया।

रेवती शरण तिवारी तत्काल बहू को कलकत्ते ले आये। इतना बड़ा मकान था और भी सब सुविधाएँ थीं—विधवा बहू उन्हीं के पास रहकर पढ़ेगी। फिर वे स्वयं बहू को कॉलिज में भर्ती करा आये। कॉलेज जाने लगी तो स्वयं सास ने ज़िद कर हाथ में सोने की चूड़ियाँ डाल दीं।

सीधी-सादी, डरपोक सुन्दरी पहाड़ी बहू की झुकी गरदन, धीरे-धीरे सर्पगन्धा के फन-सी उठने लगी। अब वह कभी-कभी रोली की छोटी-सी बिन्दी भी धर लेती। गृह की बड़ी पुत्री जया मायके आयी तो एक वर्ष की ताज़ी विधवा बहू का श्रृंगार देखकर चकित रह गयी। हाथों में सोने की चूड़ियाँ, गले में चेन, आँख में धूप का चश्मा और बग़ल में दबी पुस्तकें!

जया बड़ी बुद्धिमती थी, माँ के भोले निरीह स्वभाव को वह जानती थी।

"अम्मा," उसने माँ को एकान्त में खींचकर समझाया भी था, "तुम क्या एकदम ही सठिया गयी हो? सुवीर की बहू को पढ़ा-लिखाकर उसके पैरों पर खड़ी करना चाहती हो यह सब ठीक है; पर तुम तो उसे धकेलकर दौड़ना भी सिखा रही हो! कौन कहेगा यह नाक सुड़कती चम्पा है, तुमने तो इसका हुलिया ही बदल दिया है!"

"तो क्या हो गया बेटी, सुवीर होता तो कितना पहनती-ओढ़ती। अभी उमर ही क्या है!"

"वह ठीक है अम्मा पर ऐसा भी क्या लाड़। परसों सिनेमा गयी थी, आज फिर किसी सहेली के साथ चल दी।"

"क्या करूँ जया! घर में रहती है तो गुमसुम बैठी न जाने क्या-क्या सोच-सुमिरकर रोती रहती है, बच्ची तो है अभी।"

और फिर उसी बच्ची ने एक दिन सबके कान काट लिये।

सुवीर की मृत्यु के पश्चात् लाल बँगलिया में भजन-कीर्तन आये दिन होता रहता। कभी नवद्वीप से कोई कीर्तन मण्डली आ रही है, कभी विष्णुपुर से। रात-रात-भर झाँझ-करताल और मृदंग की संगत के साथ कभी माँ के सुमधुर गाने गूँजते, कभी रामप्रसाद के कीर्तन गाते-गाते स्वयं रेवती शरण सुधबुध खो बैठते।

वर्षों से बंगाल में रहने से तिवारी परिवार के रहन-सहन, बोल-चाल यहाँ तक कि पहनावे में भी सुदीर्घ बंग-प्रवास की स्पष्ट छाप पड़ गयी थी। स्वयं गृहस्वामिनी के व्यक्तित्व में कुमाऊँ एवं बंगाल की संस्कृति का अद्भुत सम्मिश्रण था। वह गले में पहाड़ी मंगलसूत्र पहनती, पर हाथ की चूड़ियों के बीच रहती शंख की चूड़ी और 'नोआ।' पैरों में बिछुए रहते पर माँग में रहती प्रगाढ़ सिन्दूर की रेखा। सीधे पल्ले की साड़ी के आँचल में झूलता बंगाल की गिन्नी का-सा चाबी का गुच्छा। हिन्दी बोलती तो लगता कोई बंगाली महिला हिन्दी बोल रही है। पुत्र-पुत्रियों के काम भी ठेठ बंगाली थे, पर रूप-रंग था निरा पहाड़ी। दोनों पुत्रियाँ बंगाल में ही जन्मीं और वहीं के जलवायु में पलकर बड़ी हुई थीं। फिर भी उनका गौर वर्ण, निर्दोष गठन देखकर दूर से कोई भी कह सकता था कि वे पहाड़ी हैं। छोटे पुत्र की आदमक़द तसवीर को देखकर कली मुग्ध हो गयी थी। ऐसे जवान पुत्र की मृत्यु से बड़ा दुख माँ-बाप के लिए और क्या हो सकता था? और फिर इसी युवा पुत्र की स्मृति में घर की बहू भी तो कालिख पोतकर चली गयी थी।

रेवती शरण तिवारी के यहाँ साधुओं का समागम कोई नवीन घटना नहीं थी। नित्य कोई न कोई बाबा आते रहते। उनके घनिष्ठ मित्र घोषाल बाबू ही पहले-पहल स्वामी विदुरानन्दजी को उनके यहाँ लाये थे। क़द्दावर पठान-से थे स्वामीजी। गाल जैसे लाल सेब धरे हों, कन्धे तक झूलते घुँघराले केश और किसी नादान बालक की-सी दूधिया हँसी। तिवारी दम्पति उन्हें देखते ही उनके दासानुदास बन गये थे। सुरीले कण्ठ में गाये गये भजन दूर-दूर से लोगों को खींचने लगे। सन्ध्या होते ही अगरु-चन्दन के सुगन्धित धुएँ से आवेष्ठित मृगचर्म पर बैठे स्वामीजी की भव्य मूर्ति जो देखता उसी के चित्त का समस्त कलुष, संशय स्वयं धुल जाता। कोई कहता सौ वर्ष के हैं, कोई कहता परब्रह्म हैं भाई, उम्र का क्या ठिकाना, क्या पता दो सौ वर्ष के हों।

एक दिन चम्पा की सास ने स्वामीजी के दोनों पाँव पकड़ लिये, "महाराज,

आप तो बद्रीनाथ जा रहे हैं। पता नहीं कब लौटेंगे, जाने से पहले मेरी इस अभागिनी बहू को दीक्षामन्त्र देना ही होगा।"

पता नहीं कैसा दीक्षामन्त्र दिया स्वामीजी ने। सुबह सास उठी तो न बहू थी न स्वामी। सारे कमरे ढूँढ़े, पागलों की भाँति भागते वृद्ध दम्पति दक्षिणेश्वर गये। कभी-कभी स्वामीजी वहाँ भी चले जाते थे, क्या पता बहू भी उनके साथ चली गयी हो। वह पाखण्डी उनकी सुन्दरी बहू को लेकर कहीं भाग भी सकता है, यह कल्पना भोले दम्पति के निष्कपट मस्तिष्क में नहीं आ सकती थी।

एक दिन बीता, रात भी बीत गयी तो दोनों अर्ध-विक्षिप्त-से हो गये। बड़ी लड़की को ट्रंक मिलाया, तीसरे दिन जामाता-पुत्री आये, दामाद पुलिस विभाग का वरिष्ठ कर्मचारी था।

"जया ने आपसे पहले ही कह दिया था अम्मा, आपने बहू को बहुत छूट दे दी थी। चाहने पर मैं अभी लम्पट को पकड़कर आपके पैरों में डाल सकता हूँ। पर क्या अब आप उसे ग्रहण कर सकेंगी ?"

दो-तीन दिन तक स्वामीजी के असंख्य दर्शनार्थी भक्त, आ-आकर लौट गये।

स्वामीजी बद्रीनाथ चले गये।

और बहू ?

वह मायके चली गयी है, अब वहीं पढ़ेगी, कलकत्ते में उसका मन नहीं लगा।

इस प्रकार तिवारी परिवार का कलंक केवल परिवार के कुछ ही सदस्यों तक सीमित रहा।

"प्रवीर को लिखकर क्या होगा—आने पर स्वयं ही जान जायेगा," कहकर शान्त प्रकृति रेवती शरण ने बड़ी पुत्री को लिखी लम्बी चिट्ठी फाड़ दी थी।

अम्मा ने सुवीर का कमरा ही कली के लिए खाली कर दिया था।

"यह कमरा सबसे हवादार है और एकदम कोने पर है। इसी से किसी के आने-जाने से भी तुम्हें कभी कोई असुविधा नहीं होगी। पर बेटी, कहीं तुम अकेली डरोगी तो नहीं ?" चिन्तित स्वर में पूछे गये अम्मा के भोले प्रश्न ने कली को मन ही मन गुदगुदा दिया।

'वह भला डरेगी !'

"मैं और बाबूजी, दो कमरे छोड़ तीसरे में ही सोते हैं और महावीर रात-भर कसकर पहरा देता है। इस कमरे का द्वार एकदम सड़क के मुहारे खुलता है, तुम इसी से आ-जा सकती हो।"

कली खाना प्रायः बाहर ही खा लिया करती थी और जब घरपर रहती अम्मा उसे जबर्दस्ती अपने साथ बिठाकर खिलातीं।

स्वदेश से इतनी दूर थीं, इसी से पहाड़ की चिड़िया भी उन्हें प्यारी लगती। लाख बंगाली हो, कली का जन्म भी पहाड़ में हुआ था और वहीं रहकर बड़ी हुई थी। फिर बेचारी लड़की की न माँ थी न बाप था। दोनों ही उसे बहुत छोटी छोड़कर दिवंगत हो चुके थे। किसी मौसी ने ही उसे पाला है, यही सब बातें बना-बनाकर कली ने भोली अम्मा को ऐसा पटा लिया था कि वे उसे किराये की बात ही नहीं उठाने देती थीं।

आठ

जिस कमरे में कली रहती थी उसकी काँच लगी अलमारी में अभी भी सुवीर की शादी के बरतन सजे थे—वैसे ही साधारण पीतल, काँसे और मुरादाबादी क़लई के थाली-परात, लोटे, पीकदान, जैसे हर मध्यवर्गीय पहाड़ी कन्या को दहेज में मिला करते हैं। एक कोने में एक जोड़ा पीले रंग में रँगी खड़ाऊँ रखी थीं, हल्दी से रँगे पीले पटले पर बने दो लाल रंग के बेडौल तोते लाल चोचों में नींबू लटकाये अभी ज़रा भी धुंधले नहीं पड़े थे।

जिस नक़्क़ाशीदार आईना लगे पलंग पर कली सोती थी, वह भी सुवीर की शादी का पलंग था, उस जहाज़-से पलंग पर कली की-सी बीस कलियाँ एक साथ लोट-पोट सकती थीं। धीरे-धीरे कली ने कमरे की कायापलट कर दी। दहेज के बरतनवाली अलमारी को उसने आकर्षक लेस के पर्दे से ढक दिया, एक कोने में उसने बक्से-सूटकेस को ही ढाँप-ढूँपकर, छोटा-सा दीवान भी बना लिया था। सूने कमरे की बदली सज्जा को देखकर अम्मा प्रसन्न हो गयी थीं। वैसे दीवान पर टँगे दो मनहूस चित्रों को हटाकर वह कमरे को कुछ अंश में और भी सँवार सकती थी, पर वह मन ही मन समझती थी—मृत युवा पुत्र के कमरे में लगे उस चित्र को कली की आँखें बचाकर अम्मा नित्य ममता से निहार जातीं। उतनी बड़ी कोठी में कम से कम बारह कमरे थे। फिर भी अम्मा ने उसे उस कमरे में क्यों रखा होगा ? शायद कमरे की रिक्तता से स्वयं मुक्ति पाना चाहती होंगी।

उठते-बैठते, सोते-जागते, पतली मूँछों के बीच अपने बंकिम स्मित के प्रेत से निर्जीव चित्र कली को बुरी तरह सहमा देता। कभी-कभी तो वह मेज़पोश उठाकर उसे ढाँप देती।

दीवार पर दूसरी ओर पूरे परिवार का एक ग्रुप चित्र लगा था, जिस के सदस्यों के आधे अंग दीमक चौखट के भीतर पहुँचकर चाट चुके थे। चित्र शायद पचीस-

तीस वर्ष पूर्व का था। पीले रंग के चित्र पर चारों ओर रंगीन बेलबूटे बने थे। गृहस्वामी उस युग की साहबी वेशभूषा में तनकर बैठे थे पारसी ढंग से, खूब लम्बा आँचल लटकाये, घुटनों पर दोनों हाथ बिछाये अम्मा मुसकरा रही थीं। आसपास घुटनों तक की स्कर्ट और फ़्रिञ्ज में जापानी गुड़िया-सी दोनों पुत्रियाँ और सेलर सूट में जुड़वाँ-से लगते दोनों भाई एक-दूसरे का हाथ पकड़े सहमे-से खड़े थे, दोनों चित्रों को हटा देने पर कमरा निश्चय ही बहुत कुछ उजला बन सकता था, पर कली ने जान-बूझकर ही दोनों को वहीं रहने दिया था। एक तो वह घर पर रहती ही बहुत कम थी। इधर कई विदेशी अतिथियों को लेकर उसे लम्बे दौरे पर जाना पड़ा था। आगरा, दिल्ली, नागार्जुन, भाखड़ा आदि घुमा-फिराकर पूरे महीने-भर बाद लौटी थी।

आते ही उसने देखा गोल कमरे के द्वार पर आकर्षक पर्दे झूल रहे हैं। न जाने कहाँ से क़तार की क़तार गमलों की आकर बिछी है। एक दस-बारह वर्ष की गोल-गोल-सी गोरी लड़की, लोहे के फाटक में दोनों पैर रखकर, झूला झूल रही थी। कली की गाड़ी देखते ही कूदकर भीतर भाग गयी।

ऑफ़िस की लम्बी गाड़ी कली का सूटकेस उतारकर चली गयी।

उसकी अनुपस्थिति में शायद अम्मा की बड़ी पुत्री का परिवार आ गया होगा। साल में एक बार जाड़ों की छुट्टियों में अम्मा की दोनों पुत्रियाँ पहाड़ से आती थीं। झूला झूलनेवाली लड़की शायद अम्मा को कली के आने की सूचना दे आयी थी। कली ने पहले सोचा स्वयं ही अम्मा को जाकर अपने आने की सूचना दे आये। उसे अभी फिर दोपहर की गाड़ी से लखनऊ जाना था। चिकन की साड़ियों की किसी नुमाइश में मॉडल बनने के अनुबन्ध पर उसने तब बिना सोचे-समझे ही दस्तख़त कर दिये थे। तब क्या पता था कि इस एक महीने के भीतर उसकी हड्डी-हड्डी दुखने लगेगी।

"अरे, तू आ गयी ? एक तार कर देती तो महावीर स्टेशन चला जाता, गाड़ी तो गैरेज में ही दिन-रात पड़ी रहती है," कहते हुए अम्मा आकर मोढ़े पर बैठ गयीं।

"नहीं अम्मा, ऑफ़िस की स्टाफ़ कार आ गयी थी। मुझे अभी फिर तीन दिन के लिए बाहर जाना है।" एक महीने निरन्तर घूमने-फिरने से कली का मुँह उतर गया था।

"हद है यह नौकरी," अम्मा असन्तुष्ट स्वर में कहने लगीं। "यह भी क्या कि लड़की को घुमा-फिराकर मार ही डालो, जया-माया दोनों आ गयी हैं। माया तो आज अपनी सहेली से मिलने चली गयी, तू नहा-धोकर आ, तुझे सबसे मिला दूँ।" पुत्रियों के परिवार के आ जाने से अम्मा के चेहरे पर जैसे नयी रौनक़ आ गयी थी।

कली ने नहा-धोकर. आईना देखा और स्वयं अपना चेहरा उसकी आँखों से अनजान बना टकरा उठा। क्या गत बन गयी थी चेहरे की, सूजी-सूजी आँखों के नीचे झाँईं, रूखे बाल।

शरीर पर सचमुच ही वह घोर अन्याय कर गयी थी। रात-दिन का घूमना, उस पर बदपरहेज़ी !

ऐसे वह भला अम्मा की पुत्रियों से मिल सकती थी। कई रात्रियों का समवेत जागरण पूरे चेहरे पर उभर आया था। वह पहले खूब देर तक नहायी। बड़ी देर तक पूरे वेग से नल खोलकर उसके नीचे बैठी रही। बिजली से बाल सुखाकर कलिंग पिन खोलीं और गुच्छे के गुच्छे मुलायम मुड़े-तुड़े बाल कन्धे पर बिखर गये। टेढ़ी माँग निकालने पर उसका चेहरा और भी बचकाना बन जाता था। फिर उसने अपनी सब से सोबर साड़ी निकाली। आन्ध्र खद्दर की ऑफ़-ह्वाइट वही साड़ी जिसे पहन उसने मद्रास हैण्डलूम एम्पोरियम में देश-विदेश से एकत्रित हुई पचीस मॉडलों की सलोनी सूरत पर झाड़ू फेरकर रख दिया था। एक ओर लाल ज़री की कन्नी, दूसरी ओर काले मिट्टी पाड़ में, ज़री की चमकती विद्युत् वह्नि, जो किसी बिजली की ही भाँति गिरनेवाले को विस्फोट से पहले ही भस्मीभूत कर देती थी। कानों में वह केवल हीरे के दमकते कर्णफूल ही पहनती थी। इन्हीं कर्णफूलों की स्वामिनी बनने के लिए उसे जान हथेली पर रख, चलती ट्रेन से कूदना पड़ा था।

कैसा दुस्साहसी कलेजा था तब !

और अब ?

एक लम्बे अरसे तक वह धधकती भट्ठी में हाथ डालकर खेलती रही थी, पर अब एक सामान्य-सी चिनगारी ही उसे भयभीत कर देती थी। चिड़िया का कलेजा बन गया था उस का। कभी-कभी अचानक वह नींद में ही ज़ोर से चीखकर काँपने लगती। लगता कोई छाती पर चढ़ उसका गला घोंट रहा है। अपने कण्ठ से निकली, गोंगों करती अस्वाभाविक डरावनी आवाज़ से वह स्वयं ही जग खिसियाकर उठ बैठती। पसीना-पसीना बनी, वह फिर बड़ी देर तक सो ही नहीं पाती।

अपनी कम्पनी के डॉक्टर गुप्त के पास वह गयी, तो उन्होंने हँसकर कहा था, 'नर्वस मिस मजूमदार नर्वस, शादी कर लो, बस फिर कोई छाती पर चढ़कर गला नहीं घोंटेगा।'

हाथ की नन्हीं घड़ी को सहलाकर कली ने कलाई पर बाँध लिया। चारों ओर हीरों की वर्तुलाकार पंक्ति में घिरी घड़ी के भीतर टेढ़े-मेढ़े रोमन अक्षर चींटियों-से चमक रहे थे। यह घड़ी लौरीन आण्टी की भेंट थी। एक बार एक साथ तीन सौ घड़ियाँ स्मगल करने का कठिन भार लौरीन ने कली को सौंपा था और वही भार सफलतापूर्वक वहन करने के पुरस्कार स्वरूप उसे यह अनूठी घड़ी प्राप्त हुई थी। गोदी में था भाड़े का एक गोलमटोल शिशु और उसी शिशु के नैपकिन में रुई के भीतर ठूँसी थीं विदेशी घड़ियाँ। ऐसा ट्रेण्ड शिशु कली ने अपने जीवन में पहली बार देखा था। बम्बई से

कलकत्ते तक की यात्रा और मजाल जो पट्ठा एक बार भी रो दे !

देखने में ऐसा गुलगुथना जैसे मोम का डला हो। उसी डिब्बे में लड़कियों की एक हॉकी टीम बम्बई से कलकत्ता जा रही थी। लम्बे-लम्बे मर्दाने चेहरेवाली सब लड़कियाँ वैसी ही रूखी-सूखी थीं जैसी प्रायः हॉकी खेलनेवाली लड़कियाँ हुआ करती हैं। उन अश्वमुखियों का दल अपने कोच और मोटी मैनेजर सहित कली की गोद के शिशु के पीछे जैसे दीवाना हो गया था।

"यह आपका बच्चा है ? सच, कौन विश्वास करेगा," उनके लम्बू कोच ने कहा था।

"क्यों ?" कली ने सहमकर पूछा था। कहीं सी. आई. डी. ने तो नहीं सूँघ लिया।

"नहीं जी, माफ़ कीजिएगा, आप तो खुद ही बच्चा लगती हैं," और अपनी बत्तीसी दिखाकर वह ही-ही कर हँसने लगा था।

टीम की हर लड़की ने उसे बारी-बारी से गोदी में लिया, हॉकी स्टिक-सी ही बन गयीं, कड़ी ठूँठ-सी बाँहों में उछाला, गुदगुदाया, चूमा-चाटा, पर एक सौ-त्रीस विदेशी घड़ियों का लंगोट बाँधे वह नन्हा पहलवान, कैलेण्डर के बच्चेवाली हँसी से सबका मन मोहता रहा। लौरीन आण्टी का यही अन्तिम काम किया था कली ने। उसी रात को आण्टी ने उसकी कलाई चूमकर उसे वह घड़ी पहना दी थी।

"सोने में मढ़कर रखने लायक़ हैं ये दक्ष कलाइयाँ, और यह चेहरा ! यही तुम्हारा सबसे बड़ा अस्त्र है कली।"

"क्यों आण्टी ?" अनजान बनकर कली ने पूछा था।

"क्यों ? इसलिए मेरी बच्ची, कि किसी का खून भी कर लोगी, तब भी अदालत तुम्हें छोड़ देगी—ऐसा निर्दोष चेहरा, ऐसी निष्पाप आँखें और देशी उस्तरे की धार-सी तेज़ अँगुलियाँ।"

कली ने गर्व से दर्पण को चुनौती दी। हाथ में बटुआ और कन्धे पर एयर बैग लेकर वह अम्मा के परिवार से मिलने चल दी।

"लो आ गयी कली, अभी-अभी तेरी ही बातें कर रही थी। बड़ी लम्बी उमर है तेरी। ये हैं मेरे बड़े दामाद दामोदर और ये छोटे हैं नवीन, यह जया है, माया तो पता नहीं कब लौटेगी।"

बड़ी नम्रता से झुककर कली ने भरतनाट्यम् की नर्तकी की-सी मुद्रा में नमस्कार किया और अम्मा के पास कुरसी खींचकर बैठ गयी।

"मैं अभी-अभी इन से यही कह रही थी कि इन तीन महीनों में कली मुश्किल से डेढ़ महीना मेरे पास रही होगी। फिर भी मुझे ऐसा लगता है जैसे बरसों से मेरे

साथ रही हो", अम्मा, पान का बीड़ा मुँह में गुलगुलाती बड़े अपनत्व से कली की पीठ थपथपाती कहने लगीं, "और इस भगोड़ी का यह हाल है कि जब देखो तब हवाई बैग कन्धे पर लटकाये चिरैया-सी उड़ने को तैयार ! लगता है, आज फिर उड़ने जा रही हो, क्यों बेटी ?"

"नहीं अम्मा," कली हँसी। अपनी एक ही हँसी के घातक प्रहार से उसने अम्मा के दोनों ठसकेदार दामादों को ढेर कर दिया है, यह समझने में उसे देर न लगी।

उसने आश्वस्त होकर अब, अपना दूसरा प्राणघातक अस्त्र छोड़ा, विलम्बित स्मित के दर्पण में वह जान-बूझकर दोनों आकर्षक गालों के गढ़ों की चमक से दोनों पुरुषों की आँखों को चौंधियाने लगी।

"इस बार उड़ नहीं रही हूँ अम्मा, ट्रेन से ही जाना है।"

"कब लौटेगी ?"

"पता नहीं अम्मा, मेरी इस बेतुकी नौकरी में तो हमेशा जाना अपने पैरों का होता है और लौटना पराये पैरों का !"

अम्मा के बड़े दामाद दामोदर प्रसाद कली को आँखों ही आँखों में पिये जा रहे हैं। यह शायद उनकी तुनकमिजाज़ पत्नी ने देख लिया था।

"क्यों जी, आज नहाना-धोना नहीं है क्या, अम्मा भला कबतक तुम्हारा खाना लिये बैठी रहेंगी ?"

जया का रूखा कण्ठ-स्वर सुनते ही कली ने पल-भर में भाँप लिया कि उसकी अनुपस्थिति में मातृगृह में अचानक टपक पड़ी सुन्दरी कली को देखकर वह निश्चय ही प्रसन्न नहीं हुई है।

"अभी तो दस ही बजे हैं दीदी," छोटे दामाद ने हमज़ुल्फ़ की पैरवी की, "ससुराल आये हैं हम लोग, यहाँ ऐश-आराम नहीं करेंगे तब भला कहाँ करेंगे ?" फिर वह कली की ओर देखकर हँसने लगा। उसके परिहास से चिड़चिड़ी जया और भी सुलग उठी।

"जी हाँ, माया नहीं है ना, इसी से चहक रहे हैं। वह होती है तो बोल नहीं फूटता इन का।"

दामोदर प्रसाद की क्षुधातुर दृष्टि अबतक कली का अर्धांग लील चुकी थी। अब वह बड़े मनोयोग से उस मन्दोदरी की क्षीण कटि को अपनी आँखों के इंचीटेप से नाप रहा था। पर वह क्या पहला ही पुरुष था जिसकी आँखें कली की इस सुडौल कटि पर नग-सी जड़ गयी थीं ?

"लगता है हमारी विदेशी उक्ति तुम्हारी ही इस मुट्ठी-भर की कमर के लिए लिखी गयी है मिस मजूमदार—फ्रेंच परफ़्यूम की बोतल को गाल से सटाकर वह विज्ञापन बनी चित्र खिंचवा रही थी कि विदेशी फ़ोटोग्राफ़र उसके कानों के पास आकर

फुसफुसा गया था—जानती हैं कौन-सी विदेशी उक्ति ? 'यू शुड आलवेज़ होल्ड ए बॉटेल बाई नेक ऐण्ड ए वूमन बाई हर वेस्ट।"

आज दामोदर प्रसाद को उसी उक्ति की मूक पुनरावृत्ति करते देख कली मन ही मन हँसने लगी। एक टीनएजर पुत्री का पिता है यह व्यक्ति, कौन कहेगा ?

और जो हो अम्मा ने दामाद ख़ूब कस-कसकर छाँटे थे। रंग साफ़ न होने पर भी दामोदर प्रसाद के शरीर और चेहरे की बनावट में कुछ राजपूती झलक थी। पर गम्भीर चेहरे से मिलान करने पर चंचल दृष्टि एकदम ही अनमेल लगती थी। लगता था स्वभाव से यह व्यक्ति ऐसा नहीं था जैसा वह बनने की चेष्टा करता रहता था। एक अनुसन्धानी दृष्टि का फ़ोकस ही उस कच्चे धागे से बँधे मुखौटे को बड़ी सुगमता से उतार सकता था। बड़े यत्न और नियमित अभ्यास से ओढ़ी-पहनी गयी गम्भीरता, सामान्य-सी ही उत्तेजना से प्लास्टिक के फिसलते आवरण-सी ही फिसल जाती, कली को देखकर वह स्वयं ही मुखौटा उतारकर उसे घूरे जा रहा था। एक तो अरसे से उसकी नियुक्ति सभ्यता से पिछड़े एकदम जंगली इलाक़ों में होती चली आयी थी। उत्तराखण्ड के सीमावर्ती इलाक़े में मोटे नाक और चुँधियाती आँखोंवाली भोटिया स्त्रियों को देखते-देखते उसकी आँखें दुखने लगी थीं। वह एक ही साल वहाँ रहकर बुरी तरह उकताने लगा था। इसी से कलकत्ता आने पर उसे यामिनी राय की चित्रांकित आँखों-वाली साँवली-सलोनी सामान्य-से चेहरे की बंगाली लड़कियाँ अप्सरा-सी लगतीं। उस पर कली क्या साधारण सौन्दर्य की श्रेणी में आती थी !

अम्मा का छोटा दामाद नवीन भी दो पुत्रों का पिता था, फिर भी चाहने पर अभी भी सेहरा बाँधकर दूल्हा बन सकता था। उसका चेहरा लाखों की भीड़ में देख-कर भी, कली पहचान लेती कि वह नैनीताल या अल्मोड़े का है। एकदम साफ़-चिट्टा रंग, लड़कियों की-सी बड़ी रसीली गहरी लिपस्टिक लगाया हो।

"ए अम्मा, इस तुम्हारे कलकत्ते में साले मच्छर बहुत हैं, सारी रात सो नहीं पाया," उसने पहली बार मुँह खोला और अपनी गोरी-गोरी बाँह खुजलाने लगा।

"पता नहीं तुम्हें कैसे मच्छर लगते हैं नवीन," जया चिढ़े स्वर में कहने लगी, "हम भी तुम्हारे ही बग़ल के कमरे में हैं, कहीं भी एक मच्छर ढूँढ़े से नहीं मिलता।"

उसके स्वर को सुनकर कली को लगा कि वह आज शायद उसी की उपस्थिति से चिढ़कर हवा से लड़ने को तैयार है।

कली ने पहली बार उसे ठीक से देखा। रंग उज्ज्वल होने पर भी आवश्यकता से अधिक लम्बी नाक ने पूरे चेहरे की रंगत बिगाड़ दी थी। ग़ौर से देखने पर गले में सामान्य रूप से उभरा वह गलग्रह भी स्पष्ट दीखने लगता, जिसे जया ने मंगल-सूत्र की तिहरी लड़ से छिपाने का प्रयत्न किया था। फिर भी कली ने अपनी तीखी दृष्टि उस पर गड़ाकर रख दी।

"अरे," वह अनजान-सी बनकर कहने लगी, "यह गले में क्या हो गया है ? क्या किसी ज़हरीले कीड़े ने काट दिया है ?"

अब तक गर्व से तनी बैठी जया प्रश्न के साथ ही छुई-मुई बन सकुचा गयी। कुछ उत्तर न देकर उसने सकुचाकर गर्दन झुका ली।

अम्मा ने अस्वाभाविक चुप्पी भंग की, "न जाने कहाँ से यह गलग्रह इस साल इसके पीछे लग गया है। असल में जहाँ दामोदर की नौकरी है, वहाँ के पानी में, सुना है, आयोडीन की भारी कमी है। इसी का इलाज कराने तो यहाँ आयी है !"

"ओह," कली के स्वर में बनावटी सहानुभूति की खनक जया से छिपी नहीं रही। यहाँ यह अकड़ू छोकरी नहीं आयी होती, तो क्या उसके गलग्रह का बुलेटिन अम्मा जिस-किसी को देती फिरतीं !

"मैं चलूँ अम्मा," हँसती हुई कली उठी तो गृह के दोनों दामादों की मुग्ध दो जोड़ा आँखें उसकी मुट्ठी में बन्द थीं।

"लगता है, मुझे लेने दफ़्तर की स्टाफ़ कार भी आ गयी है।"

गाड़ी का शब्द निकट आता, गृह की बरसाती में पहुँचकर थमक गया।

कली उठकर बाहर आयी तो दफ़्तर की गाड़ी कहीं नहीं थी। लगता था पड़ोस के जस्टिस मुकर्जी की कार का ही शब्द था। प्रायः ही ऐसा होता कि वह उसी गाड़ी के धोखे में तैयार होकर बाहर निकल आती। लगता उन्हीं की बरसाती में कार रुकी है।

'क्यों न पिछवाड़े के मार्ग से घूमकर, बँगले की गैलरी में दीवार से कान सटा थोड़ी देर अम्मा की गलग्रहधारिणी दम्भी पुत्री और ठसकेदार जामाताद्वय पर उसकी उपस्थिति से हुई प्रतिक्रिया का आनन्द लिया जाये ?' वह मन-ही-मन अपनी योजना पर प्रसन्न हो उठी। ऐसा हो ही नहीं सकता कि वहाँ उसके विवादास्पद व्यक्तित्व को लेकर गरमागरम बहस न चल रही हो। निश्चय ही अकड़ू पुत्री अम्मा को कृष्णकली को गृह में शरण देने के लिए कोस रही होगी।

वैसे भी कली को बचपन से ही दीवार से कान सटा, गोपनीय बातें सुनकर रस लेने की बुरी आदत पड़ गयी थी। एक प्रकार से वाणी सेन ही उसकी इस कुटेव के लिए उत्तरदायी थीं।

"ज़रा कान लगाकर सुनना तो कालोचाँद, तेरी हरामखोर आया किस मूँडी-कटे से बातें कर रही है," उसने कली के नन्हें कानों को बचपन से ही दक्ष बना दिया था।

स्कूल जानेपर वह नन्स की डॉरमेटरी की दीवारों से सटकर लुक-छिप उनकी बातें सुनती रहती—कौन मदर उसके लिए कैसा विष वमन कर रही है। किस लड़की

को आज स्कूल के कठोर नियम भंग करने की सज़ा मिलनेवाली है, सब कुछ उसे पहले ही पता हो जाता।

हाथ का बैग लिये कली पर्शियन बिल्ली के से मखमली क़दम रखती कॉरीडोर में छिपकर खड़ी हो गयी। उसी से लगी अम्मा के कमरे की दीवार भेद कर, जया का उच्च उत्तेजित स्वर कली के कान के पूरे पर्दे फाड़ने लगा।

"तुम भी अम्मा निरी मिट्टी का लोंदा ही रह गयी," वह कह रही थी। "पहले उस खबीस चोट्टे स्वामी को कहीं से पकड़ लायी, जब तुम्हारी बहू को लेकर भाग गया तब तुम्हें कहीं होश आया। अब न जाने कहाँ से इस छोकरी को पकड़ लायी हो! किराया-विराया भी देती है, या फिर मुफ़्त का ही सदाव्रत खोल बैठी हो?"

अम्मा ने धीमे स्वर में क्या कहा कली सुन न पायी।

"हूँ! मैं तो पहले ही समझ गयी थी कि ऐसी चालाक लड़की क्या ख़ाक किराया देगी? पर अम्मा तुम्हें क्या हो गया है, सच। ऐसी सुन्दर कुआँरी लड़की को तुमने तीन ही दिन की जान-पहचान में न्यौतकर घर में बसा लिया। क्या बाबूजी से पूछ लिया था?"

अम्मा का स्वर अब झुँझला उठा, "जया, वह बेचारी लड़की यहाँ रहती ही कितने दिन है? खाना बाहर खाती है, और अकसर दौरे पर। आज लखनऊ तो कल दिल्ली-बम्बई। मुझे तरस आ गया, एक तो पहाड़ी-सी ही।"

"अच्छा अम्मा, मजूमदार भला पहाड़ी कब से होने लगे," जया की हँसी ने शायद छोटे दामाद को उकसा दिया।

"ठीक कह रही हैं अम्मा, चेहरा सेण्ट-परसेण्ट पहाड़ी लगता है, है ना दामोदर दा?"

"अरे, ऐसी मीठी पहाड़ी बोलती है नवीन," अम्मा छोटे दामाद की शह पाकर बड़े उत्साह से कहने लगी, "कह रही थीं उनके पड़ोस में कोई जोशी की तीन लड़कियाँ थीं, उन्हीं से सीखी। अब हम-तुम पहाड़ियों से तो वह बंगाली ही भली। हमें तो पहाड़ी एकदम ही नहीं आती। बेला सेन को तो तुम जानती ही हो जया, अपने सगे भाई को भी पेइंग गेस्ट बनाकर रखती थी। वह भला कली को छोड़ती! एक छोटे-से कमरे के एक सौ बीस दे रही थी। उसपर दिन-रात की तिकतिक। इसनें तो मुझे कुछ भी नहीं बतलाया, वह तो उसी की महरी उन दिनों हमारे भी बर्तन मलती थी, उसी ने कहा, तो मैं ही इसे ज़बरदस्ती यहाँ ले आयी। और फिर बेटी, तुम और माया अभी चार दिन रहकर ससुराल चली जाओगी, कली यहाँ रहेगी, तो मेरा भी घड़ी, दो घड़ी जी बहल जाया करेगा। अभी पिछले महीने मुझे और तेरे बाबूजी को एक साथ ऐसा फ्लू हो गया कि पलँग पर बेहोश पड़े रहे। यही परायी लड़की दुर्दिन में अपनी हो गयी। ऐसी सेवा की इसने बेटा दामोदर कि क्या अपनी सगी लड़की करती!"

"हाँ, हाँ, तुम्हारी सगी लड़कियाँ जैसे कुछ काम ही नहीं करतीं," जया माँ को शायद चिढ़ाने पर तुली थी।

"बस करो यार," दामोदर की भारी आवाज़ ने झुँझलाकर जया को डपट दिया, "अम्मा का घर है, जिसे चाहे रखे, तुम्हारा यहाँ अब क्या हक़ है ?"

"हाँ, जी, हाँ," जया तुनककर बोली, "कैसे हक़ नहीं है सुनूँ भला ! नये क़ानूनों ने हिन्दू-घर की पुत्री को भी पितृगृह में समान अधिकार दिये हैं, फिर देख लेना बड़े दा काबुल से आते ही इसे लाठी लेकर खदेड़ आयेंगे।"

कली चुपचाप बाहर निकल आयी।

स्पष्ट था कि अब घर में उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा। वाय. डब्ल्यू. सी. ए. की वार्डन, लिंडा एण्डरसन को वह रैमनी से जानती थी। अपने उसी रैमनी स्कूल के परिचय-सूत्र को पकड़ वह उससे पहले भी दो-तीन बार मिल आयी थी। वहाँ एक कमरा मिलने में उसे परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, यह वह जानती थी। पर चतुरा लिंडा शायद मिशनरियों की मुँहलगी एजेण्ट भी थी। जब भी कली उससे मिलने जाती, वह अपना कौशल से तैयार किया मुट्ठी-भर चुगा बिखेर देती। जया की कटूक्ति सुन, वह सीधी लिंडा के पास ही चली गयी।

"बहुत पहले तुम से मैंने एक कमरे के लिए कहा था लिंडा, क्या अब भी मुझे वह कमरा दे सकोगी ?" कुछ खिसियाकर ही कली ने पूछा। पहली बार बड़ी उदारता से दिये गये कमरे को उसने स्वयं ही ठुकरा दिया था।

"दे क्यों नहीं सकती डार्लिंग," उसने हँसकर कहा, "पर मेरी बात पर विचार क्यों नहीं करती ? क्रिश्चियन बन जाओ और एक साथ तुम्हें कई सुविधाएँ उपलब्ध हो जायेंगी। हर साल हमारा मिशन कई प्रतिभाशाली छात्राओं को 'इण्टर नेशनल लिविंग स्कीम' में बाहर भेजता है। तुममें जन्मजात प्रतिभा है, चाहो तो फ़्रान्स के अच्छे फ़ैशन स्कूल में शिक्षा पा सकती हो। रहना, खाना-पीना सब किसी विदेशी परिवार के साथ और भाग्य अच्छा रहा तो 'यू कैन आलवेज़ हुक समवन' !"

ठीक ही कह रही थी लिंडा। न उसे पिता का पता था, न माँ के कुलगोत्र का। क्या कोई भी निष्ठावान् हिन्दू-परिवार उसे कभी घर की बहू बनाने को तैयार होगा ?

माता-पिता दोनों कुष्ठ रोगी, पली चकले में और वेश्या का स्तनपान किया ! वाह क्या बढ़िया 'क्रिडेंशियल्स' थे ! कली को भी कभी-कभी हँसी आती और कभी चित्त में उमड़ते तीव्र विद्रोह की तरंगें उसे उद्वेलित कर देतीं। जिस परिवार में तीन ही महीने रहकर वह अपने को बहुत अंशों में उसकी मर्यादा के अनुकूल बना चुकी थी, उसी का ज्येष्ठ पुत्र अब उसे लाठी लेकर खदेड़ने चला आ रहा था ! वह गृह क्या अब उसके लिए निरापद स्थान रह गया था ?

संसार का कोई भी पुरुष उसे लाठी लेकर नहीं खदेड़ सकता, इतना वह जानती

थी। अम्मा के दोनों दामादों को जब उसने अपनी सामान्य-सी सज्जा से ही चारों खाने चित्त कर दिया तो वह काबुलीवाला आखिर किस खेत की मूली था! वैसे वह अम्मा से उनके पुत्र के विषय में बहुत कुछ सुन चुकी थी। वही पुत्र अब अम्मा का दुखता घाव था। रूप में और स्वभाव में, दोनों में अपने अन्य भाई बहनों से भिन्न।

'खाँटी बाँगाली छेले जन्मे छे तोमार माँ,' उसके पृथ्वी पर आते ही बंगाली दाई ने कहा था। सचमुच ही निखालिस बंगाली लड़का ही जन्मा था और वैसा ही चपटा सिर, घने काले बाल और ऐसा साँवला रंग कि बचपन में तो एकदम कहार लगै था लल्ला, अम्मा कहती।

नौ

अम्मा का वह ज्येष्ठ पुत्र महाक्रोधी और ज़िद्दी स्वभाव का होगा, यह कली उनकी बातों से ही समझ गयी थी। बहनों से प्रायः ही इस भाई की भिड़न्त होती रहती। छोटी माया किसी नाट्य संघ की सदस्या थी। भाई को यह सब एकदम नापसन्द था। उसने बहन का वहाँ जाना एक ही धमकी में बन्द कर दिया। बस, फिर भाई-बहन में तीन साल तक बोलचाल बन्द रही। पढ़ने में तेज़ तो बचपन ही से था, एकदम ऊँची नौकरी की परीक्षा पास कर ली। एक से एक अच्छे समृद्ध परिवारों से रिश्ते भी आने लगे, पर उसकी ऊँची पसन्द के चौखट में किसी विवाहकांक्षिणी सुन्दरी कन्या का चित्र ठीक नहीं बैठता था। अम्मा और बहनें बहुत पीछे पड़तीं, तो हँसकर बस यही कह देता, 'अम्मा, हमारे लायक़ लड़की अभी भगवान् सिरज नहीं पाये।' हारकर अम्मा चुप रह जाती। एक बार जया ने ही कहा, 'क्या पता अम्मा, कोई अपनी ही नौकरी की लड़की पसन्द कर ली हो। हमारे अल्मोड़ा के दक्षिणी कलक्टर हैं, उनकी भी बीवी उन्हीं के साथ की पढ़ी आइ. ए. एस. है। नैनीतालवाले की भी पत्नी सुना उन्हीं के साथ की पढ़ी कोई लड़की है। पूछती क्यों नहीं, शायद बड़े दद्दा ने भी कोई छाँट-छूँट-कर धर ली हो।'

जब चार-पाँच साल प्रवीर को मना-मनाकर अम्मा हार गयी तब उन्होंने एक दिन हथियार डाल दिये। "प्रवीर बेटा, अपने समाज की न सही, क्या किसी और समाज की लड़की तुझे पसन्द है? अगर ऐसा है, तब भी हमें अब कोई आपत्ति नहीं है। तेरे मामू का लड़का ही तो पिछले साल मेम ले आया है। चल, वंश तो चलेगा।" पर प्रवीर ने अम्मा के इस उदार प्रस्ताव के उत्तर में भी केवल हँस-भर दिया था।

"कहा था ना मैंने," अम्मा ने बड़े गर्व से जया से कहा था, "मेरा लल्ला, मेरा

संस्कारी बेटा है। जब देश-विदेश घूमकर भी उसका जनेऊ उसके साथ रहा, तो क्या वह अपनी देहरी में लौटकर उसे तोड़ देगा ?"

दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार एक साथ हुआ था, पर जहाँ छोटे पुत्र ने तीसरे ही दिन जनेऊ उतारकर खूँटी पर टाँग दिया था, वहाँ बड़े पुत्र का नियमित सन्ध्या-पूजन एक दिन को भी नहीं छूटा था। अँगरेज़ी साहित्य में एम. ए. करने पर भी वह संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था। प्रपितामह की बृहत् संस्कृत की लाइब्रेरी को कुछ दीमकों ने चाट लिया था। जो कुछ भी बचा था, उसे वह चाट गया था। जब वर्षों तक भी विनती-चिरौरी करने पर वह विवाह के लिए राज़ी नहीं हुआ, तो हारकर उसके छोटे भाई का विवाह उसी रूपवती कन्या से कर दिया गया, जिसका रिश्ता कभी गृह के ज्येष्ठ पुत्र के लिए आया था।

"जिन-जिन लड़कियों की कभी इस निगोड़े से बात चली थी, सबके बच्चे होकर स्कूलों में पढ़ने लगे, और यह अभी भी लँडूरा ही बना फिर रहा है। पैंतीस बरस का हो जायेगा, अब क्या आशा करूँ इसकी," एक लम्बी साँस खींचकर अम्मा आँसू पोंछ लेती।

छोटी बहू भी चली गयी थी। उस पर विपत्ति भी तो कनखजूरे की भाँति सैकड़ों पैरों से चलकर आती है। सुवीर की मृत्यु के आघात को अभी वृद्ध दम्पति भूले भी नहीं थे कि घर की बहू भाग गयी। लाख छिपाने पर भी उसकी कलंक-कथा क्या छिप सकती थी ? लोग इधर खोद-खोदकर भगोड़ी बहू की ही कुशल पूछने लगे थे। पढ़ाई छोड़-छाड़कर एकदम मायके क्यों चली गयी ? स्वामीजी कब लौट रहे हैं ? आजकल तो बद्रीनाथ के पट बन्द रहते हैं, कैसी यात्रा पर गये हैं, आदि-आदि। रेवती शरण तिवारी अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। कब उनके मुँह से कटु सत्य निकल पड़े, इसी भय से प्रवीर की माँ उनके साथ छाया-सी लगी रहती।

इधर बड़ी पुत्री जया के गलग्रह के साथ-साथ उस पर भी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। एक तो गले पर उपजा गलग्रह पल-पल, गैस के गुब्बारे-सा बढ़ता जा रहा था, उस पर लज्जा, क्षोभ एवं चिन्ता ने उसे घुलाकर रख दिया था। गलग्रह के साथ-साथ वह अपने दूसरे गलग्रह को लेकर एक अनिश्चित काल के लिए मायके में रहने को आ गयी है, यह उसकी छोटी बहन माया को छोड़ और किसी को पता नहीं था। दामोदर प्रसाद भी किसी अंश में उसके गलग्रह से कुछ कम नहीं था। माता-पिता ने कुछ स्नेही आत्मीय स्वजनों के कहने पर ही दुलारी बड़ी पुत्री को इतनी दूर, एक ऐसे अनजान व्यक्ति की चादर से बाँधकर भेज दिया था। तब क्या जानते थे कि लम्बे-चौड़े डीलडौल और आकर्षक चेहरे के स्वामी इस युवक की क़लई उतर जाने पर वह मुरादाबादी लोटा-सा ही श्रीहीन लगने लगेगा।

दामोदर प्रसाद के पिता दारोगा थे और मामा कोतवाल। माता और पिता के वंश ने, पुलिस विभाग की कुटिलता का पाठ बड़े यत्न से पढ़ा था। पिता और मामा के ओहदे से बहुत बड़ा ओहदा पाने पर दामोदर ने अपनी कुटिलता में आवश्यकतानुसार ढील देकर उसे बरगद की जड़ों की भाँति ही दूर-दूर तक फैला लिया था। शुद्ध घृत, कार्तिकी पहाड़ी मधु और भेड़ के कच्चे गोश्त को छोड़कर उसके शुष्क इलाक़े में कुछ नहीं मिलता था। पर फ़ौजियों की एक बहुत बड़ी टुकड़ी उधर, धारचूला के आसपास आकर बिखर गयी थी। सामान्य-सी चेष्टा करने पर ही उसने अपने बँगले में एक छोटा-मोटा सेलर बना लिया था। रिश्वत लेने में उसने अब अपने पेशे की दक्षता प्राप्त कर ली थी। जया जब कभी मायके जाती, वह एक साथ कई नयी नियुक्तियाँ कर लेता। बरतन मलनेवाली, महाराजिन, जमादारनी सब बँगले में पटरानियों-सी स्वेच्छाचारिणी बनी घूमती रहतीं। दुराचारी गृहस्वामी की आड़ में हरामखोर नौकर-चाकर भी मन-माना शिकार खेलने लगे। वैसे तो उन पहाड़ी इलाक़ों में नियुक्ति होनेपर हर सरकारी अफ़सर श्रवणकुमार बना, अपने माता-पिता को सरकारी जीप में बद्रीनाथ-केदारनाथ की यात्रा करा ही लेता था, पर दामोदर प्रसाद की जीप इधर पेशेवर ट्रिप भी लगाने लगी थी। तीर्थयात्रियों के ऐसे ही एक जीपयात्री ने, जासूस बनकर अचानक दामोदर प्रसाद का पटरा बिठा दिया। उस बूढ़े यात्री का पुत्र एक राजनीतिक विरोधी दल का सदस्य था और शायद जान-बूझकर ही चतुर पुत्र ने पिता को इस यात्रा के लिए भेजा था। पिता पुत्र की सूझ-बूझ देखकर प्रसन्न हो गये। हाजी भी बन गये और चोर भी पकड़ लिया। हींग लगी न फिटकरी रंग चोखा। उसपर एक बात और भी थी। उसी दामोदर प्रसाद के घमण्डी साले ने एक बार उनकी पुत्री का रिश्ता फेर दिया था। प्रतिशोध क्या छुरा मारकर ही लिया जाता है ? पर इस अदृश्य 'गुप्ती' का वार दामोदर प्रसाद के लिए सचमुच ही घातक बनकर रह गया।

उन दिनों देश के मन्त्री ताश के बावन पत्तों की भाँति फेंटे जा रहे थे। पुराने घाघ मन्त्रियों ने तो दुनिया देखी थी—प्रत्येक विभाग में उनका एक न एक घिसा-मँजा 'खड़पेंच' मूँछों पर गर्व से ताव देता, अखाड़े की देखभाल करता। हर अखाड़े की फ़िज़ा बेईमानी, चुग़लखोरी और मिथ्या भाषण से बोझिल रहती। जो मुट्ठी-भर अफ़सर ईमानदार बने रहने का प्रयत्न करते, उन पर दिन-रात कीचड़ उछाला जाता और उनके इहलौकिक सरकारी चित्रगुप्ती लेखे-जोखे में ऐसे-ऐसे अमिट स्वर्णाक्षरों की पंक्तियाँ लिख दी जातीं कि उनका पूर्वकृत उजला चिट्ठा धुलकर स्लेट पर लिखे अक्षरों-सा ही धुँधला बनकर रह जाता। यदि उन्होंने फिर भी सत्य एवं सदाचरण का दुस्तर पथ नहीं त्यागा, तो उन्हें विभाग के यमदूत प्रान्त के मनचाहे कुम्भीपाक में सड़ने डाल सकते थे—गोरखपुर, गोण्डा या बलिया। प्रजातन्त्र की व्याख्या यदि कहीं साकार हो पायी तो इन्हीं सरकारी विभागों में। द्वार पर चपरासी ऊँघता रहता, कुरसी पर अफ़सर !

दामोदर प्रसाद की उन दिनों और बन आयी थी। कुछ ही दिन पूर्व वह अपने

अफ़सर के माता-पिता, सास-ससुर, सबको बद्रीनाथ-केदारनाथ घुमा ही नहीं लाया, उनके साथ प्रचुर मात्रा में शुद्ध घृत, शहद और आठ ऐसे मोटे-मोटे पहाड़ी थुल्मे पहुँचा आया था, जिन्हें ओढ़कर साहब का पूरा परिवार कम से कम अट्ठाईस जाड़े काट सकता था। साहब उससे बहुत ही प्रसन्न होकर गये थे। एकान्त में उसे बुलाकर उन्होंने आश्वासन भी दिया था, "अब तुम्हें इसी साल कहीं का बड़ा चार्ज देकर भेज देंगे। हमारी सास तुमसे बहुत खुश हैं।"

दामोदर मूँछों ही मूँछों में मुसकराकर कृतज्ञता से दोहरा हो गया था। वह चतुर अफ़सर जानता था कि प्रभु को प्रसन्न करने से पहले अब उनकी सास को प्रसन्न करना अधिक फलदायी है। उसकी पिछली पदोन्नति के लिए भी, उसे डी. आई. जी. की सास ने ही आशीर्वाद दिया था। जब कहीं बासमती का एक दाना भी ढूँढ़े नहीं मिल रहा था, तब हनुमान् की ही भाँति उड़ता पूरा पर्वत ही हथेली पर धर लाया था। बुढ़िया के चरणों में उसने चार मन ऐसी बासमती एक साथ उँड़ेलकर रख दी कि जिसका एक-एक दाना शमातुलम्बर की-सी सुगन्ध से साहब की पूरी कोठी सुवासित कर देता।

पर इस बार, दामोदर प्रसाद का भाग्य टेढ़ा होकर रह गया।

इधर नया मन्त्रिमण्डल सजग, सचेत बना हाथों में हथकड़ियाँ छिपाये घूमने लगा था। हर मन्त्री, हारूँ उल रशीद बना रात-आधी रात दायें-बायें चोर पकड़ रहा था। बेईमानी, चोरबाज़ारी, घूसखोरी का आमूल विध्वंस करने के उत्साह में कई बिना तिनकों की दाढ़ियाँ भी नुच गयी थीं। फिर दामोदर की दाढ़ी का तिनका तो कोई अन्धा भी बीन लेता। जबतक वह सँभलता, उसे एक उपमन्त्री ने ही लँगड़ी देकर चारों खाने चित्त कर दिया। उसके कलंक की कथा इतनी लम्बी थी कि विजिलेंस ने एक छोटे-मोटे रोचक उपन्यास की ही सृष्टि कर दी थी। सस्पेण्ड होने पर वह उस ज़िले में रहता ही कैसे? जहाँ का वह अभी कल तक एकछत्र सम्राट् था, जहाँ के प्रत्येक दारोगा की ऐंठी मूँछें उसकी तर्जनी के इशारे पर उठती-गिरती थीं, वहाँ अब क्या वह नंगा होकर खड़ा रह सकता था?

उसी रात को वह रूठी पत्नी को लेकर कलकत्ता आ गया था। जितनी बार अम्मा बड़ी पुत्री का उतरा चेहरा देखतीं उनकी आँखें भर आतीं। छोटी पुत्री माया, उन्हें अपने जीजा की दुष्कीर्ति का पूरा चिट्ठा एक दिन एकान्त में सुना गयी थी।

"मैं तो मारे शरम के मर गयी अम्मा," वह रुआँसे स्वर में कहने लगी थी, "जीजाजी की एक विधवा महाराजिन ने भी तो इन पर नालिश की है। कहती है इन्हें उसके पुत्र की पढ़ाई देनी होगी, वह उन्हीं का पुत्र है। एक और कोई भोटिया घिनौनी-सी औरत मेरे पास आयी थी, दीदी का पता पूछने। कहने लगी, उसके मायके के पते पर चिट्ठी लिखकर सब कुछ कहेगी। साहब ने तो उसे कहीं का नहीं रखा। स्कूल में अध्यापिका थी, सातवाँ महीना है। अब नौकरी भी गयी, नाम भी और स्वयं

साहब भी ! छिः छिः मुझे तो अब जीजाजी से बात करने में भी घिन आती है। तुम ने इस दानव को यहाँ कैसे रख लिया, अम्मा ?"

पर क्या उसे अम्मा बाहर निकाल सकती थीं ? कितने आयोजन-उत्सव, बाजे-शहनाई के बीच कभी जिस के पैर पूजकर कन्यादान किया था, उसे क्या अब घर छोड़कर निकल जाने को कह सकती थीं ? कैसा सुदर्शन सौम्य चेहरा था और कैसा कलुषित आचरण !

पिछले दस वर्षों में इस परिवार में कितना कुछ बदल गया था। यह घर, जो कभी जया-माया के क़हक़हों से गूँजता था, जहाँ सुवीर का छत फोड़नेवाला ठहाका सुनकर अम्मा कभी-कभी पूजा से उठकर डपट देती थीं—"बाप रे बाप, रावण की-सी हँसी क्यों हँसता हैगा रे तू छोटे, पूजा भी नहीं कर सकूँ हूँ मैं"—आज वही गृह कैसा बियावान जंगल-सा भाँय-भाँय करने लगा था। बाबूजी अपने कमरे में ही बन्द दिन-रात पेन्शन के काग़ज़ों में डूबे रहते। दोनों दामाद और दोनों पुत्रियाँ एक साथ बैठते, तो एक अस्वाभाविक चुप्पी सबको घेर लेती। कोई न कोई बहाना बनाकर माया कभी अपनी किसी सहेली से मिलने चली जाती या अकेली ही पिक्चर देखने चल देती।

"अकेली जा रही है, जया को भी लेती जा ना," अम्मा कहती।

"क्या पिक्चर देखेंगी अब दीदी, अभी तो वह यहीं रहेंगी अम्मा, देखती रहेंगी। मैं तो पन्द्रह दिन में चली जाऊँगी।" और मुँहफट माया सचमुच पल्ला झाड़कर चली जाती।

कई बार अम्मा दामोदर प्रसाद से पूछना चाहतीं—क्या सचमुच ही अब उनकी नौकरी छूट गयी है ? क्या कोई केस-वेस चल रहा है ? पर जया प्रायः घर ही पर रहती और उसका सूखा मुँह देखकर अम्मा को फिर कुछ पूछने का साहस नहीं होता। पर इधर जब से छोटी पुत्री ने उन्हें दामोदर प्रसाद के चरित्र के विषय में भद्दी बातें बतायी थीं, वे मन ही मन बेहद घबरा गयी थीं। ऐसे व्यक्ति को जब इसी गृह में रहना था तो वह सब जान-बूझकर अब कली को यहाँ नहीं रख सकती थी।

कली ने अपना दौरा इस बार स्वेच्छा से ही लम्बा कर लिया था। वैसे चाहने पर वह कलकत्ता लौट सकती थी, पर विवियन अब इलाहाबाद में अपने मौसी के पास रहकर युनिवर्सिटी में पढ़ने लगी थी। उसी ने उसे कई बार इलाहाबाद आने के लिए लिखा था; "कब से तुम्हें नहीं देखा है, यहाँ खूब घूमने-फिरने की जगह है, नैनी में अंकल डेविड भी बड़ी अच्छी नौकरी पा गये हैं। जब आइसक्रीम खाने का जी होता है वहीं चल देती हूँ, और हर ठण्डे गप्पे के साथ तुम्हारी याद को घुटकती हूँ। मुझे अभी भी याद है, नैनीताल के उस सड़े-से होटल की सड़ी आइसक्रीम पर ही तुम मरी-मिटी जाती थी। नैनी का आइसक्रीम खाकर फिर तुम यहाँ से जाना नहीं चाहोगी। एक बार चली आओ कली, फ़ॉर ओल्ड टाइम्स सेक" और कली आठ दिन की लम्बी छुट्टी लेकर सीधी इलाहाबाद चल दी।

कली पहली बार इलाहाबाद आयी थी। कलकत्ता, दिल्ली और बम्बई के बाद उसे यह शहर अजीब सूखा, बंजर गाँव-सा लगा।

विवियन अपने कज़िन के साथ स्टेशन पर खड़ी थी। कली को देखते ही वह उससे लिपट गयी, "आइ से, यू आर मच मच...." वह जैसे कली का बना-सँवरा आपाद मस्तक बदला सौन्दर्य देखकर गूँगी बन गयी थी। 'मच-मच' के बाद कोई विशेषण उसे मिल ही नहीं रहे थे।

"कौन कहेगा यह कली मजूमदार है! तू तो बड़ी ही ठाठदार बन गयी है कली! बाप रे बाप, कौन-सा सेण्ट है री? रैनलौन? शैनेल? आइ मस्ट से यू आर मच मच...." वह फिर मचमचाने लगी और कली ने उसे हाथ पकड़ कर झकझोर दिया।

"विवियन, मारे भूख के आँतें निकल रही हैं, क्या इस इलाहाबाद आनेवाली लाइन पर लोग एकादशी करते चलते हैं? कहीं एक खोमचे वाला तो दीखता...."

"अरे वाह, क्या हरनामगंज के छोले भी नहीं मिले तुझे? हम तो अकसर हरनामगंज के स्टेशन तक जा, छोले खाकर लौट आते हैं," विवियन काल्पनिक चटखारे लेकर कहने लगी, "क्या बढ़िया बनाता है, हैं ना रौबर्ट? ओह, इसे तो मिलाया ही नहीं। इससे मिलो, मेरा कज़िन बॉबी और मेरी परमप्रिय सुन्दरी सखी कृष्णकली मजूमदार।"

साँवला, दुबला-पतला युवक बालों के फुग्गे को यत्न से नचाता हाथ मिलाने बढ़ आया। उसकी लम्बी अँगुली पर पड़ी सिग्नेट रिंग को बार-बार उसकी आँखों के नीचे घुमाया जा रहा है यह कली ने देख लिया। बॉबी की तंग पैंट शरीर से सिली लग रही थी। उस में कसी पतली, किसी बैले डान्सर की-सी टाँगों को नचाता वह अपनी अठारहवीं शताब्दी की मोटर गाड़ी का द्वार खोलने लपका और ऐसी अदा से द्वार खोलकर अटेन्शन में खड़ा हो गया जैसे किसी लिमोसीन का द्वार खोले खड़ा हो।

"इस बार बॉबी की इस गाड़ी को इनाम मिला है कली," विवियन ने आँख मारकर कली की बाँह में चिमटी काटी।

"पहला इनाम," बॉबी ने बड़े गम्भीर स्वर में विवियन को टोक दिया।

"अच्छा!" कली ने अपनी सुन्दर आँखों की रेशमी पलकें झपका कर कहा।

"मोस्ट वेल केप्ट कार' कार का सर्टिफ़िकेट भी मिला है इसे। 'माइ डियर ओल्ड गर्ल' बॉबी ने कार को बड़े प्यार से थपथपा कर स्टार्ट किया, पर 'डियर ओल्ड गर्ल' रूठी बैठी रही। उसकी मशीन में सामान्य-सा स्पन्दन भी नहीं हुआ।

"आज कुछ ठण्ड भी है, शायद इंजन इसीसे गर्म नहीं हो रहा है, विवियन," वह खिसियाये स्वर में क़ैफ़ियत देता नीचे उतर आया।

"ए ब्वायज़," उसने पास खड़े तीन-चार छोकरों को पुकारा, "थोरा धकेलेगा, बख़्शीश देगा।"

"मैंने इससे पहले ही कह दिया था कि बॉबी रिक्शा में चलेंगे, गाड़ी रहने दो

पर मानो ही नहीं। अब कम से कम तीन दर्जन आदमी धकेलेंगे, तब इसका खटारा चलेगा।"

पर शायद सुन्दरी कली के सम्मुख अपदस्थ होने की स्वामी की खिसियाहट को अचल गाड़ी ने भाँप लिया था। एक हड्डी-तोड़ झटके के साथ वह स्टार्ट हो गयी।

"थैंक गॉड बॉबी, तुम्हारी हौंकर आज शायद घर तक पहुँचा ही देगी।"

"ऐसी बात तो नहीं है सिस," और बॉबी ने शायद कली पर अपने रौब का सिक्का जमाने को हौंकर की स्पीड अचानक तेज़ कर दी। कली कभी सँकरी और कभी आश्चर्यजनक तेज़ी से प्रशस्त बनती जा रही इलाहाबाद की बहुरंगी सड़कों को देखती जा रही थी। कभी गन्दी झोंपड़ियों के झुरमुट के सम्मुख बँधी, कीचड़ गोबर से सनी भीमकाय भैंसें जुगाली करती दीख जातीं, कभी चमचमाती आलीशान अट्टालिकाओं की बरसाती में खड़ी रैमलर और नयी फ़ियेट गाड़ियाँ।

"बस अब हम पहुँच ही गये हैं, वह रहा आण्टी का बँगला," विवियन ने कहा।

बॉबी कुशल चालक की मुद्रा में केवल बायें हाथ की कुहनी से 'व्हील' को साधे, झुककर सिगरेट जला रहा था। साथ ही पार्श्व में लगे नन्हें दर्पण के माध्यम से कनखियों से कली को भी देखता जा रहा था। उसके सर्वथा बनावटी व्यक्तित्व की क्षणिक झलक कली ने भी उसी दर्पण में देख ली। किसी विदेशी चलचित्र के नायक की उस मुद्रा को बॉबी ने बड़े यत्न से कण्ठस्थ किया होगा यह वह मन ही मन समझ गयी।

"आइ होप आण्टी नहा-धोकर तैयार हो गयी होंगी। उन्हें नहाने में भी तो पूरा दिन लग जाता है," विवियन ने कहा।

बॉबी ने एक साफ़-सुथरे बँगले के सामने गाड़ी रोक दी और फटाक से गाड़ी का द्वार खोलकर, फ़ौजी क़दम रखता, एक बार फिर अटेन्शन की मुद्रा में खड़ा हो गया।

"बड़ी साफ़-सुथरी कॉलोनी है, कलकत्ते में तो हम आध गज़ आसमान की झलक देखने को ही तरस जाते," कली ने प्रशंसापूर्ण दृष्टि से आण्टी के बँगले को परख कर कहा।

"जी हाँ जी हाँ, यू आर राइट" बॉबी जैसे अब तक बातें करने को छटपटा रहा था—"कलकत्ता मैं भी कॉफ़ी रहा हूँ, यहाँ तो सब एंग्लोइण्डियन परिवार रहते हैं। वैसे आण्टी का बँगला शायद इस बस्ती का सबसे पुराना बँगला है पर लगता एकदम नया है, है ना?" कली के गृह प्रवेश के पूर्व बॉबी महा उत्साह से अपने बँगले की सरस भूमिका बाँधता उसे भीतर ले चला।

बँगला छोटा होने पर भी, सचमुच पूरी क़तार में सबसे आकर्षक लग रहा था। घोड़े की नाल के आकार के बने बरामदे में तीन-चार रंग-बिरंगी सूप के आकार

की कुरसियाँ पड़ी थीं। उन्हीं के बीच एक बाबा आदम के ज़माने की, वैसी ही आराम-कुरसी लगी थी जैसी प्रायः रेलवे वेटिंग रूम में धरी रहती है। उसपर धरे नीले छींट के त्रिकोणी कुशन को ठीक कर विवियन बोलीं, "ले, तू यहाँ बैठ। मैं देखती हूँ—आण्टी ने नहा लिया या नहीं।" सहसा ठण्डी हवा के झोंके के साथ ही मौलसिरी की खुशबू से बरामदा भर गया।

"वाह, कितनी बढ़िया खुशबू आयी—पास ही में कहीं मौलसिरी का पेड़ है शायद!" कली ने नथुने मीचकर क्षण भर आकर अलोप हो गयी सुगन्ध को सूँघकर कहा।

"जी हाँ," बॉबी मोढ़ा खींचकर उसके पास खिसक आया—"तीन-तीन पेड़ हैं। कभी-कभी तो छोटे-छोटे फूलों की चादर ही-सी बिछ जाती है।" कली उसके उत्तर को बिना सुने ही दीवार पर लगे बारहसिंगा के निर्जीव मुण्डों को देख रही थी। उनकी सींगों पर किया गया काला वार्निश ऐसा चमक रहा था, जैसे अभी-अभी कोई ब्रश फेरकर गया हो।

"यह सब कौरबेट के आण्टी को दिये गये उपहार हैं। आण्टी के परम मित्र थे, कौरबेट। उनके मारे मैनईटर के बघनखों का एक दर्शनीय नेकलेस भी है आण्टी के पास।" उसकी अनवरत बकर-बकर से कली का सर दुखने लगा था, एक तो रात-भर सो भी नहीं पायी थी उसपर भूख के मारे आँतें कुलबुला रही थीं। "ये लो," विवियन चप्पल फटफटाती पूरे बँगले की परिक्रमा कर, फिर उनके सम्मुख खड़ी होकर हँसने लगी, "हम सारा बँगला ढूँढ़ आये कि आण्टी कहाँ हैं और आण्टी तो सामने लेटी सनबाथ ले रही हैं।"

हरी दूब से सँवरे मखमली लॉन में, एक इन्द्रधनुषी विराट् छाते के नीचे, पिकनिक मैट्रेस पर, साधुओं की-सी दो गिरह की लँगोट, और पट्टी-सी पतली कंचुकी में, विवियन की पूतना-सी आण्टी, आँखों पर धूप का चश्मा लगाये चित्त पड़ी सूर्यस्नान ले रही थीं।

"बॉबी!" विवियन ने बॉबी को हाथ पकड़कर उठा दिया। "अभी तो आण्टी नहायी भी नहीं, उनके सनबाथ का ही रिच्युअल चल रहा है। तुम जाकर साइमन से कह दो हाज़री लगा दें। कली बेचारी बहुत भूखी है...."

आण्टी की भूधराकार देह देखकर कली सहम गयी। यह औरत थी कि गैंडा!

एक तो शायद आण्टी के धराशायी होने की विचित्र मुद्रा में, उनका बेडौल मुटापा, किसी अँटे-सँटे सीमेण्ट के फटे बोरे से झरे सीमेण्ट की ही भाँति, ज़मीन पर गिरकर चारों ओर फैल-सा गया था। दोनों मोटी-मोटी बाँहों और पुराने बरगद के मोटे तने-सी पुष्ट टाँगों को फैलाये, वे किसी मोटर के पहिये के नीचे पिचकी मोटी मेंढकी-सी ही अचल पड़ी, सनबाथ ले रही थीं।

"इधर आण्टी स्लिमिंग के चक्कर में हैं।" विवियन ने शायद कली की

आश्चर्यचकित सहमी दृष्टि के चोर को पकड़ लिया था। "एक तो हाई ब्लडप्रेशर है, उसपर यह मुटापा! डॉक्टर का कहना है कि कभी यही मुटापा इनके प्राण ले सकता है। पर आण्टी की वीकनेस ही खाना है। दिन-भर सब्ज़ियों का पानी पीकर काट लेंगी, पर शाम को हम सब की नज़र बचा कर क्वालिटी में बैठ, एक साथ डेढ़ दर्जन पेस्ट्री ही खा लेंगी। इसी बदपरहेज़ी से तो इस हफ़्ते आण्टी ने अपना वज़न फिर तीन पौण्ड बढ़ा लिया है। चल, तू हाथ-मुँह धो ले। तुझे तो बहुत भूख लगी है ना?"

सचमुच ही भूख के मारे कली के प्राण कण्ठगत हो आये थे। गुड़िया के घरौंदे-से छोटे-छोटे कमरों की सज्जा देखकर कली अपनी भूख और थकान भूल गयी थी।

"यह मेरा कमरा है, यहीं मैंने तेरा पलँग भी लगवा लिया है। कितना मज़ा आयेगा कली", विवियन ने उसे खींचकर, अपने गुदगुदे पलंग पर बिठा दिया। "ठीक जैसे रैमनी की डौर्म में पहुँच गयी हूँ! पता नहीं तू क्यों कलकत्ते चली गयी। मैं तो कहती हूँ फिर यहीं चली आ। तू मेरी इस आण्टी से मिलेगी तो फिर कभी इलाहाबाद छोड़कर जाने का नाम भी नहीं लेगी। ले, लगता है आण्टी आ गयीं।" अधलेटी कली सँभलकर बैठ गयी।

"ओ माई डियर, क्या ताक़त है सूरज में! लग रहा है एक बार फिर सोलह साल की हो गयी हूँ।" मुसकराती आण्टी द्वार पर खड़ी थीं।

"अच्छा, यह है तुम्हारी कली! वाह एकदम वही नक़्शा है, जो जवानी में कभी हमारा था।"

एक लम्बी साँस खींचकर आण्टी ने कली के आकर्षक अंगों पर अपनी मुग्ध दृष्टि का फ़ोकस ऐसे बाँध कर रख दिया कि जो कली कभी पुरुषों की ऐसी ही प्रशंसात्मक दृष्टि को भी अपने धृष्ट स्वभाव की ढाल से झेल लेती थी, वह आज एक स्त्री की ही मुग्ध दृष्टि के वार के नीचे लाल पड़कर रह गयी।

"थर्टीफ़ोर, नाइनटीन, थर्टीसिक्स, आई कैन बेट, यही इस नक़्शे का मापदण्ड होगा। क्यों है ना कली? वाह, बहुत दिनों बाद एक सुन्दर चेहरा और सुन्दर फ़िगर देखने को मिला।" बड़े-बड़े गुलाब बने ड्रेसिंग गाउन में आण्टी की विराट् देह और भी चौरस लग रही थी। "विवियन बेटी," आण्टी कहने लगीं, "आज मैं देर में नहाऊँगी। चलो, पहले नाश्ता निबटा लें, कली तो भूखी होगी!"

खाने के कमरे की चमकती मेज़ के सिरे पर, सब से चौड़ी कुरसी पर आण्टी बैठती कहने लगीं, "अपनी इमारत की पूरी लम्बाई-चौड़ाई का क्षेत्रफल देकर मैंने यह कुरसी बनवायी है कली, देख रही हो ना? इसमें तुम्हारी-सी सात कलियाँ एक साथ समा सकती हैं! आओ, तुम मेरे पास बैठोगी!" कली का हाथ खींचकर आण्टी ने उसे अपने पास बिठा लिया।

दस

दलिया, उबले अण्डे और टोस्ट सजाकर साइमन गृहस्वामिनी के लिए एक सूपप्लेट में उबली सब्जियों का मटमैला पानी रख गया, तो आण्टी ने किसी सिर चढ़े, बीमार, अबोध बालक की तरह मुँह लटका लिया।

"देख रही हो विवियन, इस साइमन के बच्चे ने आज इस सूप में फिर मुझे जलाने के लिए शलजम डाल दिया है। तुम्हीं देखो बेटी कली, लगता है अपनी बीवी की धोती धोकर उसी का पानी गरम कर ले आया है। एक टमाटर ही डाल देता! ही कुड हैव पुट सम कलर।"

"आण्टी, तुम्हें पता है कि तुम्हारा वज़न इधर फिर बढ़ने लगा है। डॉक्टर मोज़ेज़ ने जो सूप बताया है तुम्हें इस हफ़्ते वही पीना पड़ेगा।" विवियन ने पुचकारने के स्वर में कहा और प्लेट आण्टी के सम्मुख धरकर चम्मच उनके हाथ में पकड़ा दी। एक प्लेट में दो रूखे टोस्ट उसमें डुबोकर मरे मन से खाती आण्टी, लोलुप दृष्टि से मेज़ पर धरी मक्खन की गोल बट्टी को एकटक देखती कहने लगीं, "अगली बार उस चोट्टे मोज़ेज़ की कलेजी ही भूनकर खा लूँगी, देख लेना! आप तो मुटका खा-खाकर दिन-रात मुटा रहा है। अब तू ही बता बेटी कली, इस शरीर में भला इन दो रूखे टोस्ट और इस चुल्लू-भर गँदले गुनगुने पानी से कुछ गरमाहट आयेगी? रोज़-रोज़ यही खाना, उस पर भी वज़न बढ़ता जा रहा है! मुझे तो लगता है, जान-बूझकर ही उसने वज़न तौलने की मशीन की सुई बिगाड़ दी है। असल में जवानी में मुझ पर मरता था मुटका, मैंने इसके प्रपोज़ल को हँसकर ठुकरा दिया था, वही बदला तो ले रहा है अब," आण्टी ने हँसकर कहा और झपट्टा मारकर मक्खन की पूरी बट्टी मुँह में धरकर गप्प से निगल, किसी चतुर बाज़ीगर की भाँति गर्व से मुसकराने लगीं।

"देख रहे हो बॉबी, कभी-कभी तो आण्टी बच्चों को भी मात कर देती हैं— कल आप ऐसे ही झपट्टा मारकर पूरी डबल रोटी खा गयीं।"

विवियन की धमकी से सहमकर आण्टी नैपकिन से मुँह पोंछती खिसियाकर उठ गयीं, "पता नहीं क्या हो जाता है मुझे। इधर मुझे भूखी मारकर तुमने मेरी नीयत बेहद बिगाड़ दी है। खाना देखकर अपने को रोक ही नहीं पाती। ले विवियन, आज से पक्का क्रिश्चियन रिज़ोल्यूशन ले रही हूँ। बिना तुझ से पूछे खाने की एक चीज़ भी जीभ पर नहीं रखूँगी।"

"मेरा क्या बनता-बिगड़ता है आण्टी," विवियन काँटे-छुरी से ऑमलेट का

१३

टुकड़ा मुख में रख बोली, "तीन-तीन घण्टे तक बन्द गोभी की तरह स्टीम में उबलती हो, गिन-गिनकर हज़ार-हज़ार रस्सी-कूद की छलाँगें लगाती हो, पर एक छह इंच की जीभ को नहीं रोक पातीं !"

आण्टी नहाने चली गयीं तो कली बड़ी स्वाभाविकता से नाश्ते पर टूट पड़ी। अबतक आण्टी की क्षुधातुरा दृष्टि के नीचे वह एक गस्सा भी नहीं तोड़ पायी थी।

"वी काण्ट एफ़ोर्ड टु लूज़ हर," विवियन की आँखें स्नेहाश्रु से आर्द्र हो उठीं। "तुम नहीं जानतीं, यह मेरी कैसी हीरा आण्टी हैं। ममी की सबसे छोटी बहन हैं। मुझे आज तक कभी यह लगा ही नहीं कि मेरी माँ नहीं है। बोर्डिंग में जाने से पहले जन्म के दस वर्ष तक मैं इन्हीं के पास रही। बॉबी तो जन्म के तीसरे ही साल इनके पास आ गया था। यह ससुरा तो डेज़ी आण्टी को जन्मते ही भकोस गया।"

वह बड़े स्नेह से बॉबी की ओर देखकर मुसकरायी—आँखें नीची किये, बॉबी लड़कियों की-सी नज़ाकत से क्रिस्प टोस्ट को चूहे-सा कतर रहा था।

"अब परसों ही डॉक्टर मोजेज़ कह गये हैं कि आण्टी का रक्तचाप बेहद बढ़ गया है, कभी भी स्ट्रोक हो सकता है। इसी से मैं यहाँ आ गयी। सोचा, पढ़ाई के साथ-साथ आण्टी की देखभाल करती रहूँगी, पर नाउ आइ फाइण्ड, इट इज़ इम्पासिबुल।"

तीन-चार घण्टे बाद, स्टीम-बाथ में उबल-धुलकर आण्टी जैसे चोला ही बदल आयीं। रंग-रूप में तो वह निखालिस ऐंग्लोइण्डियन थी हीं, साज़-सज्जा भी वैसी ही थी। एक हलके धानी लतापत्र बने, कैम्ब्रिक के गाउन में उन्होंने अपना फैला मुटापा शायद यत्न से कसे गये किसी कोर्सेट में बाँधकर रख लिया था। कटे काले बालों में लगा एलिस बैण्ड, गोल गालोंवाले भोले-से चेहरे को और भी भोला बना रहा था। नीली आँखें, काले बालों से ज़रा भी मेल नहीं खाती थीं, पर नन्हे-से अधरपुट से झाँकते आण्टी के मोती-से दाँत देखकर कली समझ ही नहीं पायी कि सौन्दर्य किसी प्रसिद्ध डेंटिस्ट के डेंचर का है या स्वयं विधाता का !

"ओ माई डियर कली, तुम्हें मैं किस भी नहीं कर पायी, सारे बदन में हरामी आया ने ढाई सेर ओलिव ऑयल मलकर रख दिया था। तुम्हें चूमकर स्वागत करती भी कैसे ! मोस्ट वेल्कम माई ब्यूटी," आण्टी ने अपनी गुदगुदी हथेली में कली का चेहरा थाम, दोनों गालों को ऐसी तबीयत से चूमा कि कली को लगा मक्खन की बट्टी की भाँति, आण्टी उसके दोनों गालों को भी निगल गयी हैं। लैवेंडर की मादक सुगन्ध से कली की आँखें मुँद गयीं। किसी विदेशी सेण्ट की खुली बोतल-सी ही आण्टी कुरसी खींचकर बैठ गयीं।

"पर यह क्या सुन रही थी मैं अभी कि तुम इस इतवार को ही चली जाओगी ! क्या सात ही दिन में तुम हमें तड़पाकर कलकत्ता चल दोगी ? क्यों विवियन, तब तो इसे आज ही पैक कर वापस भेज दो...."

बड़े प्रेम से कली के दोनों हाथ पकड़कर आण्टी ने बनावटी क्रोध से झक-झोर दिये।

"मेरी छुट्टी ही नहीं है, वह तो एक नुमाइश में आयी थी, इसी से इधर चली आयी—कभी-कभी तो दो घण्टा भी नहीं सो पाती हूँ।"

"पता नहीं क्या सोचकर तू इस लाइन में चली गयी," विवियन कहने लगी। "अच्छी-खासी थी पढ़ने में, क्यों 'सिवस प्राइंट्स' थे ना तेरे एस. सी. में ? मैंने तो इस से कई वार कहा था आण्टी, कि चलना ही है तो इलाहाबाद चल, पर इसे तो कलकत्ते की धुन लगी थी। हारकर मैंने इसे लौरीन आण्टी का पता दे दिया था।"

"हाय, मैं मर गयी," आण्टी ने दोनों बेलन-सी बाँहें आकाश की ओर उठा दीं, "अरी कम्बख्त, तूने इसे लौरीन के पास भेज दिया ! इससे तो शेरनी के पिंजरे में डाल दिया होता। क्यों कली, उस चुड़ैल ने कहीं तुझसे वही काम तो नहीं लिया, जो सूजन की लकड़ी की टाँग से लेती है ?"

"क्या कह रही हो आण्टी ?" आश्चर्य से विवियन आण्टी की ओर मुड़ गयी। "कितनी अच्छी है लौरीन आण्टी, मुझे सोलहवीं सालगिरह पर यह घड़ी उन्हीं ने तो भेजी थी कली, याद है ना ?"

"हाय मेरी भोली बेटी ! मुफ़्त में उपहार दे ऐसी मूर्ख नहीं है लौरीन। उस का वस चले तो वह दुनिया की हर सोलह साल की सुन्दरी लड़की की कलाई में हीरे की घड़ी बाँध दे। मुझे जैसे ही पता चला कि उसने मुझे कान्वेंट में घड़ी भेजी है, वो मरम्मत की थी मैंने चुडैल की कि पैर पकड़कर रोने लगी। तुम दोनों से मैंने कभी कुछ नहीं कहा। बॉवी ऐसी बातें देर में समझता है और तुम समझने के लिए बहुत छोटी थीं। और हाय ! ऐसी प्यारी बच्ची को तुमने वहाँ भेज दिया ? कली, मेरी बच्ची, मुझसे कुछ मत छिपाना।"

आण्टी की चिन्तातुर मुद्रा में बनावटी स्नेह का स्पर्श भी नहीं था। कली मन ही मन अचरज में डूबी जा रही थी। जिसे उसने कल तक देखा भी नहीं था, वह आज उसे कितनी सगी लग रही थी।

"उस बुढ़िया ने कहीं तुझे इसी धन्धे में तो नहीं लगा दिया ?"

"नहीं आण्टी," कली ने मुसकराकर कहा, "मैं तो वहाँ कुछ ही महीने रही, जैसे ही माथा ठनका, मैंने आण्टी का फ़ार्म छोड़ दिया था।"

"फ़ार्म इंडीड," आण्टी ने उसकी पीठ थपथपा दी। "तभी तो मैं मन ही मन कर रही थी। लौरीन के धन्धे में होती तो यह चेहरा क्या ऐसा भोला दिख सकता था ?"

उसी चेहरे की मरीचिका के लिए, लौरीन आण्टी के प्रशंसा के शब्द यदि कली दोहरा दे तब ? पर उन शब्दों को दुहराने पर भी, शायद कोई उन पर विश्वास नहीं करता।

सात दिनों में इलाहाबाद ने कली की कायापलटकर रख दी थी। उसे लग रहा था कि जीवन में पहली बार उसके पैर जीवन के यथार्थ धरातल का स्पर्श कर रहे थे। अबतक क्या वह जीवनदोले कीं दिशाहीन पेंग ही लेती, शून्य आकाश में झूलती रही थी ? शायद ! सरस स्नेह से छलकती आण्टी की स्निग्ध मातृवत् चावनी, कभी-कभी उसकी आँखें गीली कर देती। पन्ना की आँखें भी तो ऐसी ही नीली थीं, तब अन्तर कहाँ था ?

एक दृष्टि थी, नीले आकाश-सी ही उदार—और दूसरी में थी चित्रांकित आकाश की-सी ही नीलाभ शून्यता ! एक ने उसकी अभिशप्त नन्हीं देह को ठोकर लगाने पर दया की भीख देकर गोदी में लिया था, दूसरी ने अनजान होने पर भी बिना कुछ पूछे ही अपनी उदार बाँहें फैला दी थीं।

इन सात दिनों में कली के चेहरे ने मेकअप की एक सामान्य तूलिका का भी स्पर्श नहीं किया था, चेहरे की स्वाभाविक लुनाई में किसी दक्ष कलाकार के पेन्सिल स्केच की-सी लाइट ऐंड शेड की स्निग्ध छाया उतर आयी थी।

"बड़ा आश्चर्य है, कली !" विवियन एक दिन कहने लगी, "बंगाल में रहती है पर आज तक क्या सत्यजित रे की अनुसन्धानी दृष्टि तुझ पर नहीं पड़ी, एकदम उसी के चलचित्र की नायिकाओं से मिलता-जुलता चेहरा है तेरा—क्यों, है ना रे बॉबी ?"

बॉबी सात दिनों में ही उस सौन्दर्य-उदधि में कण्ठ तक डूब चुका था। कली को लेकर पूछा गया सामान्य-सा स्वाभाविक प्रश्न ही उसे लाल कर देता, यह विवियन भी समझने लगी थी। इसी से जान-बूझकर वह कभी-कभी उसे छेड़ने लगती।

"ऐ बॉबी, देखूँ कितने मिनट में तुम्हारा हेलीकोप्टर हमें फाफामऊ पहुँचाता है !" वह कहती और किसी रेस कार के उत्तेजित प्रतियोगी की ही भाँति बॉबी, प्राण हथेली पर धर, पूरी स्पीड में गाड़ी भगा देता।

फाफामऊ की ओर जाती निर्जन सड़क के वक्ष पर अमानवीय दुस्साहस से, विराट् जहाज़-सी ठेला-ट्रकों को पछाड़ती बॉबी की जर्जर गतयौवना गाड़ी सहसा षोडशी बनी भागने लगती, तो कली और विवियन चीखें मारती हँसती-हँसती दुहरी हो जातीं।

"बस करो बॉबी, अब बस !" लगता किसी कार्निवल की कार रेस में ही दोनों बच्चा मोटर भगा रही हों।

अपनी बचकानी हिस्टिरिकल चीखें, कली के कानों में स्वयं ही अनजान बन-कर टकरा उठतीं। एक अरसे से वह इतना नहीं हँसी थी। उसे लगता कि बहुत दिनों से अस्वाभाविक अभिनय की क़वायद में 'जाम' हो गये उसके शरीर के अंजर-पंजर किसी तेल-ग्रीज़ से चमकायी गयी मशीन के अवयवों की ही भाँति एक बार फिर नये बन गये हैं।

घर लौटती तो आधी-आधी रात तक विवियन यूनिवर्सिटी के कथा-पुराण का पोथा खोलकर बैठ जाती। एक-एक रोचक अयर कली को कण्ठस्थ हो गये थे।

"हाय कली, तू हमारी यूनिवर्सिटी में आती तो क्रेज़ बन जाती, सच !" विवियन कहती तो उसका मन ललच उठता, पर अपनी खोखली बनावटी ज़िन्दगी की केंचुली क्या वह अब चाहने पर ही उतारकर फेंक सकती थी ?

"अब मुझे लौटना ही होगा विवियन," उसने आठवें दिन कहा ।

"वाह, वाह, अभी तो तुझे माघ मेले की सैर ही नहीं करायी, अभी कैसे जायेगी !"

स्वयं आण्टी ने तार देकर उसकी छुट्टी बढ़वा ली थी ।

"कल अमावस का नहान है, खूब बढ़िया मेला जुटेगा" आण्टी हँसकर कहने लगीं, "आज तक कली देश-विदेश के इंडियन पैवेलियन की मॉडल बनी है, इस बार इसे माघ मेले की मॉडल बनायेंगे, अच्छा विवियन ! बॉबी, अपना कैमरा 'लोड' कर लेना, कल तड़के ही चल देंगे । साइमन से मैंने कह दिया है, बजरा निकालने वह आज ही संगम चला जायेगा ।"

आण्टी ने कभी बड़े शौक़ से अपना बजरा बनवाया था, नाम था 'गोल्डन ऐरो ।' अब वह बजरा, एक पंडे के गोदाम में ही बन्द रहता, पर कभी-कभी आण्टी के अतिथियों के सम्मान में किसी उजड़ी रियासत के हाथी की ही भाँति, सज-धजकर संगम के नीलाभ जल में तैरता, तो सब की दृष्टि आकर्षित कर लेता । बजरे को विशेष रूप से नक़्शे में बाँधकर तराशा गया था । उसके वेनीशियन-गोंडोला की-सी छरहरी देह के दोनों ओर दो नुकीले सुनहले तीर, सूर्य की प्रखर किरणों में स्वयं भी दीप्त अग्निशिखा की-सी ही किरणें छोड़ने लगते ।

"माघ मेला देखना ही है तो बहुत तड़के चलेंगे," आण्टी के उत्साह का अन्त नहीं था, "दुर्भाग्य से इस साल का कुम्भ नहीं है, फिर भी संगम का माघी मेला 'इज़ क्वाइट समथिंग—देखना कली, तेरे 'वर्ल्ड फ़ेयर' में भी ऐसी स्वाभाविक चहल-पहल नहीं रहती होगी । और फिर बजरा रोककर बीच संगम में डुबकियाँ लेने में जो आनन्द आता है, आहा-हा !" आण्टी आँखें मूँदकर, सचमुच ही काल्पनिक डुबकियों में डूबने-उतराने लगीं ।

"आण्टी की नानी पक्की ब्राह्मणी थीं," विवियन हँसकर कहने लगी, "किसी चतुर्वेदी की इकलौती बेटी थीं, नाना उन्हें भगा लाये थे, इसी से तो माघ मेले में आण्टी हर साल बौरा जाती हैं ।"

"सच ?"

कली की विस्फारित दृष्टि ने बॉबी को अजगर की भाँति मुँह फैलाकर निगल लिया । आश्चर्य की मुद्रा ही क्या इस अलौकिक रूपसी की सब से मोहक मुद्रा नहीं थी ? किसी सर्पिणी द्वारा 'हिप्नोटाइज़्ड' पक्षी-सा बॉबी उसी से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देना भी भूल गया ।

"और क्या झूठ कह रही हूँ, पूछ लेना आण्टी से," विवियन ने बॉबी को ठसका

कर चेतना-जगत् में खींच लिया। "ए सिली, हाउ यू स्टेयर ?" वह फुसफुसायी और वह अचकचाकर कसी तनी पतलून को अपनी नटिनी की-सी कमर पर खींचता, तीर-सा बाहर निकल गया।

"बड़ी लम्बी कहानी है नानी के इलोपमेंट की, कभी फ़ुर्सत से सुनायेंगे," आण्टी बोलीं, "पहले शर्मा को फ़ोन कर दूँ गाड़ी के लिए, संगम का पास भी तो बनवाना होगा।"

आण्टी फ़ोन करने चली गयीं, तो विवियन बोलीं, "चल, ये अच्छा है कि कल बॉबी की गाड़ी में नहीं जाना पड़ेगा। शर्मा साहब की गाड़ी तो एकदम मखमल पर फिसलती है, देंगे ज़रूर।" उसने एक आँख मींचकर कहा, "ही डेयर नाट रिफ़्यूज़, क्योंकि आण्टी की ओल्ड फ्लेम हैं। देख लेना सुबह होने से पहले ही गाड़ी हमारे पोर्च में होगी।"

सचमुच ही आण्टी के मुर्गों ने सुबह की बाँग दी ही थी कि शर्मा साहब की काली लम्बी खुशनुमा गाड़ी, बिना किसी आवाज़ के ही सर्र से आकर पोर्च में लग गयी।

आण्टी के उत्साह की छूत अब घर के सब सदस्यों को लग गयी थी। साइमन बजरा सजाने पहले ही दिन चला गया था। भीड़ के रेले में चींटी की गति से रेंगती शर्मा जी की स्लीक गाड़ी के काँच से मुँह सटाये कली मुग्ध दृष्टि से भीड़ के रामधुन को देख रही थी। रंग-बिरंगी गोट लगे ऊँचे अवधी लहँगे, दक्षिणी साड़ियाँ, जोधपुरी पगड़ियाँ, पगड़ियों पर पोटलियाँ और पोटलियों पर सधे सरकसी बच्चों से जमे अर्धनग्न काले चमकते बच्चे! थके-छिले पाँव पर कण्ठ की स्वर-लहरी में गूँजता अदम्य उत्साह। किसी-किसी कन्धे पर एक साथ बैठे तीन-तीन, चार-चार बच्चे, ठीक जैसे कोई होटल का दक्ष बैरा दोनों हाथों में एक साथ कई जोड़ा प्लेटों का अम्बार बनाये मुसकराता बड़े इत्मीमान से चला जाता है, ऐसे ही वे ग्रामीण, किलकते बन्दरों से अबाध्य बालकों को, स्वाभाविक सन्तुलन में, कन्धे पर बाँधे चले जा रहे थे। एक साथ चार-पाँच बैलगाड़ियाँ सहसा, कार ही के साथ दुस्साहसी क़दम रखती आगे-पीछे चलने लगीं। बैलगाड़ियों में तीन-चार मूँज की उलटी चारपाइयों पर ढोलक के साथ गाती-बजाती मुखरा ग्राम्याओं का दल कार की खिड़की के पास ही सटकर रेंगने लगा। सब की कँकरेजी, लाग लगायी गयी एक-सी मिलती-जुलती साड़ियाँ थीं, हाथों में कुहनी तक छमकती लाख की चूड़ियाँ और पटेला, नाक में सोने की सर्चलाइट-सी चमकती पुगनियाँ और पैरों में बेड़ियों-सी पड़ी पैंजनी!

"ये सब बुन्देलखण्डी हैं, यह इनका खास पहनावा है," आण्टी कली से कह रही थीं, मैं तो बरसों रीवाँ-छतरपुर में रही हूँ....माई! व्हॅट वॉयस!"

उनकी तीखी आवाज, शहनाई की-सी बुलन्द गूँज की नौबत बजा रही थी।

'गाड़ीवारे मसक दे बैल
चले पुरबैया के बादर'

बाद का 'र' एक मोहक सधी मरोड़ के साथ मुड़ता और तरुण रँगीला पगड़ीधारी गाड़ीवान अधूरी पंक्ति को पकड़कर, पहली पंक्ति को फिर दोहराने लगता। सहसा गीत की लय में झूमते गाड़ीवान से एक धृष्ट नवयुवती ने न जाने क्या कहा, और वह कली की कार के काँच के चौखटे में बन्द, बड़ी आँखों में आँखें डाल, गीत की अधूरी पंक्ति दोहराता कार को पछाड़ता चला गया। उसकी रंगीनी से साथ की स्त्रियों का पूरा दल खिलखिला उठा और कली ने खिसियाकर मुँह फेर लिया।

जो देश-विदेश के समृद्ध समाज की भीड़ के सम्मुख दिन-रात सीना तानकर नित्य नवीन वेष-भूषा के रंगरस का जाल बुनती, इठलाती चली जाती थी, उसी को, प्रयाग की धूल-भरी सड़क पर, एक गँवारू ग्रामीण लोकगीत की एक ही पंक्ति ने छुई-मुई बना दिया। क्या हो गया था उसे ?

"संगम का पास बना है कली, बस क़िले तक ही चलना होगा हमें।"

कार के रुकते ही विवियन बड़े उत्साह से नीचे कूद गयी, और कली का हाथ पकड़कर भीड़ को चीरती चलने लगी। कभी-कभी बालू में दोनों के पैर धँस जाते। ऊपर उठातीं तो चप्पलें वहीं रह जातीं। उधर बहुत पीछे पिछड़ गयी आण्टी अधैर्य की हाँक लगाने लगतीं, "तुम्हारी ये आदत ही हमको नापसन्द है विवियन, मैं पूछती हूँ, कौन-सी रेलगाड़ी छूटी जा रही है, जो ऐसी भागदौड़ मची है। रुक जा, मुझे आने दे, साथ चलेंगे।"

"ओ माई गॉड," विवियन अधैर्य से बालू पर ही बैठकर फुसफुसायी, "देख रही है ना आण्टी को, अब अगले माघ मेले तक यहाँ पहुँचेंगी।"

"चुप कर, आण्टी सुनेंगी तो क्या कहेंगी," कली स्वयं बड़ी चेष्टा से अपनी हँसी रोक रही थी।

जीन्स पहनकर आण्टी और भी विराट् लग रही थीं। उस पर, उस हो-हल्ले में भी किसी का क्रूर रिमार्क, जिसे शायद विवियन नहीं सुन पायी थी। कली ने सुन लिया था।

"देख यार, आज हाथी पैंट पहनकर गंगा नहाने को निकला है।"

ओठ काटकर कली ने हँसी रोक ली।

बड़ी देर बाद हाँफती, पसीने से लथपथ आण्टी उन तक पहुँचीं और पूरा दल एक बार फिर साथ-साथ चलने लगा।

सामने फूस की छायी झोपड़ियों की पूरी क़तार बिखरी थी। उजाला निखर आया था, कुछ तीर्थयात्री हाथ में निचुड़ी, टपटप पानी टपकाती धोतियाँ लटकाये लौट रहे थे, कुछ सूखी धोतियाँ कन्धे पर लटकाये नहाने जा रहे थे। विभिन्न पण्डों के चिह्न

तोरण द्वारों से, मीठी प्रभाती गूँजने लगी थी। दक्षिण के वेंकटेश्वर की सुमधुर स्तुति के लयबद्ध छन्दों की रूपक ताल के साथ जवावी संगत-सी देती घण्टाध्वनि को कली चकित मृगी-सी ठिठककर सुनने लगी कि आण्टी ने लपककर उसे अपने पास खींच लिया। फ़ायर ब्रिगेड की ही भाँति भीड़भरी सड़क के ट्रैफ़िक की ओर से एकदम उदासीन नागा साधुओं का एक जत्था कली की कनपटी से गोली-सा सनसनाता निकल गया।

"लुक ऐट दीज़ ब्यूटीज़ माई डियर," आण्टी उसके कान के पास सिर सटाकर, फुसफुसायीं, "कुछ कहना मत, अफ़्रीका के रैटल स्नेक-से ही गुस्सेवाज़ होते हैं ये! मैंने जब इन्हें पहली बार देखा तो दुर्भाग्य से ज़ोर से हँस पड़ी थी। बाप रे बाप! खजूर के पेड़ से लम्बे एक ऐसे ही नंग-धड़ंग खबीस ने अपना पूरा चिमटा ही मेरी पीठ में घुसेड़ दिया था।"

सारे शरीर में भस्म पोते, पेरिस की लेटेस्ट हेयरस्टाइल के 'बुफ़ौं' में जटाजूट सँवारे अपनी भयावह नग्नता की ओर से एकदम उदासीन, नंगे साधुओं का वह जत्था ऐसी अकड़ से सीना ताने चला जा रहा था जैसे सबके सब किमख्वाब की अदृश्य अचकन और ज़री के साफ़े बाँधे चले जा रहे हों।

"अभी तूने कुम्भ का मेला देखा होता तो शायद पगला ही जाती," आण्टी कहती जा रही थी, "लगता है, सारी दुनिया के मुण्ड यहीं आकर जुट गये हैं। चल अब चूड़ियों की दूकान पर चलें। आज तो मैं कलाई-भर काले लच्छे पहनूँगी और चार-चार चूड़ियाँ सुहाग की लिये बिना उठूँगी ही नहीं।"

"अब देखना कली," विवियन कहने लगी, "बिसातियों की दूकान के सामने जाकर आण्टी पगला जायेंगी। हर साल न जाने क्या-क्या खरीदकर बटोर ले जाती हैं। तुलसी की माला, चूड़ियाँ, गंगाजली।"

"और इलायचीदाना?" बॉबी ने पूछा।

"अरे हाँ, वह तो आण्टी की वीकनेस है, बस चले तो सेर-भर एक साथ मुँह में डाल लें। इस बार इन्हें उस ओर एकदम मत जाने देना बॉबी।"

देखते ही देखते आण्टी ने नीली-हरी चूड़ियों से अपनी गोल-गोल गोरी कलाई ही नहीं भरी, कली और विवियन को भी रंगीन लच्छे पहना दिये।

कली आज तक चूड़ियों की मीठी खनक से एकदम ही अपरिचित थी। कान्वेंट में कभी तीज-त्योहार पर उसकी कोई सहपाठिनी लुक-छिपकर चूड़ियाँ पहन भी आतीं, तो रेवरेंड मदर की एक ही घुड़की से सहम तत्काल उतार आया को दे देती।

"अभी तो नहा-धोकर पण्डे से चन्दन का तिलक लगवाऊँगी," आण्टी बोली, "तब देखना मुझे कली, पक्की हिन्दुआनी बनूँगी आज!"

"डोण्ट बी सिली आण्टी," विवियन बोली, "इस जीन्स के साथ चन्दन लगाकर पूरी कार्टून लगोगी। वैसे ही हमारी यूनिवर्सिटी के लड़कों का वह झुण्ड तुम्हें घूर रहा है।"

"इस उमर में इस दुमंजिले ओल्डफ़ैशण्ड मकान को अब यूनिवर्सिटी के लड़के नहीं घूर सकते विवियन, तुम निश्चिन्त रहो। वह तो आज साथ में यह जो लिज़ टेलर को ले आयी हूँ, उसे ही घूर रहे होंगे। चलो, तुम्हें कैसा डर लग रहा है, मैं तो हूँ साथ में।"

आण्टी तेज़ी से हाँफती दोनों को खींचती दौड़-सी लगाने लगीं।

"हे बॉवी," जान-बूझकर ही शायद छोकरों की भीड़ में से एक पतली-पतली टाँगों और बीटनिक के-से बालोंवाले लड़के ने चीखकर बॉबी को पुकारा। उसकी हाँक को अनसुनी कर, बॉवी तेज़ी से चलता रहा—

"आई से हे लकी बग," एक अश्लील ठहाका बॉवी का पीछा करने लगा।

"देख रही हो आण्टी, सब पीछे-पीछे आ रहे हैं, अब जल्दी से बजरे पर चलो," विवियन बुरी तरह घबरा रही थी।

पर कली नपे-तुले क़दम रखती ऐसे आत्मविश्वास से चली जा रही थी, जैसे किसी फ़ौजी टुकड़ी की सलामी ग्रहण कर रही हो। यह तो उसके लिए नित्य का दाल-भात था। रंगीन बजरे पर खड़े साइमन की विचित्र फ़िल्मी वेशभूषा देखकर पहले कली पहचान ही नहीं पायी। जब निकट पहुँचकर पहचाना, तो ओठों पर हाथ धरकर ज़ोर से हँस पड़ी।

विवियन बार-बार पीछे मुड़कर भीड़ में भटक गयी। उद्दण्ड सहपाठियों की भीड़ को न देख, आश्वस्त होकर बड़ी ललक से बजरे पर चढ़ने लगी। एक मोटा-सा काठ का तख़्ता, जो उसकी लचीली देह के भार से रोप ब्रिज-सा काँपने लगा था, बजरे तक सीढ़ी के रूप में मोटी रस्सी से बँधा था।

काँपते डगमग होते तख़्ते पर पैर रखने में सहमती कली किनारे पर ही खड़ी रह गयी, तो बॉवी उसे सहारा देने ऐसे बढ़ आया जैसे बाँहों में भरकर ही उठा लेगा। उसका हाथ पकड़कर वह डगमगाती बजरे तक पहुँच गयी। रंगीन लहरदार जोधपुरी साफ़े में साइमन किसी रियासत के रजवाड़े का दमकीला भृत्य-सा चमक रहा था।

"यह पोशाक इसे आण्टी ने पिछले साल बनवा दी थी। कुछ भी कहो बॉवी, हमारा साइमन इस ड्रेस में एकदम विदेशी चलचित्र के किसी इण्डियन हीरो-सा लगता है। क्यों, है ना कली?"

अकड़ से साइमन और भी तेज़ी से बजरा चलाने लगा। आण्टी अपनी चौरस कमर पर दोनों हाथ धर, उसके पीछे खड़ी होकर बोलीं, "ठीक संगम में जाकर बजरा लगाना साइमन, जहाँ सब नहा रहे हैं, समझे?"

"वह तो समझ गया आण्टी, अब तुम भी समझ लो। वहाँ पर यह साइमन-

साइमन कर अपने फ़ौजी कमाण्ड मत देना। नहीं तो घाट के हिन्दू हमें लाठी लेकर घाट के बाहर खदेड़ देंगे। साइमन का नाम इस घाट के भीतर बदलना ही होगा। साइमन, कुछ घण्टों तक तुम रहोगे श्यामकुमार," विवियन ने कहा।

और बच्चों की भाँति सबने तालियाँ बजाकर नये नाम का स्वागत किया।

"हाय कैसा रोमाण्टिक नाम है, श्यामकुमार। मैं तो कहती हूँ अब इसका यही नाम रहने दिया जाये। क्यों, क्या ख़याल है साइमन ? इट गोज़ विद योर टरबन !"

ग्यारह

श्यामकुमार ने अपना बजरा कस-कसकर पास खड़े दूसरे बजरे से बाँध दिया। 'गोल्डन ऐरो' की चमक-दमक के सम्मुख वह दुअन्नीवाली सवारियों से भरा भारी जर्जर मटमैला बजरा एकदम भिखारी लग रहा था।

एक-एक को खींचकर आण्टी ने ज़बर्दस्ती डुबकियाँ लगवायीं। बड़ी स्वाभाविकता से आण्टी सीधा पल्ला मारे, इकलाई धोती में लिपटी सिर-मुँह ढाँपे बजरे से पानी में उतरीं, तो हँसी के मारे विवियन और कली का बुरा हाल हो गया।

आण्टी को डरी बच्ची की भाँति पुचकारता एक वाचाल पण्डा गहरे पानी में खींच ले गया तो विवियन बोली, "आई एम श्योर ही इज़ फ़्लर्टिंग विद आण्टी।"

बड़ी भक्ति में डूबी आण्टी बार-बार पानी में मूँड़ डुबोतीं और फिर किसी विराट् ह्वेल मछली की भाँति छपाक् से ऊपर निकल आतीं।

बड़ी देर तक डुबकियाँ लेकर आण्टी का पूरा दल किनारे पर लौट आया। "न जाने कैसा जादू है इस पानी में, लगता है एक साथ चार स्टोन वज़न चार डुबकियों में डुबो आयी हूँ, 'आई एम फ़ीलिंग सो लाइट!' चलो अब तिलक लगवा लिया जाये—" पृथुल शरीर से चिपकी गीली धोती, गोल चेहरे पर चिपक गये बाल और बालक की-सी दूधिया हँसी देखकर कली को लगा वह आण्टी को नहीं, किसी और ही को देख रही है।

बजरे ही में एक कोने में चादर तानकर सबने गीले कपड़े बदल लिये। आण्टी एक बार फिर अपनी जीन्स पहनकर बाहर निकल आयीं। "साड़ी ससुरी पैरों में फँसती है, बस साल में एक ही बार पहनती हूँ गंगानहान को।"

धीमी मन्थर गति से बजरा घाट की ओर बढ़ रहा था। कितनी सारी नावें थीं एक साथ ! किसी में गाती-बजाती स्त्रियाँ, किसी में 'गंगामैया की जय, जमुनामैया की जय' से आकाश गुँजाते यात्री, जल में बहती कुम्हलायी पुष्पमालाएँ, चीर और पत्ते।

कली और विवियन को भी आण्टी ने ज़बर्दस्ती डुबकियाँ लगवा दी थीं।

"ऑल योर सिन्स इन द होली गैंजेज़," उन्होंने मुसकराकर कहा तो कली का उत्फुल्ल चन्द्रमुख जैसे क्षण-भर को कुम्हला गया था। तब से वह अनमनी-सी बजरे पर बैठी कभी गहरे पानी में कुहनी तक हाथ डुबोती हुई सोचने लगती, कभी स्वयं ही अपनी बेचैनी की क़ैफ़ियत ढूंढ़े नहीं ढूंढ़ पाती। क्या यह पतितपावनी सर्वतीर्थमयी भागीरथी का प्रभाव था? क्यों उसकी अन्तरात्मा बार-बार नंगी होकर उसे आज ऐसे लज्जित कर रही थी।

खचाक् से बजरा आकर नियत तख्ते से टकराया और वह अचकचाकर तटस्थ हो गयी। विवियन भी आँखें मलती उठ बैठी।

"मुझे तो अच्छी खासी झपकी ही आ गयी थी। लगता है इस बार साइमन की स्पीड कुछ धीमी पड़ गयी थी—तीन बज गये हैं आण्टी।"

"कोई बात नहीं, चलो अब आराम से बैठकर तिलक लगवायेंगे और फिर गर्म-गर्म कचौड़ियाँ। इन कचौड़ियों की काल्पनिक सुगन्ध को साल-भर से सूँघती आ रही हूँ। आज तुम मुझे नहीं रोक पाओगी विवियन।"

कली और विवियन का हाथ खींचती आण्टी, लकड़ी के चौड़े तख्त पर पालथी मारे बैठे एक गोल-गाल, चिकने-चुपड़े चेहरेवाले पण्डे की छतरी के सामने खड़ी हो गयीं। "खूब बढ़िया चन्दन की बुंदकियाँ लगाना पण्डाजी, पिछली बार तुम्हीं से तिलक लगवाया था, याद है ना?"

"वाह, वाह, याद क्यों नहीं होगी मेम साहब," किसी गाइड-सा वाचाल पण्डा, एक साथ दो सुन्दरी कबूतरियों को हथेली पर बैठते देख निहाल हो गया। "इस बार मेला कुछ जमा ही नहीं," वह कहने लगा, "न जाने कहाँ-कहाँ से भुखमरे तीरथजात्री परयागराज में आकर जुटने लगे हैं। चन्दन-रोली भी घर से साथ लेकर चलते हैं। सुबह से बैठा हूँ और अबतक कुल जमा सात त्रिपुण्ड बनाये हैं। हाँ बेटी, कौन-सा त्रिपुण्ड बनवाओगी, वैष्णवी?"

अनजान-सी कली ने अपनी बड़ी आँखें आण्टी की ओर उठा दीं।

"हाँ-हाँ, पण्डाजी, वही, ओवल शेपवाला बड़ा फबेगा इसके चेहरे पर। क्यों है ना?" आण्टी बड़े उत्साह से तखत के कोने पर जम गयीं।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं," पण्डाजी ने अपने घुइयाँ के-से चौड़े पत्तों-सी हथेलियों में कली का दुधमुँध चेहरा थाम लिया, "एकदम बाल बैरागिन का चन्द्रमुख है माता।"

घुटने टेककर बैठी कली के ललाट पर पण्डे की मलय-रोली की कटोरियों में डूबती तूलिका, चिड़िया के पंख से दी गयी गुदगुदी की-सी सिहरन देने लगी। कैसा विचित्र अनुभव था यह भी।

जिसने विदेश के अनेकानेक 'बोटीक' को अपनी उपस्थिति से धन्य किया था, वर्ल्ड फ़ेयर के इण्डियन पैवेलियन में जिस सुरसुन्दरी की एक झलक देखने को जुटी

विदेशी भीड़ अपनी सारी सभ्यता, शिक्षा एवं सुरुचि ताक़ में धर सहसा देशी नौटंकी की सस्ती भीड़ की-सी ही सीटियाँ बजाने लगती थी, वही आज एक अपढ़ पण्डे के सम्मुख गँवारू बाल वैष्णवी की ही भाँति घुटने टेककर बैठ गयी थी।

कण्ठ में झूलती चवन्नी की तुलसीमाला, खुले गीले बालों से टप-टपकर टपकता पानी, दो कर्णचुम्बी आँखों के बीच सुभग नासिका से प्रशस्त चिकने ललाट तक खिंचा वैष्णवी त्रिपुण्ड ! क्या रसशास्त्र के पृष्ठ यहीं साकार नहीं हो गये थे ? आण्टी मन्त्रमुग्ध होकर उसे एकटक देख रही थीं। बहुत पहले कमिश्नर शर्मा के साथ वे खजुराहो की ऐतिहासिक यात्रा पर गयी थीं। आज उन्हें बार-बार यही लग रहा था कि उसी खजुराहो के अस्सी चन्देल मन्दिरों से किसी सुरसुन्दरी की मूर्ति जीवन्त होकर पण्डे से त्रिपुण्ड लगवा रही है।

"द सेम अनसोफ़िस्टिकेट गर्ल ऑफ़ खजुराहो," वह मन ही मन ऐसे बुदबुदाने लगीं जैसे वहाँ और कोई भी न हो, "ठीक जैसे उन मन्दिरों की नग्न मूर्तियाँ, अंग के एक-एक मोड़-मरोड़ के साथ, अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन अनजान बनी करती दर्शकों को मोह लेती हैं, कभी हाथ में दर्पण लेकर, कभी गेंद से खेलकर, कभी भव्य ग्रीवा के मरोड़ से—शी डिस्प्लेज़ हर न्यूडिटी फ़्रॉम ऑल साइड्स आफ़ दें बॉडी।"

"क्या बक रही हो आण्टी ? अब उठ भी कली, एकदम हरद्वार की जोगन लग रही है।" विवियन उकताकर उठ गयी।

हाथ में दर्पण लिये अपने चेहरे की बदली रंगत देखकर कली खिलखिलाकर हँस ही रही थी कि किसी ने पीछे से आकर उसकी पीठ पर ठण्डी हथेली धर दी।

"हाय मैं मर गयी, ज़रा देखो तो इसे बीबीजी, एकदम तुम्हारा ही-सा त्रिपुण्ड लगवाकर कैसी बनी है ? आज ही तुझे याद कर रही थी और तू मिल गयी।"

कली हड़बड़ाकर उठी और उसके हाथ से पण्डाजी की दो-तीन रंग-रोली-भरी कटोरियाँ टन-टन करती लुढ़क गयीं।

"नारायण, नारायण, सवा रुपये का चन्दन गिरा दिया, बेटी !" वह बड़बड़ाने लगा।

त्रिपुण्ड चर्चित चेहरा लिये कली अम्मा से लिपट गयी। वह अब भी उस की बदली सूरत देखकर हँसे जा रही थीं।

"हाय अम्मा, आप यहाँ कैसे आ गयीं ?"

"जैसे तू आ गयी," अम्मा ने हाथ की गीली धोती तखत पर रख दी।

"हमसे तो तू कह के आयी थी कि लखनऊ जा रही हूँ और यहाँ बैरागन बनी हमसे भी पहले गंगा नहा ली," अम्मा ने हँसकर चुटकी ली और कनखियों से कली के साथियों की विचित्र भीड़ को देखा। हतप्रभ-सी आण्टी सकपकाकर एक ओर खड़ी हो गयी थीं, उस तेजस्वी नवागन्तुका के स्निग्ध ललाट पर चमकती रोली के सामने उन्हें अपने ललाट पर बना त्रिपुण्ड एकदम नक़ली बनकर चुभने लगा।

"बीबीजी बहुत दिनों से आग्रह कर रही थीं कि इलाहाबाद आकर गंगा नहा लूँ, पर गृहस्थी में ऐसी फँसी कि चौदह साल से बीबीजी यहाँ हैं और आज आ पायी हूँ।—लल्ला छुट्टी पर आया था, उसे ही ज़िद कर खींच लायी। पर मरी, तू कैसे आ गयी यहाँ ?"

"यह मेरी सहेली है अम्मा, विवियन, और ये इसकी आण्टी हैं, यह भाई—इसी ने बड़ी ज़बर्दस्ती यहाँ रोक लिया।"

हठात् सहेली के किरण्टी नामोच्चार और आण्टी को लाल पैंट देखकर अम्मा की विधवा बीबीजी भैंस-सी बिदक उठीं। "चलो भी बोज्यू, नहा-धोकर अभी तिल-पात्र किया है, कहीं फिर न नहाना पड़े।" एक क्षण में ही उस फ़्रस्ट्रेटेड बाल विधवा का कर्कश स्वभाव पानी में तेल-सा तैरने लगा। वह बड़बड़ाती आगे बढ़ गयी, "इन मरे मुस्टण्ड पण्डों की भी मति मारी गयी है, धेले-पैसे के लिए धरम भरस्ट हरामी ईसाइयों के कपाल रँग रहे हैं।" आण्टी ने सुनी-अनसुनी कर बड़ी नम्रता से दोनों हाथ जोड़कर अम्मा का अभिवादन किया, पर विवियन का चेहरा अपमान से तमतमा उठा।

"इनके कहे का बुरा मत मानना बेटी," अम्मा ने खिसियाकर कली के कन्धे पर हाथ धर दिया, "पता नहीं क्या देखकर तुझे ईसाई समझ बैठीं। मैं कार से ही आयी हूँ। परसों चली जाऊँगी। तू साथ चलना चाहे तो चल ना!"

"पर अम्मा, हमें दो-तीन दिन नवीन चाचा के यहाँ लखनऊ भी तो रुकना है," अचानक कली की दोनों आँखें, अम्मा के पीछे आकर खड़े हो गये लम्बे साँवले युवक की ओर उठ गयीं।

अच्छा तो यही था अम्मा का लल्ला! अबतक कहाँ छुपा था यह ? क्या पेड़ की डाल से अचानक कूदकर खड़ा हो गया ?

"कैसा हिंट दे रहा था ससुरा, इतना भी न समझे ऐसी थिक स्किंड गैंडे की खाल नहीं है कली की।"

स्पष्ट था कि लखनऊ के दो दिन के सम्भावित पड़ाव के उल्लेख से वह कली को सहमाना चाह रहा था।

एक बार कली के जी में आया वह हँसकर कह दे, "तो क्या हो गया अम्मा, मैं भी दो-तीन दिन नवीन चाचा के यहाँ रुक जाऊँगी!" पर आँखें चार होते ही उस का चेहरा विवर्ण हो गया।

केवल धोतीके परिधान के ऊपर पॉलिश की गयी टीक लकड़ी-सी चमकती नग्न चौड़ी छाती, किसी अरण्य जनशून्य वन में धूप सेंकते नरव्याघ्र की-सी किसी को कुछ न समझनेवाली तेजस्वी आँखें, और पतले क्रूर अधरों का व्यंग्यात्मक बंकिम स्मित।

पहले कुछ क्षणों तक जैसे वह रोली, त्रिपुण्ड और खुले गीले बालों के बनावटी

जाल में उलझकर रह गया, पर फिर वही व्यंग्यात्मक बंकिम स्मित, तीखी पतली छुरी की भाँति कली के धड़कते कलेजे में मूठ तक धँस गयी।

"हैवंट वी मेट बिफ़ोर ?" उसने हँसकर पूछा। चौड़ी सिल-सी छाती पर पड़ी यज्ञोपवीत की पीली डोरी कली के गले में फाँसी का अदृश्य फन्दा बनकर लटक गयी।

"नहीं तो," कली ने दूसरे ही क्षण अपने को सँभाल लिया। एक बार वह फिर वही दूधिया भोले चेहरे की कली बन गयी जो आबकारी के वरिष्ठ अधिकारियों को अपनी नन्हीं तर्जनी पर बड़ी सुगमता से नचा लेती थी।

"कुछ चेहरे ऐसे ही होते हैं सनी," आण्टी हँसकर कहने लगी, "जिन्हें देखकर हमेशा यही लगता है कि उन्हें कहीं देखा है, शायद हमारी कली का चेहरा भी ऐसा ही है। मैंने भी जब इसे पहली बार देखा तो दिन-भर याद करती रही—या मेरे मसीह, कहाँ देखा होगा मैंने इसे !"

"चलो अम्मा, बड़ी बुआ बहुत आगे निकल गयी हैं।" बिना कुछ कहे ही वह दम्भी युवक, माँ की गीली धोती उठा, एक बार भी बिना विदा की कर्टिसी किये चलने लगा।

"चलूँ बेटी, अब कलकत्ते में ही फ़ुरसत से बात करूँगी।" बहुत आगे निकल गये पुत्र के साथ चलने को अम्मा लम्बी-लम्बी डगें भरती निकल गयीं तो विवियन बोली, "ब्लास्ट हिम, क्या इन्हीं के साथ तू रहती है कली ? बाप रे बाप, इससे तो कलकत्ते के चिड़ियाघर के शेर-पिंजरे में रहने क्यों नहीं चली जाती ? क्या करते हैं ये हज़रत ? समझते तो अपने को बहुत कुछ हैं।"

"हूँ, एम्बेसी में हैं, सुना। मैं तो इन्हें आज ही देख रही हूँ और कहता है कि हम कहीं मिले हैं माई फ़ुट !" कली मुसकराकर विवियन की बाँह पकड़कर चलने लगी।

बॉबी के जी में आ रहा था, वह लपककर कली के बालू में पड़ते चरण-चिह्नों को चूम ले। अचानक उस पिकनिक की सलोनी साँझ में मूसरचन्द बनकर कूद गये उस सुभग व्यक्तित्व के स्वामी को देखकर बॉबी का चित्त किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा था। इसी के गृह में कली पेइंग गेस्ट बनकर रहती है। फिर बॉबी के लिए आशा ही क्या रह जाती थी ? पर चलो अच्छा हुआ। पहली ही मुलाक़ात में दोनों ने नंगी तलवारें खींच ली थीं।

"मैं तो कहता हूँ आप ऐसे नैरो माइण्डेड लोगों के बीच में रहिए ही मत मिस मजूमदार", बॉबी लपककर कली के क़दम से क़दम मिलाता, फ़ौजी मार्च-सा करने लगा, "आपने सुना ना, वह ऊँचे दाँतोंवाली औरत क्या कह रह थी ? ईसाई क्या तिलक नहीं लगा सकते ? अभी पिछले ही महीने मैंने बनारस में कितने ही अमरीकियों को धोती, कुरता पहने त्रिपुण्ड लगाये घूमते देखा है।"

"मारो गोली, हमें क्या लेना-देना ! हम वहाँ रहते ही कहाँ हैं," कली हँसकर कहने लगी, "महीने में पचीस दिन तो बाहर रहती हूँ।" पर बँगले में पहुँचकर, जब कली के पार्श्व में लेटी, दिन-भर की थकी विवियन नींद में डूब गयी तो वह बड़ी देर तक करवटें बदलती रही ।

कैसा आश्चर्य था कि क्षण-भर की भेंट को भी वह व्यक्ति नहीं भूल पाया था ! पर स्वयं वह शायद उसे पहले बड़ी देर तक नहीं पहचान पायी थी और यदि वह कुछ नहीं कहता, तो शायद पहचानती भी नहीं । धोती की लाँग लगाये इस व्यक्ति में, और विदेशी वेशभूषा में सँवरे उस साँझ के धुँधलके में मिले उस व्यक्ति में क्या धरती-आकाश का अन्तर नहीं था ?

फिर भी वह सन्ध्या शायद पलक झपकाते ही उसके लिए घातक बन सकती थी ।

कली की ही भाँति एक व्यक्ति और भी वैसी ही करवटें बदल रहा था। कर्नलगंज में, बुआजी का अपना पक्का मकान था। इलाहाबाद के अधिकांश पर्वतीय परिवार कर्नलगंज ही में बसे थे। उन्हीं मुर्ग़ी के दरबों के-से, छोटी-छोटी खिड़कियों, सँकरे द्वारों और सामने खुले, निर्लज्जता से गंधाते संडासों के बीच बुआजी का लाल ईंटोंवाला मकान छोटी-मोटी हवेली-सा ही दीखता था। नीचे की तीन-चार कोठरियों में दर्ज़ी, लांड्री और हलवाई की दूकानों से ही काफ़ी किराया आ जाता था। फिर बुआजी अकेली जान थीं, उस पर वर्षों से धेला-पाई दाँत से पकड़कर सेंतती चली आ रही थीं । मकान के ठीक नीचे के कमरे में आटे की एक विराट् चक्की दिन-रात कोयल-सी कुहुक मारती, मनों ज्वार, चना-गेहूँ पीसती रहती । और उसी के निरन्तर सहवास का प्रभाव शायद बुआ की तीखी जिह्वा पर भी रिस गया था । कभी महरी, कभी किरायेदार, कभी जमादारनी को वे बेमतलब अपने दंगल पर खींचकर भिड़ती रहतीं ।

"मुझे एकदम ही राँड बेसहारा समझ लिया है इन हरामियों ने, चार महीने से इस सण्ड-मुसण्ड हलवाई ने एक पैसा किराया नहीं दिया है। क़सम खाकर कह रही हूँ बोज्यू," वे दो दिन के लिए मिलने आयी गऊ-सी सीधी भावज को, दंगल पर खींचकर सुना रही थीं, "तुम लोगों ने तो मेरी ओर से आँख ही मूँद ली । तभी तो ये मुसण्डा शेर बन गया है। कभी-कभी जी में आता है, इस गैंडे को इसी की कड़ाही में खोये के साथ भूंज दूँ ।"

बहुत बड़ी कड़ाही में स्तूपाकार खोये को भूंजते मोटे हलवाई के कानों में शायद बुआ के हृदयहीन प्रस्ताव की भनक पड़ गयी थी। वह वहीं से हँसकर कहने लगा, "ज़रूर भूंज डालो बुआजी, पर कड़ाही ज़रा बड़ी चढ़ाना। ऐसा न हो कि नीचे गिर पड़ूँ !"

"देख रही हो ना बोज्यू, मरा कैसी ठिठोली कर रहा है मुझ राँड रँडकुली औरत से, जैसे मैं इसी की भौजी लगती हूँ।" पर बुआ का रुँधा कण्ठ-स्वर कुछ ही क्षणों बाद बदलकर मीठी हाँक लगाने लगता, "अरे राधाकिसन, मरे आधा सेर उसी खोये की बरफ़ी भिजवा देना ऊपर, जो अभी भूंज रहा था। जिस दिन खाने के बाद मीठा ना खाऊँ लगे है खाना ही नहीं खाया। ऐसा मिष्ट दन्त है निगोड़ा।" "अभी लो बुआ, आध सेर क्या तीन पाव तौलकर भेजता हूँ," और किराये की एक छोटी क़िश्त राधाकिसन फ़ौरन ऊपर भिजवा देता। फिर शायद सन्धिपत्र पर दोनों के हस्ताक्षर भी हो जाते, क्योंकि सबसे ऊपर की मंज़िल पर लेटे प्रवीर के कानों में, हलवाई के साथ देर से चल रहे बुआ के वाग्युद्ध की बकर-बकर नहीं सुनाई देती। कुछ देर तक वह बुआ का कर्कश कण्ठस्वर, चक्की की घर्र-घर्र और अम्मा की नरम आवाज़ सुनता रहा फिर सब शान्त हो गया। कितनी भोली थी अम्मा! कोई भी मीठी बातों के जाल में उन्हें फाँस सकता था। शायद ऐसी ही वाक्‌चातुरी और भोली सूरत से उस लड़की ने भी अम्मा को फाँसा होगा। नहीं, उसे धोखा नहीं हुआ था। ठीक ही कहा था उस सरदार ने, "एक बार उस चेहरे को देखने पर कोई भूल नहीं सकता भाई साहब।" दो वर्ष पहले, कुछ ही पलों तक देखे गये उस चेहरे को वह सच नहीं भूल सका था। तभी तो बहुरूपियों के चातुर्य से रँगे-पुते, ज़बर्दस्ती पावन बनाये गये त्रिपुण्डचर्चित चेहरे के बीच भी, उसने दो वर्षों की फ़रार अभियुक्ता को सहज ही में पकड़ लिया था।

उस बार अम्मा-बाबूजी को बिना सूचना दिये ही वह काबुल से कलकत्ता आ गया था। घर पहुँचा तो द्वार पर बड़ा-सा ताला लटक रहा था। पड़ोस के जस्टिस साहब से पता लगा अम्मा-बाबूजी दोनों जगन्नाथपुरी की रथयात्रा देखने गये हैं। हफ़्ता-भर बाद लौटेंगे। प्रवीर वैसे ही सूटकेस लटकाये लखनऊ चला गया था। नवीन कक्का उसके समवयसी थे और मित्र ही अधिक थे, चाचा कम। छोटी उमर में ही काकी क्षयरोग में जाती रहीं। फिर कक्का ने दूसरी शादी नहीं की। सेक्रेटेरियट में अच्छी नौकरी पा गये थे। नयागाँव में बाप की बनायी दर्शनीय दुमंज़िली कोठी थी। जब भी प्रवीर छुट्टियों में घर आता, नवीन कक्का से मिलने का प्रोग्राम अवश्य बनता। होने को तो पिता के चचेरे भाई थे, पर बहुत वर्षों तक दोनों भाई यह जान ही नहीं पाये थे कि नवीन कक्का उनके सगे चाचा नहीं हैं। कपड़ों के ऐसे शौक़ीन थे कि बस सारी तनख्वाह ही कभी-कभी कपड़ों और जूतों में फूँक डालते। ऐसा आमोदी स्वभाव कि गाने की महफ़िल जुटती, तो आधी-आधी रात तक चलती रहती। मलमल का चम्पे की कलियोंवाला गोटदार लखनवी कुरता, इकबर्रा पायजामा, कन्धे तक झूलते बाल और पर्शियन बिल्ले की नरम मोटी पूँछ-सी पुष्ट मूँछें। अनोखा व्यक्तित्व था नवीन कक्का का। भतीजा आता, तो नवीन कक्का उदार मेज़बान बनते, फ़ण्ड से रुपया निकाल

लाते। कभी कुल्हणों में कुल्फ़ी फ़ालूदा चला आता, कभी रवड़ी का दोना। पर उस वार जब प्रवीर लखनऊ पहुँचा तो दुर्भाग्य से नवीन कक्का को अचानक किसी आत्मीय का श्राद्ध करने पहाड़ जाना पड़ा। घर की चावी प्रवीर को थमाकर वे दूसरे ही दिन अल्मोड़ा चले गये।

दिन-भर उनकी अलभ्य पुस्तकों से ठसी आलमारियों को प्रवीर दीमक बना चाटता रहा था। सन्ध्या को वह अपने एकान्तवास से स्वयं ही ऊबकर वरामदे में खड़ा हो गया। इतने वर्षों में भी लखनऊ वहुत नहीं वदला था। नवीन कक्का के नयागाँव की उस गली की एक-एक रेखा वैसी ही धरी थी। सामने लगा छोटा-सा पार्क, पार्क से लगी वड़ी-सी कोठी, दायीं ओर मुड़ गयी गली के सिरे पर लकड़ी का वही टाल, और टाल के टीले पर बैठी हुई बीनती टाल की स्वामिनी वही बुढ़िया। दूसरी टेढ़ी-मेढ़ी गली जो सीधे अमीनावाद के चौराहे पर जाकर मिलती थी और जिस नुक्कड़ के विसाती के यहाँ से वह मीठी रंगदार गोलियाँ, पतंग और माँझा लाया करता था, वह अव भी वैसी की वैसी ही धरी थी। चुके से गालोंवाला वह बूढ़ा विसाती अब भी वही लँगड़ा चश्मा वैसे ही पीली डोरी से बाँधकर, कान पर अटकाये रहता था। हल्की बूँदावाँदी के साथ-साथ, अचानक उस दिन घर का फ़्यूज उड़ गया। हल्का अस्पष्ट धुँधलका चीरता, कभी-कभार एक-आध ताँगा निकल जाता और फिर सड़क सूनी हो जाती। नवीन कक्का स्वयंपाकी थे। भतीजे को भी वे अपना स्टोव, रसद सव कुछ निकालकर सौंप गये थे। पर प्रवीर उनकी अनुपस्थिति में नित्य क्वालिटी में ही जीम रहा था। वह सोच ही रहा था कि ताला मारकर गंज की ओर निकल चले कि वह लड़की वंगाल की आँधी के अप्रत्याशित झोंके की भाँति आकर उससे लिपट गयी थी।

"प्लीज़, मुझे कहीं छिपा दीजिए, वह मुझे मार डालेगा, पीछे-पीछे आ रहा है। देर मत कीजिए, प्लीज़।"

प्रवीर ठिठककर हतप्रभ-सा खड़ा रह गया।

कौन थी यह ? कौन पीछा कर रहा है, कहाँ छिपा दे ? कहीं यह नवीन कक्का की वही स्टेनो तो नहीं थी ?

सेक्रेटेरियट की एक ईसाई स्टेनों को लेकर नवीन कक्का को इधर खूब लपेटा जा रहा था। अम्मा ने ही उसे वतलाया था, "इससे तो नवीन कक्का कोई पहाड़ी सद्-गृहस्थ की विटिया ले आते। सुना दफ़्तर की वह छोकरी उन्हें खूब गोश्त खिला-खिला-कर भ्रष्ट कर रही है, नवीन के वहन-वहनोई सवको खिला-पिलाकर फांस लिया है छोकरी ने ! दुर्गी के बच्चे तो उसे अव मामी कहकर पुकारने लगे हैं, नवीन कक्का शायद स्वयं भी उससे विवाह करना चाहते थे, पर वृद्ध पिता ने आत्महत्या की लाल झण्डी दिखा दी थी।"

निश्चय ही यह वही होगी, पर शायद कुछ पूछने का न समय था, न उस

आँधी-सी आ गयी लड़की ने उसे अवकाश ही दिया। वह पत्ते-सी काँपती चली जा रही थी।

प्रवीर ने उसका एक हाथ खींचकर, नवीन कक्का के वारड्रोब में अपने ट्वीड के कोट के पीछे धकेल दिया, और स्वयं पीछा करने वाले रहस्यमय व्यक्ति को देखने बरामदे में खड़ा हो गया। उसे लगा, जैसे क्षणभर को उससे लिपटी वह काँपती लड़की, उसके शरीर पर तेज़ सुगन्ध की कोई अदृश्य सेंट की बोतल ही उड़ेल गयी है। ऐसे सुगन्धित प्रसाधनों का उसे अभ्यास नहीं था, इसीसे तेज खुशबू उसे और भी तेज लगी। "क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

आकस्मिक स्वर से चौंककर प्रवीर ने आँखें उठायीं। पर्दा उठाकर एक सहमा-सा लम्बा सरदार झांक रहा था।

"आइए," प्रवीर ने कुरसी खींच दी और बिना धन्यवाद दिये ही वह धम्म से बैठकर बुरी तरह हाँफने लगा।

बारह

"एक्सक्यूज़ मी—पर इधर कोई दुबली-पतली लड़की तो नहीं आयी ? बेहद दुबली, कन्धे तक कटे बाल, टेढ़ी माँग, बहुत बड़ी आँखें, हलकी गुलाबी साड़ी और...."

"जी नहीं," प्रवीर का संयत कण्ठ-स्वर स्वयं ही अनजान बना, उसके कानों से टकराने लगा।

"सचमुच ही पैरों में स्केटिंग व्हील बाँधकर भागती है वह शायद। ज़रा सोचिए इन लम्बी टाँगों को भी पछाड़ गयी !" वह हँसा। सरदार सचमुच ही साढ़े छह फ़ीट से कम नहीं था।

चमकता जूता, क़ायदे से पहना गया सूट और टाई, मोती-से चमकते दाँत, जो उसके हँसते ही अँधेरे चेहरे को अचानक जला दी गयी तेज़ पावर की बत्ती की भाँति उज्ज्वल कर उठे थे, पर जिसकी चाल-ढाल, फुर्ती और इकहरे शरीर की गठन से प्रवीर उसे युवक समझ बैठा था, दियासलाई के क्षणिक आलोक में उसका प्रौढ़ चेहरा देखकर वह दंग रह गया। सँवरी दाढ़ी के बाल खिचड़ी थे और सुदर्शन चेहरा झुर्रियों से भरने लगा था।

"वैरी स्ट्रेंज," वह कहने लगा, "मुझे दूर से बिलकुल यही लगा कि वह इन्हीं लोहे की छल्लेदार सीढ़ियों पर बिल्ली-सी कूदती चढ़ रही है। शायद धोखा हुआ हो—पर क्या आप मेहरबानी कर, मुझे एक बार अपनी कोठी का ओना-कोना देखने देंगे ?

वह जंगली बिल्ली की तरह कहीं भी छिप सकती है।''

"आप शौक़ से देख सकते हैं, पर पूरे घर का फ़्यूज उड़ गया है और मेरे पास टॉर्च भी नहीं है,'' प्रवीर ने कहा था। पर सरदार को जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वह छलनामयी कोठी से कहीं बाहर गयी है।

"मैं समझ रहा हूँ जी,'' वह बड़े खिसियाये स्वर में कहने लगा, "एक तो उचक्के की तरह आप के अनजान बँगले में कूद आया हूँ, उस पर ओना-कोना छानने के लिए आपकी इजाज़त माँग रहा हूँ। पर एक बार ढूँढ़ लूँ, तो शायद तसल्ली हो जायेगी,'' सरदार को जैसे उस दुबली लड़की को ढूँढ़े बिना चैन नहीं पड़ रहा था! वह प्रवीर के साथ, दियासलाई की तीलियाँ जलाता उचक-उचककर छत की बल्लियाँ तक छान आया। एक बार वारड्रोब के अधखुले पट की ओर पीठ कर, वह झुककर पलंग के नीचे झाँकने लगा, तो प्रवीर का कभी न धड़कनेवाला लोहे का कलेजा भी धड़क उठा था। कहीं उसे देख लिया, तो क्या कहेगा वह सभ्य सौम्य सरदार! वह प्रवीर जो कभी झूठ नहीं बोलता, एक अनजान रहस्यमयी छोकरी के लिए इतना बड़ा झूठ कैसे बोल गया?

सरदार एक बार फिर बाहर आकर हताश हो उसी कुरसी पर बैठ गया।

"क्या बताऊँ, भाई साहब, बात भी ऐसी है कि कहते भी शर्म से सिर झुक जाता है। हमारे आज़ाद हिन्दुस्तान में अब ऐसी लड़कियाँ भी जन्मने लगी हैं। क़रीब एक साल होने आया, मेरी बीवी शिमला अपनी बीमार माँ को देखने गयी। मैं फ़ौज में हूँ, मुझे ब्रिगेडियर वेदी कहते हैं,'' वह अपने इसी संक्षिप्त परिचय के साथ, तपाक से कुरसी से उछल, प्रवीर से हाथ मिला, फिर बैठकर कहने लगा था, "गुरु की मरज़ी ऐसी हुई कि माँ तो ठीक हो गयी, उसकी बीमारी का हाल पूछने गयी बेटी चल दी! एक कार एक्सीडेंट में ही मेरी बीवी का इन्तकाल हो गया। मैं लद्दाख में था, लड़की दिल्ली में मेरी माँ के पास थी और बेटा खड़गवासला में। दोनों को यही खबर देने मैं शिमले से लौटकर दिल्ली जा रहा था। चलने लगा तो सास ने मेरी बीवी का सारा गहना थमा दिया। मेरी बीवी को अपने गहनों से अजीब लगाव था! कितनी बार समझाया कि बैंक में रख दे, पर जहाँ भी जाती, उसका छोटा-मोटा लॉकर साथ ही चलता। अब आपसे क्या कहूँ, वैसे अनमोल हीरों का सेट शायद अब सवा लाख में भी नहीं जुटेगा। मेरी बीवी फ़िरोज़पुर के वेदियों की बेटी थी और मेरे ससुर लन्दन, कनाडा और अमरीका के गुरुद्वारों में प्रबन्धक रह चुके थे। पहले मैंने सारे गहने अपनी सास को लौटा दिये, "मेरा तो अनमोल हीरा चला गया, बीवी जी, मैं अब इनका क्या करूँ,'' मैंने कहा तो वे रोने लगीं—'तुम्हारी लड़की की सगाई हो गयी है, अब इनकी ज़रूरत पड़ेगी, बेटे।' और अटैची खोल उन्होंने मुझे पूरी लिस्ट से मिलान कर, एक-एक चीज़ समझा दी थी।

"ट्रेन चली, तो मैंने अटैची तकिये के नीचे दबा ली और लेट गया।''

"उस कूपे में मेरे साथ एक लड़की भी सफ़र कर रही थी। वही, जिसका पीछा करने मैं यहाँ तक भागता चला आया हूँ। पहले मुझे बड़ा इन्वैरेसिंग लगा, भाई साहब, इतना लम्बा सफ़र और साथ में अकेली वह जवान चुलबुली छोकरी। लड़की बेहद चुलबुली थी। कभी लेटती, कभी झटके से कटे बाल पीछे की ओर फेंकती, कभी खिड़की बन्द करती, कभी खोलती। मुझे लेटे-लेटे उसकी नटखट हरकतें देखकर अपनी लड़की तेजेन्दर की ही याद आ रही थी। वह भी एक जगह चुपचाप नहीं बैठ सकती, जैसे बीसियों पिस्सू एक साथ काट रहे हों। कुछ देर तक मैं उसे देखता रहा, फिर मेरी आँखें नींद से खुद-ब-खुद झपकने लगीं। एक तो कई रातों से नहीं सोया था। एक हलकी-सी झपकी के बाद मैंने करवट बदली तो देखा वह लड़की सीट से नीचे टाँग लटकाये, सिगरेट पर सिगरेट फूँके चली जा रही है। मैं उसे देखकर दंग रह गया। फ़ौज में रहा हूँ—वह भी लद्दाख, लेह और सिक्किम में, जहाँ सिगरेट और रम के बिना कोई भी फ़ौजी नहीं जी सकता। कैसे-कैसे चेन स्मोकर्स भी देखे हैं! पर यह बच्ची तो सबको पछाड़ रही थी। एक बार जी में आया पूछूँ, 'बेटी, क्यों अपने को ऐसे तबाह कर रही हो,' पर फिर चुप रह गया—आज-कल की लड़कियों का क्या ठिकाना, कौन बारूद के ढेर में आग लगाये। कहीं कुछ उलटा-सीधा कह बैठी तो खिसियाकर ही लम्बा सफ़र काटना होगा। अपनी ही तेजेन्दर को कभी टोक दूँ, तो वह टके-सा जवाब धर देती है। फिर यह तो अनजान, परायी बेटी थी।

"मैं करवट बदलकर सो गया। आधी रात को मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरे सिरहाने से कुछ खींच लिया है।"

"मैं हड़बड़ाकर उठा और स्विच टटोलने लगा। ऐसे मौक़ों पर हमेशा ट्रेन का स्विच, बाज़ीगर की काठ की कटोरियों के नीचे छिपी गोलियों की ही तरह, दायें-बायें लुकाछिपी खेलने लगता है। जहाँ हाथ टटोलता वहीं खिड़की की चिटकनी हाथ आती।"

किसी पेशेवर चतुर कहानी कहनेवाले की ही भाँति, सबसे रहस्यमय मोड़ पर आकर ब्रिगेडियर बेदी अचानक चुप हो गया था। प्रवीर को भी अब उस कहानी में रस आने लगा था।

"फिर?" न चाहने पर भी पूछ बैठा था।

"बस साहब, फिर बड़ी देर के बाद स्विच मिला, बिजली जलायी तो देखता क्या हूँ कि वही छोकरी हाथ में मेरी अटैची लिये दरवाज़े के पास खड़ी है। मैंने आव देखा न ताव, नीचे कूदा और लपककर उसकी बाँह पकड़ ली। 'ज़रा सोच-समझकर सरदारजी,' वह छोकरी बेहयाई से मुसकराने लगी, 'ऐसा न हो कि आप को अटैची छीनकर पछताना पड़े।'

"अटैची मेरी है, तुमने इसे मेरे सिरहाने से निकाला कैसे?" मैं शायद ग़ुस्से में बुरी तरह बौखला गया था। एक तो हाई ब्लड प्रेशर का मरीज़ हूँ, उस पर उस

छोकरी की चोरी और सीनाज़ोरी से मैं आपे से बाहर हो गया।

'देखिए', उसने ज़ंजीर की ओर हाथ बढ़ाया, 'आप ने अटैची छीनी और मैंने ज़ंजीर खींची। मैं एक ही चीख से पूरी ट्रेन के यात्रियों को यहाँ जुटा लूँगी और कहूँगी यह दढ़ियल मेरी इज़्ज़त पर डाका डाल रहा था। अटैची तो आप को मिल जायेगी, पर इज़्ज़त चली जायेगी। ऐसे मौक़ों पर लोग औरत की ही बात पर विश्वास करते हैं, मर्द की नहीं—ज़रा अपनी उम्र देखिए, इस उम्र में इस बेइज़्ज़ती और बदनामी के धक्के को क्या आप सह लेंगे?'

"ठीक कह रही थी छोकरी। शायद लोग उसी की भोली सूरत का एतबार करते। मैं अगर यह भी कहता कि मैं अपनी बीवी की तेरही कर लौट रहा हूँ, तब भी शायद मेरी दाग़ी गयी गोली मेरे ही सीने में लगती।

"बीवी नहीं है, इसी से खूबसूरत अकेली लड़की को देखकर बौरा गया है रँडुआ," शायद लोग यही कहते।

'क्या आप नहीं सोचते सरदारजी,' वह बहुत ही भोलेपन से ऐसे हँसने लगी, जैसे अभी उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हों, 'कि बजाय इसके कि मैं आप की इज़्ज़त पर डाका डालूँ, अच्छा यह हो कि खाली आप की अटैची पर ही डाका डाल कर चल दूँ!'

"मुझे तो जैसे लकवा मार गया था। इतने ही में शायद सिगनल न पाकर गाड़ी किसी वियावान जंगल के बीच खचाक से रुककर, सीटियों से कान फोड़ने लगी।

"मैं उसी की कही बातों में उलझा था, हो सकता था कि मेरी तेजेन्दर की महीना-भर पहले हुई मँगनी भी इसी झूठी बदनामी से टूट जाये। मैं सँभलता, इससे पहले ही वह बित्ते-भर की छोकरी मेरी अटैची लटकाये, मुसकराती उतरकर अँधेरे वियावान में खो गयी। गाड़ी जैसे उसी के लिए रुकी थी। मैं बुत-सा खड़ा ही रह गया—खुला दरवाजा, चलती गाड़ी के साथ फटाफट खुल-खुलकर बन्द हुआ, तो मुझे होश आया। पुलिस में खबर करता भी तो क्या होता! आज इतने दिनों बाद वह मुझे फिर चारबाग़ के स्टेशन पर दिखी। सामान वहीं छोड़ मैं इसके पीछे भागा पर देखिए ना, जिसके रिक्शा का इतनी दूर तक पीछा करता आया, वह इस गली में उतरते ही फिर जादुई परी-सी उड़न छू हो गयी। आज अगर मिल जाती, तो छोकरी की गर्दन वहीं दबोच देता।"

सरदारजी का ब्लड प्रेशर, उनकी लाल डोरीदार आँखों में उतर आया था।

"क्राइम डज़ नॉट पे ब्रदर," वह सिगरेट के टुकड़े को फेंककर उठ गया, "देख लीजिएगा एक-न-एक दिन कुत्ते की मौत मरेगी।"

"हो सकता है, यह आज की लड़की कोई और हो और आप को पीछा करते देख सहमकर भागने लगी हो। कभी-कभी कोई चेहरा धोखा भी दे जाता है।"

"नहीं जी, ऐसी बात नहीं है। वह चेहरा धोखा नहीं दे सकता। उसे एक बार देख लेने पर शायद आप भी नहीं भूल सकेंगे—वेरी ओरिजिनल आईज़—अब मैं चलूँ, सामान चौकीदार को सौंप आया था, आप का बहुत-बहुत शुक्रिया," सरदार ने बड़ी नम्रता से झुककर प्रवीर के दोनों हाथ पकड़कर फ़ौजी झटकों में झटका दिये थे। "आप का बहुत वक़्त ज़ाया किया, पर आप से सब बातें कहने से एकदम लाइट फ़ील करने लगा हूँ।"

चलते-चलते ब्रिगेडियर वेदी उसे अपने चमकते ब्रीफ़केस से निकालकर अपना चमकता विज़िटिंग कार्ड भी दे गया था।

उसके जाने के बाद भी प्रवीर कुछ देर तक कुरसी पर ही बुत-सा बैठा रहा। फिर उसे अपनी वारड्रोब में बन्द, उस दुवली-पतली लड़की की याद आयी, तो वह हड़वड़ाकर आलमारी खोलने लपका। उसी क्षण कमरा बिजली से जगमगा उठा! क्या पता इतनी देर तक गर्म कपड़ों के साथ बन्द लड़की दम-बम घुटकर बेहोश ही हो गयी हो।

कुछ देर तक तो अँधेरे की अभ्यस्त उसकी आँखें बिजली के आकस्मिक प्रकाश से चौंधियाकर रह गयी थीं। फिर ठीक से पलकें झपकाकर उसने देखा। जादूगर हुडूनी के से ही बाजीगरी चातुर्य से, बन्द वारड्रोब का द्वार खोल वह छलनामयी अदृश्य हो चुकी थी। पर गयी किधर से होगी?

पिछवाड़े का एकमात्र मार्ग नवीन कक्का स्वयं ही ताला मारकर बन्द कर गये थे। ऊँचे-ऊँचे रोशनदानों में कितनी ही लम्बी मानवी टाँगें क्यों न हों, कभी नहीं पहुँच सकती थीं। तब क्या वह छत की टंकी पर लगी पाइप को ही पकड़कर सर्पिणी-सी रेंग गयी थी।

और कहीं हाथ की पकड़ फिसलती तब! कल्पना से ही प्रवीर सिहर उठा था। वह निश्चय ही उसी पाइप लाइन को पकड़कर उतरी थी। क्योंकि टंकी के पास ही उस नाज़ुक छोटे पैर की एक वालिश्त-भर की लाल स्वेड की चप्पल औंधी पड़ी प्रवीर को मिल गयी थी। उसने चप्पल उठाकर उलट-पुलटकर देखी भी थी, फिर खीझकर नीचे सड़क पर फेंक दी थी।

क्या करेगा उस अनजान सिन्ड्रैला की चप्पल सेंत कर, उनकी चतुर स्वामिनी क्या सहज ही में पकड़ में आयेगी? नवीन कक्का से कुछ कहना व्यर्थ था। उन्हें प्रवीर जानता था। ऐसी जासूसी हरकतों में उन्हें वड़ा आनन्द आता था। शायद चप्पल उन्हें दिखाता तो वे पुलिस के कुत्तों को बुलाकर सुँघा भी देते और बेकार ही में एक तूफ़ान उठ खड़ा होता। फिर प्रवीर न जाने क्या सोचकर भागता, वारड्रोब में लटके अपने ट्वीड कोट की जेवें टटोलने लगा था। उसी में उसका बटुआ धरा था। क्या पता,

चलते-चलते छोकरी जेब ही काट गयी हो ! पर बटुआ ज्यों का त्यों धरा था।

नवीन कक्का लौटकर आये तो उसने उन से एक शब्द भी नहीं कहा था। कहता तो निश्चय ही कक्का उसी की खिल्ली उड़ाते। अस्पष्ट अँधेरे में जिन बहुत बड़ी सहमी तरल आँखों को उसने पल-भर को ही देखा था, आज संगम तट पर उन्हीं को उसने बड़ी सुगमता से पहचान लिया। कलकत्ता पहुँचते ही अम्मा को सावधान करना होगा। उनकी वातों से उसे ऐसा लगा था कि वह अज्ञात रहस्यमयी, अम्मा के दुख के क्षणों में उनकी बहुत अपनी बन गयी है।

जया को लेकर अम्मा इधर बहुत दुखी हो गयी थीं। माया भी ससुराल में बहुत प्रसन्न थी, ऐसी बात न थी। फिर भी उसका आनन्दी स्वभाव, अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता था। संयुक्त परिवार की वह भी बड़ी बहू थी। विवाह के पश्चात् एक दिन भी पति के साथ स्वतन्त्रता की मुक्त उड़ान में पर नहीं फड़फड़ा सकी थी, फिर भी वह माँ-भाई के पास पल-भर रो-धोकर अपनी वर्ष-भर की संचित व्यथा क्षण-भर में भूल-भालकर रह जाती थी। भाई काबुल से क्या-क्या लाया है, अम्मा ने उसके लिए कितनी नयी साड़ियाँ ली हैं, इनका सन्तोषजनक उत्तर पाते ही वह अपने श्वसुर-गृह की मर्मान्तिक पीड़ा को बड़ी सुगमता से पचा लेती थी। पर जया मायके में भी गुम-सुम रहती थी। पति का चंचल छिछोरा स्वभाव उस दम्भी गम्भीर लड़की को भीतर ही भीतर क्षय के घातक कीटाणुओं की भाँति घुला रहा है, यह प्रवीर मन ही मन खूब समझता था, दामोदर के सस्पेंशन की खबर पाते ही प्रवीर ने अपने सहपाठी मित्रा को पत्र भी लिखा था। सौभाग्य से वह होम डिपार्टमेण्ट में ही सेक्रेटरी के पद पर था। दोनों आई. ए. एस. में एक साथ ही निकले थे, फिर प्रवीर से उस की प्रगाढ़ मैत्री भी हो गयी थी। उसने प्रवीर के पत्रोत्तर में अपना ही दुखड़ा रोकर पन्ने रँग दिये थे।

"तुमने तो मेरी वही हालत कर दी है प्रवीर," उसने लिखा था, "कि आप मगन्ते बामना द्वार खड़े जजमान।" यहाँ की अफ़सरी में अब सिवाय काँटों के ताज के कुछ भी नहीं रह गया है। अफ़सरी कुरसी के नाम पर यहाँ कीलों से भरी, हठयोगी की सी कंटक-शैया मात्र रह गयी है। उसी पर दम साधे लेटा रहता हूँ। कब, एसेम्बली का कौन-सा ऊटपटाँग प्रश्न, किस उच्च पदस्थ अफ़सर के लिए विषबुझा घातक बाण बन बैठे, इसका ठिकाना नहीं, कुछ दिन पहले दुर्भाग्य से मेरी पत्नी ने मेरे एक धृष्ट चपरासी को क्रोध में आकर शायद कुछ बुरा-भला कह दिया था। फ़िलहाल उसी की मूँछों में ताव है, मेरी मूँछें नीची हैं। तुम ने लिखा है, 'तुम बड़े भाग्यवान् हो कि स्वदेश में नौकरी कर रहे हो, कम से कम आत्मीय स्वजनों का भला तो कर सकते हो।' तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर मुझे हँसी आती है, बड़ी अनिच्छा से ही तुम्हें उत्तर में, आज से अस्सी वर्ष पूर्व मेरीडिथ टाउन-शेंड की लिखी पंक्तियाँ भेज रहा हूँ—'वुड-यू लाइक टु लिव इन ए कंट्री व्हेयर ऐट एनी मोमेंट योर वाइफ़ वुड बी लाइबिल टु बी

सेंटेंस्ड ऑन ए फ़ाल्स चार्ज ऑफ़ स्लैपिंग ऐन आया टु थ्री डेज़ इम्प्रिजनमेंट !' स्पष्ट था कि, डूबते दामोदर को अब एकमात्र तिनके का सहारा भी वह नहीं पकड़ा सकता था। फिर भी उस अकर्मण्य निठल्ले व्यक्ति का निर्लज्ज आचरण देखकर प्रवीर दंग रह गया था। जहाँ जया एक कोने में दुबकी, सूजी आँखें उठाकर, घर आये भाई की ओर ठीक से देख भी नहीं सकी थी, वहीं दामोदर साले का गम्भीर स्वभाव जानकर भी अपनी वही सस्ती हरकतें दोहराने लगा था।

"क्यों साले साहब, कुछ एक-आध बोतल स्मगल कर लाये हो मेरे लिए ?" उस के आते ही दामोदर ने अपना पहला प्रश्न पूछकर बाँयीं आँख मींच ली थी।

दामोदर को शायद इस बार ससुराल में स्थायी घरजमाई बनने पर उतनी सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, फिर भी उसके चेहरे पर एक शिकन नहीं उभरी थी।

"अरे भाई प्रवीर, अब तुम से कुछ छिपा थोड़े ही होगा। माया-सी सतर्क प्रेसरिपोर्टर घर में रहने पर यही तो फ़ायदा है, क्यों है ना माया ?"

भाई के पास बैठी माया का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा था। कभी इसी सुदर्शन जीजा की ऐसी ठिठोली, उसके कुआँरे अल्हड़-जीवन के माघ को भी फागुन बना देती थी, आज वही जीजा उसकी आँखों में किरकिरी बनकर चुभने लगे थे।

"तुम्हारी तो बड़े-बड़े लोगों से जान-पहचान है। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे उबार ही लोगे, पर हमारी अम्माजी ने तो ऐसा पैंतरा बदला है कि बस ! कहाँ पान के पत्ते-से फेरे जाते थे और अब उन्हीं रियासती रजवाड़ों की हालत है कि रियासत है, पर प्रिवीपर्स छिना जा रहा है। नाम के अब भी जमाई राजा हैं। पर कोई एक प्याला चाय को भी तो नहीं पूछता।"

माया ही उस दिन उसे एकान्त में समझा गयी थी। जैसे भी हो दौरे से लौटते ही उस अम्मा की पाली गयी छोकरी को हटाना होगा।

"मैंने तो उसे नहीं देखा है। पर उसके सौन्दर्य ने इन दोनों की आँखें चौंधिया दी हैं। इनका भी क्या कोई ठिकाना है ! उसपर जीजाजी के रहते अम्मा को यह दुस्साहस हो कैसे गया ? जब देखो तब कली का ही बखान, सुनते-सुनते कान पक गये हैं। अपनी बेटियाँ तो जैसे एकदम ही परायी हो गयी हैं।"

जिस अपरिचिता ने गृह की रही-सही शान्ति भी नष्ट कर वैमनस्य की अदृश्य दीवार की नींव रख दी थी, उसे निकाल बाहर न करनेपर, शायद गृह की उलझी गुत्थियाँ और भी उलझ जायेंगी—यह प्रवीर समझ गया था। कलकत्ते पहुँचनेपर दूसरे ही दिन उसने माँ को एकान्त में बड़ी देर तक पूरी बातें समझाने की चेष्टा की, पर वे बार-बार अपनी ही बात दोहराती रही थीं, "जिसे मैं मिन्नत कर, मना कर, इस घर में लायी थी, उसे आज बिना किसी बात के ही कैसे जाने को कह दूँ ? और फिर बेटा लाख हो, दामोदर क्या इतना ही गया बीता है, जो अपनी बिटिया की उमर की लड़की के पीछे भागेगा ?"

"ठीक है अम्मा, तुम नहीं कह पाओगी, तो मैं ही उससे कह दूँगा—कलकत्ते में क्या उसे कहीं और रहने को एक कमरा नहीं जुट सकता ?"

जहाँ एक गृह में कली के आने से पूर्व ही उसे भगाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा था, वहाँ एक दूसरा सीमित परिवार, बिदा लेती कली का स्नेहपूर्ण आग्रह से बार-बार रोकता जा रहा था। न जाने कितनी बार कली का रिज़र्वेशन कैन्सिल करा दिया गया, छोटा-सा बिस्तरबन्द दो बार बँधकर फिर शिथिल हो खुल गया।

एक सप्ताह के आमोद-प्रमोद एवं सर्वथा नवीन परिवेश में बीते मीठे दिनों की स्मृति कली मुट्ठी में कसकर सँजोये लिये जा रही थी।

ट्रेन छूटने लगी, तब भी आण्टी अपना उदार प्रस्ताव दोहराती जा रही थीं, "अभी भी मान जाओ कली, नौकरी क्या यहीं नहीं मिल सकती ? कमिश्नर शर्मा हमेशा मेरी मुट्ठियों में बन्द रहते हैं। कहीं भी रखवा देंगे !"

उत्तर में कली फिकफिक कर हँसती रही थी। धीरे-धीरे तीनों स्नेही चेहरे ओझल हो गये। कल वह इस समय कलकत्ता पहुँच चुकी होगी। फिर वही मनहूस ज़िन्दगी ! विदेशी अतिथियों की लोलुप दृष्टि के चाबुक की मार के नीचे, फिर उन्हें वही श्मशानघाट, अवधूतों के अड्डों की सैर करा, धतूरा, चरस की दम जुटाने की अजीब ड्यूटी या विदेशी संगीत की धुन के साथ किसी टेक्सटाइल का निर्जीव विज्ञापन बनकर निरर्थक मुसकान बिखेर, दर्शकों को रिझाने की थकानप्रद क़वायद। घर लौटने पर अम्मा के विदेश से लौटे दम्भी पुत्र का नोटिस भी शायद उसे मिल जाये। पर कली घर पहुँची तो अम्मा परिवार सहित कहीं मिलने-मिलाने गयी थीं। अकेले बाबूजी बरामदे में आराम-कुरसी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। कली की आहट पाकर उन्होंने चौंककर देखा।

"अरे, आ गयीं आप मिस मजूमदार ! प्रवीर की अम्मा तो आज सब को लेकर कहीं मिलने-मिलाने चली गयी हैं। आप ने तो खाना भी नहीं खाया होगा ?"

बाबूजी अखबार मेज़ पर रखकर उठ गये। उस स्नेहप्रवण गम्भीर व्यक्ति के सम्मुख मुखरा कली सकुच कर स्वयं ही सिकुड़ जाती थी। कई बार वह उन्हें टोकना चाहती थी, "आप कहकर क्यों मुझे शर्मिन्दा करते हैं बाबूजी, मैं क्या तुम्हारी बेटी नहीं बन सकती ?"

पर वह अपनी विवशता समझती थी। उसके अभिशप्त जन्म का इतिहास जानने पर क्या कोई सहज ही में उसे बेटी बना सकता था ! और फिर, यह पावन व्यक्तित्व, सरल, उदार बच्चे-सी निश्छल स्नेह-स्निग्ध हँसी, निष्कपट आँखों से फिसलता चश्मा, और संयमी जीवन का जीवन्त विज्ञापन-सा चमकता तेजस्वी माथा ! बूढ़ा होनेपर उन का तेज़-तर्रार बड़ा बेटा भी शायद ऐसा ही लगेगा। किसी जीर्ण मन्दिर के प्रांगण में पहुँचते ही जैसे पैरों में पड़ी चमड़े की चप्पल स्वयं ही चुभने लगती है—बिना खोले देवमूर्ति के दर्शन की स्वयं चित्त ही अनुमति नहीं देता, ऐसी ही बाबूजी को देखते ही

कली को लगता, उसकी अपावन उपस्थिति को उन्होंने किसी दैवी घ्राण शक्ति से सूँघकर, नथुने सिकोड़ लिये हैं। वह दूर ही खड़ी रह जाती, कुछ भी नहीं कह पाती, "नहीं, बाबूजी, आप मेरी चिन्ता न करें। मैं अभी दफ़्तर जा रही हूँ। वहीं कैंटीन में कुछ खा-पी लूँगी।"

कमरा खोलकर वह भीतर गयी और बहुत दिनों से बन्द कमरे की घुटन के एक भभाके ने उसे फिर बाहर धकेल दिया। लगता था बिजली के झटके से कोई अभागी छिपकली ही मरकर सड़ गयी थी। या शायद कोई मरा चूहा कहीं दबा रह गया था। नाक पर रूमाल रखकर, वह बड़े दुस्साहस से आगे बढ़ी और लपककर खिड़की खोल दी। दुर्गन्ध के सूत्र को पकड़कर उसने बिजली के तार से अटकी गँधाती निर्जीव छिपकली को लकड़ी से कोंचकर बाहर फेंका, और एक अगरबत्ती जलाकर दीवार पर खोंस दी।

उस सूने कमरे में उसे आण्टी के स्नेही परिवार की स्मृति ने क्षण-भर को विचलित किया, फिर उसने हाथ की घड़ी खोलकर मेज़ पर धर दी। ऐसे ही समय गँवाने से काम नहीं चलेगा। नहा-धोकर मनहूस सूरत को सँवारना होगा। अपने क्लान्त चेहरे को दर्पण में देखकर वह मुसकरायी। आज ज़रा जमकर ही शृङ्गार करना होगा। संगम तट की जिस वैष्णवी के निराभरण सौन्दर्य को शक्तिशाली शत्रु ने देखा था, उसी की बासी रूपरेखा को फिर खींचने से काम नहीं बनेगा, इस बार मोर्चा ज़रा डटकर लेना होगा। कैसे ही वीर योद्धा की तलवार क्यों न हो, जब तक सान में धरकर असिधार पैनी न बनायी जाये, क्या शत्रु की छाती में कभी धँस सकती है?

तेरह

ड्रेसिंग टेबुल के सम्मुख खड़ी हो अपने चेहरे के दो-तीन आकर्षक क्लोज़अप देखकर उसने पहले अपनी सब से लुभावनी हँसी कण्ठस्थ कर ली। फिर कलिंग पिंस की हथकड़ी-बेड़ियों में देर से बँधे बन्दी केशगुच्छ को एक झटके से अपने सुडौल कन्धों पर झटका लिया। नहा-धोकर चेहरे पर ताज़गी आ गयी थी। तन-मन स्वयं ही एक अनजानी पुलक से भर उठा था।

"आप हमेशा बिना बाँहों के ब्लाउज़ ही पहना कीजिए मिस मजूमदार" कभी बॉबी ने कहा था।

"क्यों?" कली ने जानबूझकर भी अनजान बनने की चेष्टा कर मुग्ध बॉबी को उकसाया था। फिर अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनने में किस सुन्दरी को आनन्द

नहीं आता ?

"नहीं तो ऐसी सुन्दर वाँहों को देखने से संसार वंचित रह जायेगा", वॉवी त्रिभंगी भंगिमा में दीवार से सटकर गले का स्कार्फ़ ठीक करता मुसकराने लगा था।

"ओह, हमारे वॉवी के भी पेट में दाढ़ी उग आयी है! अरे मुए, तू ऐसे बढ़िया काम्प्लिमेंट देने कब से सीख गया!" आण्टी न जाने कहाँ से आकर, मुसकराती उसके पीछे खड़ी हो गयी थीं और लड़कियों की भाँति लजाता वॉवी पसीना-पसीना हो गया था।

उसकी नंगी वाँहों पर फिसलती वॉवी की मुग्ध सिंसियर दृष्टि ने कभी झूठी चापलूसी नहीं की होगी।

कली ने विना वाँहों का ही ब्लाउज़ पहन लिया। फिर ब्लाउज़ के बहुत नीचे तक खुले गले में आण्टी का दिया बघनखा पेंडेंट झुलाकर वह दोनों हाथ पीछे बाँधकर खड़ी हो गयी। दर्पण के प्रतिबिम्ब ने मुसकराहट का प्रत्युत्तर दिया, "बस ऐसे ही हाथ बाँधे खड़ी रहना और क़िला फ़तह!" कैसा सिम्बोलिक पेंडेंट लटका लिया था उसने? आण्टी को दिया कोरवेट का अलभ्य उपहार, जिसे चाहने पर वे किसी भी म्यूज़ियम में मुँहमाँगी बोली पर बेच सकती थीं।

"आण्टी, ऐसा रेयर बघनखा, सच, मुझे दे रही हो?" आश्चर्य से बड़ी-बड़ी आँखें फाड़ कली विश्वास से आण्टी को निहारती उनके गले में दोनों बाँहें डाल बच्ची-सी झूलने लगी थी।

"तुम्हीं तो कह रही थीं यह रुद्रप्रयाग के उसी खूंखार मैनईटर का बघनखा है, जिसने सत्रह गाँवों में आतंक फैलाकर दस औरतें, बीस पुरुष और न जाने कितने पाड़े निगल लिये थे।"

"यू आर राइट हनी," आण्टी ने अपने हाथों से क्लैस्प खटकाकर बघनखा कली की सुराहीदार ग्रीवा में झुला दिया था। "इससे सुन्दर म्यूज़ियम भला इसे और कहाँ मिल सकता था। अब यह बघनखा हमारी कली को दूसरे नरभक्षियों से बचाता रहेगा। कली, माई लव, इसके साथ हमेशा पीली साड़ी पहनना। एकदम कुमाऊँ की खूंखार शेरनी लगोगी...."

काले ज़रीदार चौड़े कन्ने की पीली गढ़वाली साड़ी कली ने कभी बड़े शौक़ से खरीदी थी। पर जब भी वह उसे पहन इंडियन पैवेलियन में मुसकराती खड़ी होती, विदेशी ग्राहकों की दृष्टि दूकान से हटकर दूकान की स्वामिनी पर ही जड़ जाती। दो बार उसने वह साड़ी पहनी थी और दोनों ही बार खड़ी-खड़ी वह विदेश के टके में दो बिकते, सस्ते विवाह-प्रस्तावों को हँस-हँसकर अस्वीकार करती रह गयी थी।

आज कली ने सूटकेस के अतल तल से वही मारात्मक साड़ी निकाल ली। अफ़ीम के विष को सम्पूर्ण रूप से घातक बनाने के लिए लोग, सुना है, अचार का तेल मिलाकर चाटते हैं। आज यह बघनखा ही उसके लिए अचार का तेल बनेगा। यत्न

से पहनी गयी पीली साड़ी का चौड़ा ज़रीदार काला आँचल पीठ पर फैल गया। नग्न सुडौल बाँह में पड़ा साँप के मुँह का मोड़दार बाजूबन्द अब पीछे खड़े शत्रु को अनायास ही डस सकता था, और यदि कहीं शत्रु से आमने-सामने मुठभेड़ हो गयी तो आण्टी का अपूर्व बघनखा चतुर कपटी अफ़ज़ल ख़ाँ-से सशक्त शत्रु का भी पेट फाड़कर रख सकता था।

आज वह भी देख लेगी कि कौन अफ़ज़ल ख़ाँ उससे बचकर निकल सकता है!

"अम्मा कबतक आयेंगी बाबूजी?" उसने कमरे की खिड़की से ही झाँककर पूछा। अपनी उस भड़कीली, बड़े छलबल से पहनी गयी साड़ी में वह बाबूजी के सामने जाकर क्या खड़ी हो पाती?

"आती ही होगी बेटी, चार बजे उन सबको फिर अलीपुर जाना है।"

बड़ी देर तक कली अपने कमरे की एकमात्र कुरसी पर मूर्ति-सी स्थापित बैठी रही थी, जिससे साड़ी की एक भाँज भी इधर-उधर न हो। उसे स्वयं लग रहा था कि वह प्रसिद्ध रंगमंच की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किये जा रहे किसी बहुचर्चित नाटक में महत्त्वपूर्ण नायिका का अभिनय करने के लिए सजी-धजी बैठी है, और किसी भी क्षण परदा उठ सकता है। दर्शकों में जिस कला-समीक्षक की आँखें वह बाँधना चाहती है, हो सकता है, वह अभिनय समाप्त होने पर दर्शकों के साथ तालियों की गड़गड़ाहट में योगदान देकर उसे आकाश में चढ़ाकर रख दे, और हो सकता है कि उसके सस्ते अभिनय का प्रपंच पकड़ लेनेपर, उसे 'हूट' कर मिट्टी में मिला दे।

हर कार की आवाज़ के साथ उसका धड़कता कलेजा मुँह को आ रहा था। साढ़े दस बज चुके थे और ग्यारह बजे उसे दफ़्तर पहुँचना था। भाड़ में जाये अफ़ज़ल ख़ाँ। वह द्वार पर ताला मारकर गेट से बाहर निकल ही रही थी कि नयी फ़ियेट उससे सटकर भीतर चली गयी। गाड़ी का छोटा कलेवर ठसाठस भरा था—अम्मा, उनके दोनों दामाद, दोनों पुत्रियाँ और स्वयं चालक बना काबुलीवाला!

वाह-वाह, क्या बढ़िया नाम सूझ गया था अचानक! स्वाभाविक स्वच्छ हँसी का दर्पण चमकाती कली घर लौटे परिवार का स्वागत करने पलट गयी।

"अम्मा," गेट से ही उसने पलटकर हाथ हिलाया और अम्मा को उनकी पोटली सहित चुम्बक की भाँति खींच लिया।

"अरे ले, तू कब टपकी? जब देखो तब छप्पर फाड़कर ही टपकती है तू! और आते ही फिर कहाँ चल दी?"

अम्मा उसके पास पहुँचकर उसकी दमकती साड़ी को देखने लगीं। ऐसे सज-धजकर तो लड़की कभी दफ़्तर नहीं जाती थी। "क्यों बेटी, आज कहीं दावत-वावत खाने जा रही है क्या?" बड़े स्नेह से अम्मा ने उसकी पीठ थपथपाकर पूछा।

"नहीं अम्मा," कली हँसी, "आज अपनी दफ़्तरी दावत खाने जा रही हूँ।" स्वर को उसने जान-बूझकर ही अवरोह पर खींच लिया, जिससे मोटर की टंकी का पट उठाये उसे ठीक करने को झुका गम्भीर चालक भी सुन ले। "न जाने आज खाने को क्या-क्या मिले अम्मा—डाँट-फटकार और धमकी। बड़े साहब से बिना पूछे ही इतनी लम्बी छुट्टी लेकर इधर-उधर घूमने का फल चखने जा रही हूँ।"

जया एक बार तीखी दृष्टि से उसे देखकर भीतर चली गयी थी। दामोदर की निर्लज्ज मुग्ध दृष्टि का चाबुक सड़ासड़ कली की अधनंगी पीठ पर पड़ने लगा था। नवीन उस पेशेवर सुन्दरी मॉडल की छवि को देख खुला मुँह बन्द करना भी भूल गया। अपनी दिन-भर पहनी गयी सिलवट पड़ी साड़ी की ज़रीदार कन्नी को हाथ से ही ठीक करती अम्मा की पुत्री माया बनावटी हँसी की अभ्यर्थना बिखेरती उसकी ओर बढ़ आयी।

"अम्मा तो दिन-रात आप ही का बखान करती रहती हैं—बड़ी इच्छा थी आपसे मिलने की!" पर सुन्दर चेहरे की बनावटी हँसी स्वयं ही उसके कथन का स्पष्ट खण्डन कर रही थी, यह शायद अम्मा की अभिनय-कला में एकदम फूहड़ छोटी बेटी नहीं समझ पायी।

"मैं जिस दिन गयी, उस दिन आप शायद कहीं चली गयी थीं। अभी तो दफ़्तर जा रही हूँ, लौटते ही आपसे मिलने आऊँगी।" कनखियों से कली ने दम्भी चालक की पीठ को देख लिया। अभी भी टंकी में मूँड़ी घुसाये न जाने क्या कर रहा था—क्या एक बार भी नहीं देखेगा अभागा?

क्या अकड़ में तने कन्धे थे, और धूप का चश्मा लगाये पूरा इतालवी टूरिस्ट लग रहा था पट्ठा!

कली पैर की चप्पल का फीता ठीक करने झुकी ही थी कि परिचित मांसल कण्ठ-स्वर की खनक से थमक गयी।

पटाक से गाड़ी का बड़ी देर से उठा ढक्कन बन्द हुआ।

"मुझे घोष से मिलने जाना है अम्मा, खाना वहीं खा लूँगा। चार बजे गाड़ी लौटा लाऊँगा, तब तुम्हें अलीपुर ले चलूँगा।"

कली के साथ ही साथ गाड़ी भी गेट से बाहर निकली।

कली ने जान-बूझकर ही 'अरे' कहकर चलती गाड़ी का रास्ता काटकर अपने साथ ही उसे भी रोक लिया।

न चाहने पर भी अप्रत्याशित ब्रेक के झटके के साथ चालक ने पहिये के नीचे जान-बूझकर ही आ गयी दुस्साहसी सुन्दरी कली की हँसती आँखों को देख लिया। बिना कुछ कहे ही प्रवीर ने धीमी गति से गाड़ी फिर बढ़ा ली। कैटरपिलर की चाल से रेंगती गाड़ी के साथ-साथ नपे-तुले क़दम रखती कली भी हँसती चालक की खिड़की के पास खड़ी हो गयी।

"एक्सक्यूज़ मी," वह बोली तो प्रवीर का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा।

क्या खिलवाड़ कर रही है यह छोकरी! पीछे अम्मा खड़ी हैं, दामोदर है, नवीन, जया हैं—क्यों वह बार-बार जान-बूझकर उसकी चलती गाड़ी के सम्मुख चतुर हड़ताली कर्मचारियों की भाँति धरना दे रही है?

"आपने उस दिन पूछा था ना, कि हम शायद कहीं मिले हैं।" गाल के आकर्षक गढ़ों की गहराई में अब शक्ति के गर्व में झूमता मस्त से मस्त जंगली हाथी भी धोखे में फँसकर डूब सकता था।

"ठीक कहा था आपने। आपको तो नहीं, पर आपके इस ट्वीड कोट को देखकर मुझे भी यह बहुत पहचाना-सा लग रहा है। लगता है, जैसे बड़ी देर तक किसी आलमारी में लटका देखा है।"

इस बार की हँसी, वही हँसी थी, जिसे दर्पण के सम्मुख किसी ओजस्वी नेता के भाषण की ही भाँति बार-बार आवृत्ति कर कली ने चमकाकर कण्ठस्थ किया था।

प्रवीर ने फिर वही उदासीन दृष्टि अपने स्टियरिंग ह्वील पर बाँध ली, और धीमे से चतुर चालक की दक्षता से गाड़ी एक ओर निकाल तेज़ी से धूल उड़ाता चला गया।

कली मुसकराकर चलने लगी। उसका अनुमान ठीक था। इस व्यक्ति को इसकी अभद्रता का समुचित दण्ड देना ही होगा। अपने छोटे-से जीवन में उसने असंख्य पुरुष देख लिये थे और आज तक क्या एक भी ऐसा परिचित पुरुष था, जो उसके सौन्दर्य-स्तवन के लिए दोहरा न हो गया हो? 'कॉमन कर्टिसी' का भी तो एक महत्त्व होता है। देख रहा है कि वह पैदल चली जा रही है, पर फिर भी झूठे मुँह से भी क्या एक बार लिफ़्ट देने का भद्र पुरुषोचित प्रस्ताव नहीं रख सकता था? ऐसी नम्र मिष्ट-भाषी अम्मा का पुत्र ऐसा रूखा कैसे जन्मा?

उस दिन कली दफ़्तर पहुँची तो मि. शेखरन बहुत अच्छे मूड में थे।

शायद कली के द्वीपिचर्मपरिधान-सी पीली काली साड़ी की प्रशंसा ही नंगी बनकर उनकी क्षुधातुरा दृष्टि में स्पष्ट हो उठी। इतने दिनों तक यह लड़की नहीं थी तो लगता था दफ़्तर की रौनक़ ही चली गयी थी।

"बहुत लम्बी छुट्टी ले ली मिस मजूमदार, क्या बीमार पड़ गयी थीं?"

"जी हाँ," कली ने क्षण-भर में उत्फुल्ल चेहरे पर अपनी अपूर्व अभिनय-कला की तूलिका फिराकर म्लान बना लिया। "ज़बरदस्त फ़्लू हो गया था सर, अभी भी एकदम ठीक नहीं हो पायी। फिर भी आज चली आयी। सोचा, कहीं आप यह न समझ बैठें कि मैं बहाना बना रही हूँ।"

"नहीं-नहीं, भला मैं ऐसा क्यों सोचने लगा? आज तक क्या कभी आपने एक

दिन की भी छुट्टी ली थी ? यू नीडेड ए चेंज ! पर इधर आपके लिए बहुत-सा काम आ गया है।" वाचाल शेखरन की दृष्टि आकर्षक ग्रीवा को बाँधकर झूलते बघनखे पर निबद्ध हो गयी थी, यह कली ने देख लिया।

एक अजीब घुटन उसका गला घोंटने लगी। इस व्यक्ति ने दफ़्तर के अन्य कई कर्मचारियों की भाँति कभी उससे खुलकर प्रणय-निवेदन किया होता तो शायद कली को उसकी उपस्थिति में ऐसी घुटन नहीं होती। पर कुछ न कहकर भी उसके एक-एक अंग को अपनी प्रखर दृष्टि के अदृश्य तेज से झुलसाकर रख देनेवाले उस साँवले युवक-से दीखते कपटी प्रौढ़ के सम्मुख वह छुईमुई बनकर सिकुड़ जाती।

शेखरन कम्पनी के जिस उच्च सिंहासन पर आरूढ़ थे, उस गद्दी पर अन्य कोई भारतीय अफ़सर कभी नहीं बैठा था। उस विलक्षण व्यवसायपटु मस्तिष्क को स्वयं कम्पनी के प्रभु निकोलसन साहब आन्ध्रप्रदेश से ढूँढ़कर लाये थे। मि. शेखरन आई. सी. एस. थे, पर विवाहिता सुन्दरी पत्नी की जीवनावस्था में ही उन्होंने एक अन्य सुलोचना से विवाह कर लिया था। उस प्रेम का उन्हें बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा। किंग एडवर्ड की ही भाँति, उच्च नौकरी का राजसिंहासन त्याग कर वे विदेश चले गये थे। वहीं उनका परिचय निकोलसन साहब से हुआ और उस हब्शियों-से काले युवक के चेहरे पर चमकती दो बुद्धिदीप्त आँखों के आकर्षण ने उन्हें बाँध लिया। तब से मि० शेखरन उसी कुरसी पर जमे थे।

उनके दफ़्तर में एक मात्र क़ली ही रिसेप्शनिस्ट नहीं थी। अँगरेज़ों-से उजले रंग और कंजी आँखोंवाली कान्वेंट-शिक्षिता सुन्दरी पर्वत-कन्या मिस जोशी, उर्वशी-सी नृत्यप्रवीणा रंग-रस का जाल बुनती उड़ीसा की मिस पटनायक, जो रिसेप्शनिस्ट बनने से पूर्व देश-विदेश में जाकर अपने अपूर्व कुचीपुड़ी नृत्य से लक्ष-लक्ष विदेशी हृदय रिझा-कर मुट्ठी में बन्द कर लौटी थी और तीसरी मिस डटा, जो आकाश की उड़ान से क्लान्त होकर स्वेच्छा से गगनचारिणी एयर-होस्टेस का पद त्याग, धरा पर उतर आयी थी। पर फिर भी विशेष काम पड़ने पर कली की ही पुकार मचती। अन्य तीनों सुर-सुन्दरियों में इसी बात को लेकर आये दिन नारी-सुलभ ईर्ष्याग्नि की चिनगारियाँ चिटकती रहतीं, पर फिर भी मिस्टर शेखरन को लेकर कली का नाम खुले आम लपेटने का दुस्साहस किसी का भी नहीं होता था। होता भी कैसे ? आज तक कभी किसी ने दोनों को एकान्त में घूमते भी तो नहीं देखा था।

"हमारे कुछ विदेशी अतिथि आये हैं," शेखरन ने दोनों हाथ बाँधकर, मेज़ पर कुहनियाँ टेक लीं, "अतिथि क्या, अतिथियों के लड़के हैं, साधारण स्तर के अतिथि होते, तो जोशी या पटनायक को सौंप देता, पर चारों छोकरे ऐसे पिताओं के पुत्र हैं, जिनका हमारी कम्पनी के लिए बहुत बड़ा महत्त्व है। जब-जब स्वदेश के लिए फ़ॉरेन एक्सचेंज अर्न करने का प्रश्न उठता है, तो मैं सदा तुम्हें याद करता हूँ, यह तो शायद अब तक तुम जान ही गयी होगी।" अपनी अप्रतिम संगिनी के मुखमण्डल पर दृष्टिपात कर शेख-

रन ने काक-भंगिमा में ग्रीवा टेढ़ी कर ली ।

प्रभु के मुखमण्डल पर असन्दिग्ध रूप से अंकित प्रणय-क्षुधा को पढ़कर प्रशंसिका ने आँखें झुका लीं ।

"यस सर," उसने आँचल सामने खींचकर, बघनखा ढक लिया । घड़ी के पेंडुलम-से हिलते पेंडेंट से भूखे व्याघ्र की दृष्टि क्रमशः पीछे उतर उसकी पूरी रीढ़ की हड्डी को सुरसुरा गयी ।

"उन चार उद्धत छोकरों को बस तुम्हीं सँभाल सकती हो । विदेश में पता नहीं किस सिरफिरे अधकचरे योगी से योग की दीक्षा लेकर आये हैं । साथ में एक छोकरी भी है । मैंने तो उसे भी पहले लड़का ही समझा । बनारस और काठमाण्डू जाना चाहते हैं । तुम मिस्टर ट्रैवेलियन को लेकर दोनों जगह जा चुकी हो, इन्हें भी समेटकर परसों ही चल दो ।"

"ओह, फिर लम्बे दौरे !" मन ही मन कली सिहर उठी ।

"बस एक ही बात के लिए तुम्हें वार्न करना चाहता था," मिस्टर शेखरन गम्भीर स्वर में फुसफुसाने लगे, "इन हिप्पीज़ का आजकल कुछ ठीक-ठिकाना नहीं रहता । समझेंगे-बूझेंगे कुछ नहीं, भाँग, चरस, गाँजे के दम लगाकर 'ओम्' 'ओम्' डकारा और बन गये योगी । कहीं तुम्हें भी कुछ लत न लगा दें, समझीं ! ज़रा सावधान रहना । सुना है, ऐसी ही गोलियाँ जेब में लिये घूमते-फिरते हैं कि एक बार खिला दें, तो बस फिर मुँह से लगी नहीं छूटती । यानी अपनी दुम कटी तो सबकी दुम साफ़ कर दी ।"

फिर अपनी रसिकता से स्वयं प्रसन्न होकर शेखरन थोड़ी देर तक हँसते रहे ।

"आप निश्चिन्त रहें सर, तब मैं चलूँ ?" वह उठ गयी । शेखरन एक क्षण तक कुछ नहीं कह पाये । एक ही नारी में विधाता ने कितनी नारियों का विविध रूप भर कर रख दिया है । उसमें कभी किसी रानी की-सी तेजोमय गरिमा है, तो कभी दीन सेविका का अनुरागपूर्ण सेविका-भाव । कभी वह लावण्यमयी श्रेष्ठ शृंगार से अपने को शृंगारित कर सम्मोहन-कौशल की पराकाष्ठा प्रस्तुत कर उठती है, और कभी स्कर्ट-ब्लाउज़ में स्कूल की बालिका-सी बनकर दफ़्तर चली आती है ।

"तुम्हारा एयर पैसेज बुक हो जायेगा । मिस मजूमदार, पूरा एक महीना तुम्हें बाहर रहना होगा । इस बीच कम्पनी का रुपया तुम अपने हाथ का मैल समझती रहना," मि० शेखरन ने कुछ क्षणों की चुप्पी स्वयं ही तोड़ी ।

"यस सर, आपकी मुझ पर सदा बड़ी कृपा रही है ।" वह बाहर चली आयी और क्षण-भर थमककर ललाट का पसीना पोंछने लगी ।

बाप रे बाप ! कहेगा कुछ नहीं, पर आँखों ही आँखों में उसके सारे परिधान उतारकर रख देगा !

"हेलो कली," पटनायक ने उसे हाथ पकड़कर जाफ़री के एक कोने में खींच लिया।

"फँस गयी ना जाल में! मुझे पता ही नहीं लगा कि तू लौट आयी है। नहीं तो मैं पहले ही आगाह कर देती। हम तीनों को बारी-बारी से यह मायावी दल सौंपा गया था। पर जिस होटल में ये पाँच पाण्डव अपनी द्रौपदी को लेकर टिके थे वह मेरे जीजा का है। पी-पिलाकर पहले ही दिन छोकरों ने ऐसा ऊधम मचाया कि मि. शेखरन रातो-रात अपने यहाँ ले आये। मीरा को तो एक दम मौल ही कर दिया था भूखे शेरों ने, योगी से नहीं, किसी पहुँचे भोगी से दीक्षा लेकर आये हैं ससुरे! इसी से तो हम तीनों ने मना कर दिया। हम रिसेप्शनिस्ट अवश्य हैं, पर ऐसे रिसेप्शन का हमें अभ्यास नहीं है। 'वी ऑल कम फ़्रॉम गुड फ़ैमिलीज़।' समझ क्या लिया है इस शेखरन ने।"

"मेरी चिन्ता मत करो वासवी," कली ने बटुवा खोलकर, छोटे दर्पण में म्लान पड़ गये लिपस्टिक की धूमिल रेखा को सँवारा और चलने लगी। "मैं अपनी देखभाल खूब अच्छी तरह कर सकती हूँ। मुझे मौल करनेवाला व्यक्ति शायद अभी जन्मा नहीं है।" कली ने बटुआ खटाक से बन्द किया, सहयोगिनी के कन्धे पर हलकी-सी आश्वासनपूर्ण थपकी दी और बाहर चली गयी।

मिस पटनायक सिर से पैर तक सुलग गयी। कली को वह फूटी आँखों नहीं देख सकती थी। कितनी ही बार पहले भी उसने उसकी ओर मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ाया था, पर हर बार वह उसे ऐसे ही नीचा दिखाकर लिपस्टिक सँवारती चली गयी थी। ठीक है, भुगतेगी स्वयं। उसका कर्तव्य था, उसने आगाह कर दिया। 'समझाये समझे नहीं धक्का दे दे और।'

कली घर लौटी तो द्वार पर ही अम्मा खड़ी थीं।

"कितनी ही बार तेरे दरवाज़े को देख गयी। तेरा ताला मरा जब देखो तब लटका ही रहता है।"

"क्यों घबरा रही हो अम्मा," कली ने आगे बढ़कर बड़े लाड़ से दोनों बाँहें अम्मा के गले में डाल दीं, "परसों से यह ताला फिर पूरे एक महीने के लिए लटका रहेगा।"

"क्यों, फिर कहीं जा रही है क्या?"

"इस बार तो सचमुच ही उड़ी जा रही हूँ अम्मा, पहले नेपाल, फिर बनारस।"

सरला अम्मा की आँखें चमक उठीं। नेपाल जा रही है तू? कैसी भागवान है री! यहाँ बरसों हो गये झींकते, प्रवीर के बाबूजी से कै दफ़े कह चुकी हूँ—पशु-

पतिनाथ के दरशन करा दो।"

"चलो ना मेरे साथ, परसों ही दरशन करा दूँ तुम्हें।"

"पहले भीतर आ। आज तेरी पसन्द के करेले बनाये हैं। सुबह से लिये बैठी हूँ," अम्मा उसे भीतर खींच ले गयीं। पहले कुछ झिझक से कली आगे बढ़ी, पर गृह की जनहीन शून्यता के आह्वान से वह दूसरे ही क्षण आश्वस्त होकर बड़े धड़ल्ले से डग भरती अम्मा के पीछे चल दी और चौके में पहुँचते ही पीढ़ा खींचकर बैठ गयी।

"अरे, आज क्या घर से सबको निकाल दिया, अम्मा?" हँसकर कली ने दामी साड़ी घुटनों के बीच दबा ली।

"अरी, उठ, न जाने कैसी लड़की है, सौ-डेढ़ सौ की साड़ी पहनकर फचाक से बिना धुले पटले पर ही बैठ गयी। जा उठकर खाने के कमरे में बैठ, मैं पराँठे गर्म कर लाती हूँ।"

"अरे छोड़ो भी अम्मा, यहाँ मारे भूख के आँतें कुलबुला रही हैं। अब पेट में ही पराँठे गरम होंगे। लाओ इधर।" अम्मा के हाथ से कटोरदान छीनकर कली ने करेले पराँठों में भींचकर रोल बना लिया और अपने सारे अदब-क़ायदे भूलकर गपागप खाने लगी। वह भूल ही गयी थी कि वह आज सुबह खाली एक प्याला चाय पीकर ही घर से निकल पड़ी थी।

शेखरन की भूखी दृष्टि उसके पुष्ट सौन्दर्य को ही देख पायी, लेकिन किसी ने उसकी भूखी आत्मा को कभी नहीं देखा। क्या कभी भी कोई उसके अन्तर की व्यथा को नहीं जान पायेगा? कोई मुग्ध दृष्टि से उसकी बड़ी-बड़ी आँखों को ही देखता रहता है, कोई निर्लज्ज दृष्टि का अदृश्य भाला उसके सुडौल वक्ष के आर-पार भेदकर उसकी बैकलेस चोली के बन्धन शिथिल कर देता है। जितने ही लोलुप पुरुष, उतनी ही विचित्र विभिन्न दृष्टियाँ! पर क्या आज तक एक भी दृष्टि में उसे सच्चे निश्छल स्नेह की ऐसी झलक मिल सकी है?

तवा रखकर अम्मा उससे कटोरदान छीनकर पराँठे गरम करने लगीं तो कली की आँखें छलछला उठीं। उसकी ओर पीठ किये अम्मा स्वयं ही कहने लगीं, "आज सब अलीपुर गये थे। वहीं पाण्डेजी ने बड़े आग्रह से सबको रोक लिया। जया, माया उन्हीं की लड़कियों के साथ खेल-पढ़कर बड़ी हुई हैं, बड़ा स्नेह करते हैं बेचारे! कहने लगे, पहाड़ की दो-तीन शादियों की मूवी बनायी है, वही दिखायेंगे। मैं तेरे बाबूजी के साथ घर चली आयी। बच्चे रात का खाना वहीं खा-पीकर लौटेंगे। इसी से तो अपने दोनों के लिए दूध गुँथे आटे के पराँठे करेले बनाकर रख लिये थे। कैसे बने हैं री करेले, तूने तो कुछ कहा भी नहीं!"

"वाह, बढ़िया चीज़ खाने के बीच कुछ कहा जा सकता है भला!" कली ने चटखारे लेकर नींबू के अचार की फाँक मुख में धर ली। "खानेवाला चुपचाप खाये चला जाये, तो समझ लो अम्मा, चीज़ ऐसी-वैसी नहीं बनी है। वह तो अच्छी न बनी

हो तभी खानेवाला उसे वातों के लच्छेदार ज़ायक़े से स्वादिष्ट बनाता है।"

"बस, वातें करना तो कोई तुझसे सीखे !"

"नहीं अम्मा, बातें नहीं वना रही हूँ। सच, पता नहीं क्या जादू है तुम्हारे हाथ में, ऐसे करेलों की जन्मजात कड़ुवाहट भी दूर कर देती हो—मुझे लग रहा है सब करेले शायद मैं ही खा गयी। देखूँ, तुम्हारे लिए कुछ बचा या नहीं ?"

उचककर पथरौटे में झाँकती कली को अम्मा ने स्नेह से दूर धकेल दिया। "परे हो, कहीं छू मत देना।"

"क्यों अम्मा," कली का मुँह उतर गया, "क्या कोई किरिस्तान हूँ मैं ?"

"नहीं-नहीं बिटिया, तू भला क्यों किरिस्तान होने लगी। पर मैं तो जया, माया का छुआ भी नहीं खाती। इसी बात को लेकर प्रवीर से रोज़ लड़ाई होती है। अब लाख सिर पटको, उसे भला वातों में कौन हरा सकता है ! चल, हाथ धोकर अन्दर चल। यहाँ तो चौका सब गीला पड़ा है।"

अम्मा उसे लेकर बड़ी बेटी के कमरे में ही बैठ गयीं।

चौदह

अस्तव्यस्त कमरे की छटा देखकर ही कली समझ गयी थी कि गृहस्वामिनी बड़ी हड़बड़ी में ही निकलकर गयी हैं। एक पलंग पर सिनेमा की पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी थीं, दूसरी पलंग का पलंगपोश गुड़ी-मुड़ी कर विछा एक कोने से ऊपर तक उठ गया था। उसी पर उतारकर फेंके गये साड़ी, ब्लाउज़, फ्रॉक बिखरे थे।

"इतनी वड़ी हो गयी है जया, पर सलीक़ा रत्ती-भर भी नहीं सीख पायी। कौन कहेगा यह अँगरेज़ी स्कूल की पढ़ी है !" अम्मा फूहड़ पुत्री के अस्तव्यस्त कमरे भर में बिखरी चीज़ों को समेटती खिसियाये स्वर में स्वयं ही क़ैफ़ियत देने लगीं। "करे भी क्या, मन-चित्त ठिकाने पर हो तो काम में जी भी लगे। जया क्या ऐसी थी ? अब तुझे क्या वताऊँ बेटी, छूने से मैली होती थी लड़की। पहन-ओढ़कर बंगालियों में उठती-बैठती तो सब कश्मीरन ही समझते थे।"

अम्मा का गला भारी हो आया। बुद्धिमती कली ने कुछ भी नहीं पूछा, पर उस दिन कठिनता से मिले एकान्त के कुछ क्षणों में अम्मा उसके सामने सब कुछ उगल गयीं। जया के दशान्तर का फेर, बड़े जामाता के निर्लज्जतापूर्ण आचरण को लेकर कई बार सुलगकर दहक पड़ी गृहयुद्ध की चिनगारी, कुछ भी कली से छिपा नहीं रहा।

वह संकुचित होकर अनमनी-सी हो गयी। यह शायद अम्मा ने भाँप लिया।

"अरी तू कौन परायी है बेटी, कब से तेरी राह देख रही थी कि तू आये तो दो घड़ी बतियाकर जी हलका करूँ। दोनों मेरी कोख की जायी सगी बेटियाँ हैं, पर दोनों का जैसे मुझसे विश्वास ही उठ गया है।

"माया कहती है कि मैं जया का ही पक्ष लेती हूँ और जया कहती है, मैं तुम्हें भारी हो गयी हूँ। अब तू ही बता बेटी, भला भैंस के सींग क्या कभी उसे भारी होते हैं?"

आँचल से आँखें पोंछती अम्मा ने खिड़की बन्द कर दी। बाहर बाबूजी बैठे कुछ पढ़ रहे थे। शायद कहीं कुछ सुन न लें, और सुन लेने पर वह अल्पभाषी अनुभवी गृहस्वामी कभी भी अम्मा को घर का भेद एक सर्वथा अनजान विभीषण को बता देने के लिए क्षमा नहीं कर पायेगा, यह कली खूब समझती थी। पर वह क्या स्वेच्छा से ही विभीषण बनी थी?

"जया का मन तो घावों से भरा है बेटी," अम्मा कहने लगीं, "ज़रा किसी ने हिला-भर दिया कि घाव दुख गया। माया को लाख समझाती हूँ कि तू ही चुप रह जा, पर माने तब ना! मैं इलाहाबाद गयी, तो सुना, माया ने जीजा से कुछ ऐसी ही ओछी बात कह दी कि शर्म नहीं आती ससुराल में पड़े-पड़े रोटियाँ तोड़ रहे हो! बस, सामान बाँध-बूँधकर जयुली निकल पड़ी। स्टेशन से मनाकर तेरे बाबूजी लौटा लाये। मेरा भाग्य ही खोटा है। और क्या, छोटी बहू के लिए इत्ता किया, वह हमारे मुख पर कालिख पोतकर चली गयी। प्रवीर की ही शादी न करने की ज़िद टूटती, तो शायद कुछ मनहूसी कटती। अब इन्हीं अलीपुर के पाण्डेजी ने अपनी चारों बेटियाँ इसके सामने धर दी थीं कि भई ले, जो पसन्द हो उसी से तेरे फेरे फिरवा दें। ऐसा भला कोई कर सकता है?"

उस उदार पिता का पूर्ण परिचय पाने को कली ललक उठी।

क्या उदार पाण्डेजी की चारों अविवाहिता परियाँ, अभी भी लल्ला के सामने हाथ बाँधे परेड कर रही होंगी?

किया करें! उसका माथा क्यों दुखा जा रहा था? पर कुछ क्षण चुप रहकर भी वह कण्ठ में अटके प्रश्न को नहीं रोक पायी।

"तो क्या चारों में से एक भी पसन्द नहीं आती?"

"अरी, अब क्या चारों धरी रह गयी हैं बावली!" अम्मा कटी सुपारी के लच्छों को निरर्थक काटने लगीं।

"चुन्नी, मुन्नी, सुन्नी तो एक से एक घर चली गयीं! ऐसे ग्रह थे, सुना, उनकी लड़कियों के कि जहाँ जायें वहाँ राज करें। किसी का बुधादित्य योग, तो किसी का केन्द्रस्थ वृहस्पति। अब सबसे छोटी कुन्नी बची है। ऐसी सलोनी छवि है कि बस भूख भागे है देखकर। अभी तो देखकर लौटी हूँ। रंग-नक़्शा सब एक से एक बढ़कर। बस, ज़रा तन्दुरुस्त है। असल में आज बड़ी मुश्किल से मना-मुनूकर उसे ले गयी। पाण्डेजी का बड़ा आग्रह था कि एक बार कुन्नी को देख-भर लें।"

"तब, क्या देखा ?" कली को अब चौथी पाण्डेसुता के स्वयंवर की व्यूह-रचना में बड़ा आनन्द आ रहा था।

"ख़ाक देखा !" अम्मा आँचल को मफ़लर की तरह गले में लपेटकर बैठ गयीं।

"हम सब एक ही कमरे में बैठे रहे। कुन्नी ने ऐन-मैन बंगाली लड़कियों की तरह रवीन्द्र-संगीत गाकर सुनाया। स्पंज रसगुल्ले बनाकर हमें खिलाये, पर इसने एक प्याला चाय भी पीकर नहीं दी। मारे शर्म के मेरा सिर झुक गया। क्या सोचते होंगे वे लोग ! लड़की बेचारी गाना पूरा गा भी नहीं पायी थी कि बीच से उठकर चला गया बेहया। कहने लगा, 'मुझे अपने किसी दोस्त से मिलने जाना है।' तब से ग़ायब है।"

कली अचानक बिना कुछ कहे ही उठ गयी। बरसाती के निकट आती कार का परिचित हॉर्न शायद उसने सुन लिया था। पता नहीं उसे एकान्त में अम्मा से खुसुर-फुसुर करते देख, गृह के विपक्षी सदस्य उसके विषय में क्या सोच बैठें !

"मैं चलूँ अम्मा, सुबह से एक जगह स्थिर होकर दो घड़ी नहीं बैठ पायी हूँ। आपने ऐसे प्यार से बुलाकर खिलाया न होता, तो शायद भूखी ही सो जाती।" वह हँसी, पर उसके काँपते होठों के दोनों अस्थिर कोनों को अम्मा ने देख लिया।

आगे बढ़कर उन्होंने उसकी दोनों दुबली कलाइयाँ थाम थीं।

बाहर से ऐसी आनन्दी दिखनेवाली लड़की का इतने बड़े संसार में क्या कहीं कोई आत्मीय नहीं होगा ?

एक बार बड़े संकोच से उन्होंने उसके अजान कुल-गोत्र के माता-पिता का अता-पता पूछने की चेष्टा की भी थी, पर हँसकर ही वह रहस्यमयी लड़की प्रश्न को टाल गयी थी। फिर स्वयं अम्मा का स्वभाव खोद-खोदकर बातें पूछने के पक्ष में नहीं था।

"घड़ी-भर और सुस्ता ले ना ! उस निगोड़े कमरे में भी तो अकेली ही रहेगी।"

कली कुछ कहने जा ही रही थी कि जूते की चर्र-मर्र सुनकर चौकन्नी हो गयी। पलक झपकाते ही प्रवीर द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सारे चेहरे पर बिखरे धूल-भरे बाल और सूखा-सा मुँह। अम्मा ने अचकचाकर कली के हाथ छोड़ दिये। अपने इस कुछ न कहनेवाले लड़के से वे बहुत डरती थीं। जिस लड़की को वे घड़ी-भर पहले बाँहों में भरकर बार-बार पल-भर सुस्ताने का आग्रह कर रही थीं, उसी से निष्कृति पाने के लिए वे अब मन ही-मन ठाकुरजी का स्मरण करने लगीं। यह उनकी मुँहलगी नादान लड़की कहीं लल्ला से कुछ उलटा-सीधा मज़ाक़ न कर बैठे।

कली एक क्षण को उस लौहपुरुष की कठोर मुद्रा से सहम गयी, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने स्वभाव के विपरीत भागे जा रहे चित्त के भीरु अश्व को एक ही कड़े

चाबुक से साध लिया।

वह मुसकराकर द्वार पर खड़े सामान्य-से परिचित प्रवीर को बड़ी अन्तरंग दृष्टि से देखकर कहने लगी, "आज सुना, आपने हमारी अम्मा को बहुत परेशान किया! असल में बात ये है अम्मा," वह फिर अम्मा की ओर मुड़ती, हँसकर कहने लगी, "आपके बेटे बहुत दिनों बाद कलकत्ता लौटे हैं। इसी से ये नहीं जानते कि अब यहाँ मुफ़्त में मिली मिठाई ऐसे नहीं छोड़ी जाती है। यहाँ तो छेना दूध की मिठाई को ही क़ानून ने निषिद्ध कर दिया है।" और वह उसी दर्पपूर्ण मुद्रा में, सुडौल ग्रीवा को शुतुरमुर्ग़ की भाँति उठाती बाहर चली गयी।

अम्मा मन ही मन थर-थर काँपती जा रही थीं। कनखियों से उन्होंने प्रवीर के तमतमाये चेहरे को देख लिया था। अब हो न हो, आज ही इस अभागी लड़की का बोरिया-बँधना बाहर पटककर रख देगा। 'दोष तो उन्हीं का था। एकान्त में कली को बतला दिया होता कि बेटी, मेरे इस दुर्वासा बेटे से कभी भूलकर भी हँसी-मजाक़ मत कर बैठना। अब तो जो होना था हो गया।

क्रोध के मारे प्रवीर सचमुच काँप रहा था। ऐसी सस्ती लड़की के सामने अम्मा ने घर का पूरा चिट्ठा खोलकर रख दिया।

"अम्मा," वह माँ के एकदम पास आ गया, "मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूँ, इससे कहो...." वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि बाबूजी अखबार लिये कमरे में आ गये।

"क्यों बिगड़ रहे हो बेटा," शान्त स्वर के ठण्डे छींटों ने क्रोध के उफान को एकदम बिठा दिया, "इतने दिनों से बेचारी लड़की यहाँ रह रही है, हमें पता भी नहीं रहता कि कोई रहता भी है। तुम नौकरी में इतनी दूर हो। लड़कियाँ पराये घर की हैं। आज हैं तो कल नहीं। तुम्हारी अम्मा का भी जी बहला रहता है। वह भी क्या करेगी! बहू-बेटियाँ होतीं तो अलग बात थी।"

कभी टेढ़ी बातें न कहनेवाले पिता का तीखा व्यंग्य प्रवीर समझ गया। आज बाबूजी उससे वैसे ही बिगड़े होंगे। पाण्डेजी उनके एक मात्र मित्र थे। फिर उन की अभागी पुत्रियों से लदे कल्पतरु की पत्तियाँ जैसे कभी झड़ती ही नहीं थीं। जब घर आता तब सुनता, पाण्डेजी की एक पुत्री का विवाह हुआ। यह दिया, वह दिया और भाग्यशाली जामाता को अपने खर्चे से विलायत भी भेज दिया। फिर भी एक न एक अविवाहिता पाण्डेसुता का लुभावना फल उसकी प्रतीक्षा में कल्पतरु पर लटका ही रहता। इस बार की छुट्टियाँ चौपट करने को भी एक लड़की और बच गयी थी। एक तो उस सुयोग्य सुपात्री की प्रशंसा सुन-सुनकर ही उसे चिढ़ हो गयी थी। जब देखो तब दोनों बहनें, माँ, बहनोई उसी का पुराण खोलकर बैठ जाते। तीन विषयों में एम. ए.

किया है। बाप के कोट-पैण्ट भी घर में सिलती है। आकाशवाणी से रवीन्द्र-संगीत गाती है। ऊसपर एकदम कच्चे वयस की न होने पर भी अल्हड़ लगती है।

"उससे कहो, अम्मा, अपने बाप के ही कोट-पैण्ट का सत्यानाश करे। यहाँ मेरा कार्टून बनाने न पधारे। मुझे ऐसी ही योग्यता ढूंढ़नी होगी, तो दरज़ी की बेटी ले आऊँगा। वाह-वाह, घर के सिले कपड़े पहन, एम्बेसी में चले जा रहे हैं डिप्लोमेट! इतना भी नहीं जानतीं अम्मा कि कोई भी समझदार आदमी बीवी के सिले कपड़े नहीं पहनता।"

अम्मा बेचारी आँखें पोंछती भीतर चली गयी थीं।

उस दिन प्रवीर गाने के बीच से उठ अवश्य गया था, पर चलते-चलते उसने कुन्नी की एक झलक देख ली थी। स्वस्थ, गोरी कुन्नी की कर्णचुम्बी आँखों के सधे कटाक्ष ने ब्रह्मचारी का अचल हृदयासन क्षण-भर को विचलित कर दिया था। लड़की का कण्ठ असाधारण रूप से मीठा था। यही नहीं, कमर से भी नीचे झूलती मोटी वेणी, नितम्बिनी की मत्तगयन्द-सी चाल और चमचमाती दन्तपंक्ति पिता के वैभव की वैसाखियाँ लगाये बिना भी बड़ी सुगमता से किसी भी पुरुष के हृदय-द्वार की कठिन अर्गला ख़ोल-कर प्रवेश कर सकती थी। प्रस्ताव निस्सन्देह विचारणीय था। पहाड़ी समाज में ऐसी लड़कियाँ सहज में नहीं जुटतीं। पाण्डेजी के यहाँ उसके पूरे परिवार को किसलिए निमन्त्रित किया गया है, वह खूब समझता था। दो-तीन वर्ष पहले की बात होती तो शायद वह भड़क उठता पर अब सम्पन्न गृह का सूर्य अस्तगामी दिशा की ओर डूबता जा रहा था। जया के पति की लज्जा स्वयं उन सबकी लज्जा बन गयी थी। पाण्डेजी के साथ सम्बन्ध हो जाने पर वह दामोदर को समय रहते उबार सकता था। पाण्डेजी के पिता का प्रशासन में बहुत गहरा प्रभाव था।

"अभी भी आये दिन वे अपने प्रभाव का चेक भुनाते रहते हैं," पिता ने कहा था, "उनकी लड़कियों के लिए कभी लड़कों का अभाव नहीं रहता।"

स्पष्ट था कि बाबूजी उसके काबुल जाने से पहले उसे सगाई के बन्धन में बाँधना चाहते थे! इसी से बार-बार अम्मा के लड़की को एक बार देख लेने-भर के आग्रह को प्रवीर नहीं टाल पाया। एक तो जया के दुर्भाग्य को लेकर अम्मा दिन-रात घुलती जा रही थीं। न हो थोड़ा मनबहलाव ही हो जायेगा। फिर देखने में भला क्या दोष था? कोई आँखों की शक्ति तो कम नहीं हो जायेगी। आज तक क्या उसे एक भी पहाड़ी हूर पसन्द आयी थी, जो यह आ जायेगी? एक बार देख लेने पर उस में एक न एक नुक़्स निकालकर वह प्रस्ताव को खोटे सिक्के-सा ही फेर देगा। बस फिर छुट्टी! न पाण्डेजी की कोई पुत्री ही फिर रह जायेगी, न पैदा करने की उम्र। यही सोचकर वह माँ-बहनों के साथ बिना आपत्ति किये ही चल दिया, तो चतुरा जया का माथा ठनका।

"देख लेना अम्मा, दद्दा हमें बुद्धू बनाने जा रहे हैं। पहले से ही तय कर लिया होगा कि लड़की नापसन्द कर देंगे।"

"छोड़ो भी दीदी," माया बड़ी बहन पर बरस पड़ी थी, "तुम्हें तो अच्छी बात आजकल सूझती ही नहीं। मैं भी देखूँ, कुन्नी में क्या नापसन्द करते हैं। ओढ़नेवाले ओढ़ लें, बिछानेवाले बिछा लें, ऐसी लड़की है कुन्नी।"

बात माया ने पते की कही थी। लड़की में कहीं कोई दोष नहीं था। भरे-भरे अंगों का सौष्ठव उठते-बैठते गदराते यौवन की किरणें-सी छोड़ता था। गाने को वह रवीन्द्र-संगीत ही गाती थी, पर छठी-दष्टौन और घुड़चढ़ी के अनमोल गीतों से दिशाएँ गुँजाती वह अपनी स्वस्थ, पुष्ट हथेली की चोट से ढोलक को दमामे-सा गुँजा देती, तो पर्वतीय समाज की अधिकांश पार्श्वगायिकाएँ धराशायी हो जातीं। तब बुलन्द आवाज़ में किसी दक्ष क़व्वाल के-से तारसप्तक को छू लेने की प्रतिभा चमकने लगती। ऐसे मधुर कण्ठ की स्वामिनी, जो अतुलप्रसाद और रवीन्द्रनाथ के सुमधुर संगीत का मधु घोलकर बंगवासियों को भी सम्मोहित कर लेती है, 'बन्नी की दादी को ले गया मुसल्ला, मुहल्ले में शोर मचा रे' गाकर किसी भी संस्कार-उत्सव को रंगीन बना सकती है, यह देखकर माया दंग रह गयी थी। उसने प्रतिभाशालिनी कुन्नी के दोनों रूप देखे थे। रवीन्द्र-साहित्य वासर में कितनी तालियाँ बजी थीं उसके गाने पर! जब यहाँ राजेश्वरी दत्ता, कनिका देवी और सुचित्रा मित्रा जैसी प्रसिद्ध रवीन्द्र-संगीत की सुगायिकाएँ भी उससे पहले गाना गा चुकी थीं। फिर तिवारीजी के बेटे की घुड़चढ़ी में उसके गाये बन्ने सुनने को पूरा जनवासा उलट पड़ा था और एक बराती तो टेप-रिकॉर्ड ही खोलकर बैठ गया था।

"रंग-रंग कर मरे जाते हो ना दद्दा, देखना ज़रा उसका कम्प्लेक्शन। हम सब हब्शिनें न लगीं उसके सामने, तो मेरा नाम बदल देना। क्या हाइट है उस पर! एकदम पाँच फ़ीट चार इंच।"

"अच्छा-अच्छा, रहने दे," प्रवीर ने उसे झिड़क दिया था, पर फिर भी वह चुप नहीं हुई।

"हाइट ही से तो कुछ नहीं होता। मांस भी ठीक-ठीक चढ़ाया है भगवान् ने। न एक इंच इधर, न एक इंच उधर, एकदम सतर चाल। हमारे पहाड़ की लड़कियों की तरह कन्धे झुकाकर नहीं चलती लड़की। हमें तो अम्मा ने कभी सीधे होकर चलने भी नहीं दिया। फिर रही-सही क़सर ससुराल में पूरी हो गयी।"

पति की ओर व्यंग्यपूर्ण कटाक्ष से देखकर वह साड़ी बदलने चली गयी थी।

पाण्डेजी के विराट् गृह की शोभा दर्शनीय थी। उनकी महलनुमा कोठी किसी राजस्थानी नरेश ने बड़े शौक़ से अपनी नयी पत्नी के लिए बनवायी थी।

पहले ही प्रसव में सुकुमारी रानी चल बसी और अधबनी कोठी को मिट्टी के मोल बेचकर नरेश विदेश चला गया था। दीवारों पर यामिनी रॉय के चित्रों की चौकोर बड़ी-बड़ी आँखों की एक लम्बी क़तार दूर तक चली गयी थी। दूसरी ओर अत्याधुनिक चित्रकारों द्वारा चित्रित विचित्र शैली के तान्त्रिक प्रतीकों को प्रवीर ने देखते ही पहचान लिया। शायद गृहस्वामी स्वयं भी उनकी दुरूह रेखांकित विषम आकृतियों को नहीं समझते होंगे।

पाण्डेजी स्वयं उनकी आगमनी में नम्रता से दुहरे होकर रह गये थे।

"मैं अभी-अभी कुन्नी की माँ से यही कह रहा था कि आज यह निश्चय ही हमारे पूर्वकृत पुण्यों का फल है, जो आप सपरिवार यहाँ पधारी हैं।" झुककर उन्होंने ठेठ पहाड़ी क़ायदे से अम्मा के चरण छूकर दोनों हाथ माथे से टिका लिये थे।

वाचाल, मुखर, बातों के इन्द्रजाल में अतिथियों को पल-भर में बाँध लेनेवाले, चिकने-चुपड़े चेहरे और चमकते माथे के स्वामी हँसमुख पाण्डेजी ने बड़े प्रेम से प्रवीर को अपने सोफ़े पर बिठा लिया।

प्रवीर को इस प्रकार बरबस खींचकर अपने पास बिठा लेने में पाण्डेजी को ज़रा भी संकोच नहीं हुआ, पर प्रवीर को ऐसे प्रेम-प्रदर्शन का अभ्यास नहीं था। वह ज़रा हटकर बैठने की चेष्टा कर ही रहा था कि पाण्डेजी बड़े स्नेह से उसकी पीठ थपथपाकर कहने लगे, "अब के विदेश-मन्त्रालय पर ज़ोर डलवाकर तुम्हें सेन्टर में बुलवा लेंगे।"

उस व्यवसाय-पटु कुटिल व्यक्ति के चरित्र की सारी कुटिलता बड़े ही स्पष्ट अक्षरों में उसके चेहरे पर निखर आयी थी। उसकी अस्थिर गतिविधि देखकर प्रवीर दंग रह गया था। जो एक क्षण भी सोफ़े पर स्थिर होकर नहीं बैठ सकता वह दफ़्तर के नीरस बही-खातों में घण्टों तक डूबा, दत्तचित्त होकर कैसे बैठा रहता होगा? जितनी देर प्रवीर वहाँ बैठा रहा, पाण्डेजी को जैसे सौ-सौ पिस्सू काटे जा रहे थे। कभी उछलते, कभी दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे उछलकर सोफ़े पर पालथी मार बैठ जाते।

जब प्रवीर रसमयी गोष्ठी के बीच से अचानक उठकर चला आया, तो बहनों का दिल डूब गया। अकेली अम्मा को कुछ विशेष निराशा नहीं हुई थी! अपने अकड़ू पुत्र की रुचि को वे उसे गर्भ में रखकर भी क्या नहीं जानतीं? पाण्डेजी की दुहिता कितनी ही गुणी, सुन्दरी, सौम्यानना क्यों न हो, ऐसे कुटिल व्यक्ति का जामाता बनना वह कभी स्वीकार नहीं करेगा। पर बड़ी देर तक इधर-उधर घूम-घामकर वह माँ को अपनी स्वीकृति के सरप्राइज़ का तोहफ़ा ही देने आया था।

घर आते ही अम्मा के साथ उस विषकन्या को देखकर वह बिफर गया। ऐसी बेहया लड़की उसने कभी नहीं देखी, सब कुछ जानकर भी कैसी भोली, अनजान बनती है। अम्मा न होतीं, तो शायद वह उसे वहीं पर मज़ा चखा देता। ठीक है, वह भी अम्मा के सामने एक ही शर्त रखेगा। विवाह की स्वीकृति के साथ ही अम्मा को

इस दस्यु-कन्या को घर से बाहर कर देना होगा। जो चलती ट्रेन के राह चलते निरीह यात्रियों की जेब कतर सकती है, वह गृह की स्थायी सदस्या बनकर भोली अम्मा को कभी भी दिन-दहाड़े लूट सकती है।

पर दूसरे दिन उठते ही जिसे बाहर निकालने का निश्चय प्रवीर ने किया था, वह स्वयं ही उसके कुछ कहने से पहले कहीं चली गयी थी। द्वार पर लटके बन्द ताले को देखकर उसने चैन की साँस ली। अब वह अम्मा के वर्षों से मुरझाये म्लान चेहरे पर अपनी अप्रत्याशित घोषणा से आह्लाद की रेखाएँ खिंची देखना चाह रहा था। कितने दिनों बाद उसे अपने गृह का एकान्त मिला था। अब वह जैसे चाहे वैसे गृह का निरंकुश सम्राट् बन, लुंगी बाँधे इधर-उधर घूम सकता था। सामने का ही कमरा उस दुरन्त छोकरी को देकर अम्मा ने घर की प्राइवेसी ही खत्म कर दी थी।

जया और दामोदर का मनोमालिन्य भी इधर खतरनाक तीव्रगति से बढ़ता जा रहा था, जैसे दब्बू पालतू कुत्ता भी मालिक की शह पाकर अपने छेड़नेवाले की ओर दाँत दिखा-दिखाकर धमकी से गुर्राने लगता है, ऐसे ही जया भी अब मायके की देहरी में आकर दिन-रात निठल्ले पति पर गुर्राती रहती, उसके कमरे से ही सटा प्रवीर का कमरा था और एक सँकरी-सी गैलरी के व्यवधान के बाद पड़ता था कली का कमरा। जैसे वह बहन-बहनोई के क्रोध में ऊँचे उठते स्वर को सुन लेता था वैसे ही निश्चय वह अपरिचिता भी सुनती होगी। मध्यरात्रि की निस्तब्धता में गूँजते बहन के अमानवीय आरोप सुनकर कभी-कभी उसके जी में आता, वह दामोदर की गरदन पकड़कर बाहर निकाल दे। क्या यह सचमुच सम्भव था कि वह सुदर्शन व्यक्ति हृदय का ऐसा काला था ?

और भला यह जया की भी कैसी मूर्खता थी ! आठ-नौ वर्ष की पुत्री साथ सोती है। क्या माता-पिता की नित्य की चखचख वह नहीं समझती होगी ? वह समझे या न समझे, एक सर्वथा परायी अनजान लड़की प्रवीर के अबतक सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित कुल की क्रमशः मलिन पड़ती मर्यादा को देख ले, यह वह नहीं चाहता था। अपने विवाह की शर्त के साथ वह यही कड़ी शर्त रखेगा। तभी उस छोकरी से पीछा छूटेगा।

पर अम्मा से कहेगा कैसे ? वर्षों से विवाह के लिए ना-ना कहते-कहते अब अचानक माता-पिता की पसन्द की गयी लड़की के लिए स्वीकृति देने में उसे बार-बार गहरी पराजय का परिताप संकुचित किये जा रहा था। क्या कहेंगी दोनों बहनें ! जया कुछ कहे न कहे, माया निश्चय ही एकान्त में नवीन से कहेगी, 'देखा ना, क्या कहा था मैंने, कुन्नी को एक बार देख लेने पर भला कोई ना कर सकता है ?' पर पूरे घर में माया ही एक ऐसी थी, जिसके माध्यम से वह अम्मा तक अपनी स्वीकृति पहुँचा सकता था। पहले उसने माया को एकान्त में बुलाकर अपना निश्चय सुनाया, तो उसकी

आँखें विस्फारित हो गयीं, "सच कह रहे हो या फिर, अपना कोई ऊटपटाँग मज़ाक़ दोहरा रहे हो ?"

"सच कह रहा हूँ, जा अभी जाकर अम्मा से कह आ। पर देख, अम्मा से कहना इसके साथ मेरी एक शर्त भी माननी होगी।"

माया को फिर किसी भी शर्त को सुनने का अवकाश ही कहाँ था। क्षण-भर में जैसे किसी ने पूरे घर की उदासी को उल्लास की अदृश्य जादुई छड़ी फेरकर दूर भगा दिया था। पाण्डेजी फ़ोन पर शुभ समाचार पाते ही मिनटों में मोटर भगाते कई टोक-रियों में फल-मिठाई भरकर स्वयं चले आये थे।

"यह सब क्यों ले आये आप," अम्मा ने सकुचाये स्वर में कहा, तो वे बनावटी क्रोध से तुनक उठे, "वाह जी वाह, यह तो वस्त्राभावे पुष्पं है, भला ख़ाली हाथ अपनी समधिन के यहाँ चला आता ? फिर कुन्नी की माँ ने झटपट पत्रा भी देख लिया, बोली, अच्छा दिन है, लगे हाथों सगुन भी कर आइए।"

लाल मख़मली थैली में वे दो सोने की भारी मुहरें भी लेते आये थे, एक समधी के लिए, दूसरी जामाता के लिए। घर के दोनों दामादों की हथेलियाँ भी पर्याप्त धन-राशि से गर्म कर चलते-चलते रविवार की दावत का निमन्त्रण भी देते गये थे।

"तीनों लड़कियों को तार कर दिया है। सोचता हूँ, उस दिन कुछ मिलने-मिलानेवालों को न्यौंतकर, सगाई की एक फ़ॉर्मल दावत दे डालूँ। असल में हमारी कुन्नी सब इष्ट-मित्रों की बेहद मुँहलगी है। इसी से सब बड़े कीन हैं कि हमारे भावी जमाई राजा को एक बार देख लें, कि हम उनकी दुलारी कुन्नी के लिए सुपात्र जुटा पाये हैं या नहीं। फिर उनकी आँखें चौंधियाने का कुछ हमारा भी ओछापन है।"

बड़े अपनत्व से उन्होंने सुदर्शन जामाता की चौड़ी पीठ थपथपायी और बार-बार सपरिवार पधारने का मीठा निमन्त्रण देकर चले गये।

पन्द्रह

दिन-भर की भाग-दौड़, और आकस्मिक उत्तेजना ने अम्मा को हँफा दिया था। उसपर माया चुपचाप आकर बड़े भाई की अनोखी शर्त के विषय में भी बता गयी थी। तब से बेचारी मन ही मन घुली जा रही थीं। पता नहीं कौन-सी अलबेली शर्त खड़ी कर के रख दे, लड़का ! कहीं अब यह न कह दे कि शादी दो साल बाद करेगा। इसी फागुन में कर लेता, तो शायद पाण्डेजी दामोदर का भी ठीक-ठिकाना लगा देते।

"अब तुम कुछ मत पूछना अम्मा," चतुरा माया उसे बार-बार समझा गयी थी,

"कुन्नी को एक-दो बार देख लेंगे तो सब शर्तें भूल जायेंगे।"

बड़ी-बड़ी आँखोंवाली बंगकन्या-सी सलोनी कुन्नी को वह फिर बड़े लुभावने अधिकार से इसी रविवार को देख सकेगा, यह कल्पना प्रवीर को सचमुच ही ऐसे गुदगुदा रही थी कि उसे कभी-कभी स्वयं ही खीझ उठने लगी थी। वह उस सुन्दरी आकर्षक लड़की को और भी निकट से एकान्त में देखना चाहता था। कहीं ऐसा न हो कि उस आकर्षण में प्रकृति का हाथ कम हो, स्वयं स्वामिनी का ही अधिक। क्या आकर्षक क़द की ऊँचाई के ही अनुपात में उसके दिमाग़ ने भी वैसी ही ऊँचाई पायी होगी या ऊँची दूकान का वह फीका पकवान बिना सोचे-समझे, परखे-बूझे जल्दबाज़ी में ख़रीदकर गप्प से मुख में धर लेने पर उसे जीवन-भर पछताना पड़ेगा? वह अपनी परिमार्जित रुचि के सामने किसी को भी कुछ नहीं समझता था और कहीं गेहूँ-बिनौले के भाव रटनेवाली पत्नी उसके पल्ले पड़ गयी तब? यह ठीक था कि लड़की के कण्ठ के माधुर्य को उसने निकट से ठोंक-बजाकर परख लिया था, पर दिमाग़ी कोठा भी ठँसा है या एकदम ही खोखला? दिन-रात रवीन्द्र संगीत सुनकर ही तो वह ज्ञान-पिपासु अपनी तृषा नहीं बुझा पायेगा। पर अब तो नाक में नकेल डालने के लिए छेद बन गये थे। वह आतुरता से रविवार की प्रतीक्षा करने लगा।

महीना-भर अपने शिव की बारात के गणों के साथ इधर-उधर घूमने का प्रोग्राम कली को पन्द्रहवें ही दिन स्थगित कर कलकत्ता लौटना पड़ा। पार्टी के सबसे छोटे सदस्य डिकी वैलहैम को वाराणसी के ढाबे में किये गये समय-असमय के कुपाच्य भोजन ने प्राणान्तक ख़ूनी पेचिश से रक्तहीन बना दिया था। कितनी ही बार कली ने अपने हठीले, बिगड़े राजकुमारों को समझाने की व्यर्थ चेष्टा की थी—'भारतीय खाना ही खाना है, तो वह उन्हें किसी साफ़-सुथरे होटल में ले चलेगी।' पर नहीं, उन्हें तो काशी की विचित्र वस्तुएँ ही सम्मोहन के जाल में बाँधे जा रही थीं। कन्धे तक फैले पीले बालों की अयाल झटकाते, उसके विदेशी अवधूत ज़िद चढ़ने पर अड़ियल टट्टू से दोनों पैर अड़ाकर खड़े हो जाते। बड़े-बड़े अल्यूमोनियम के पतीलों में घोटे जा रहे सुस्वादु भोजन की सुगन्ध की लपटों ने दिन-भर इधर-उधर भटके भूखे दल को रोक लिया।

"ओह, डेलीशस," दल की विदेशी छोकरी ने नटिनी की-सी फुर्ती से झुककर सुगन्धित वाष्प से कम्पित ढँकने को सूँघकर ढाबे के स्वामी ठिगने सरदार को अपने एक ही नीले कटाक्ष से चित कर दिया।

"सब कुछ एकदम ताज़ा है, मेमसाहब, नान करी, तन्दूरी मुर्ग़," सरदार को शायद इसके पूर्व भी काशी में दिन-रात आते-रहते हिप्पियों की जजमानी निभाने का ख़ासा अभ्यास था।

"टिपिकल इण्डियन करी एण्ड टिपिकल इण्डियन चेफ़" कहकर मुसकराती मण्डली जम गयी।

कली कटकर रह गयी थी। जैसा घिनौना बदबूदार सरदार था, वैसी ही रिकेटी हिलती टीन की कुरसियाँ। गन्दी मोटी गैंडे के खालवाली क्रॉकरी और जाँघ खुजाते घिनौनी अनहेल्दी सूरत के छोकरे नौकर! पर दल के नक्क़ारखाने में पिछले पन्द्रह दिनों से उसकी तूती का स्वर क्रमशः अस्पष्ट होता एकदम ही विलीन हो गया था। हारकर वह भी एक कोने की कुरसी पर बैठ गयी थी। सरदार के बार-बार आग्रह करने पर भी वह एक प्याला चाय तक नहीं पी पायी थी, और छिः-छिः, उसके साथ ये विदेशी एक से एक लक्षाधिपतियों के सभ्य पुत्र, मानवीय सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच-कर फिर किस वहशी सभ्यता के आदिम स्रोत को छूने स्वेच्छा से अनजान घाटियों की ओर लुढ़कते चले जा रहे थे!

चाहने पर वे काशी के दामी ब्रोकेड लेकर अपनी श्वेत काया को सजा सकते थे। उनके बटुओं की गरिमा को कली बहुत निकट से देख चुकी थी, पर उनके सिर पर बँधा था सवा रुपये का बनारसी गमछा, धोती-कुरता, गौर ललाट पर वैष्णवी त्रिपुण्ड। चाहने पर शैम्पन या वैट सिक्स्टी नाइन की बोतलें सोडावाटर की बोतलों की भाँति ही वे सुगमता से जुटा सकते थे, पर घाट पर अवधूतों के अड्डे पर जमे, गाँजे चरस की दम खींचकर करेंगे त्रैलोक्य दर्शन, और बेचारी कली रेत पर दूर खड़ी-खड़ी घण्टों तमाशा देखती रहेगी!

होटल के एक ही कमरे में पाँचों पाण्डव और उनकी द्रौपदी! पहले दिन कली को भी अपने कमरे में सुलाने का दुराग्रह हुआ था पर 'डोण्ट बी चाइल्डिश' कहने पर शायद कली के ताम्रतेज ने उन्हें सहमा दिया था। किन्तु ढाबे में खाने के प्रस्ताव का अनुमोदन न करने पर भी कली उन्हें नहीं रोक पायी, उन्हें हाथ ही से चिंचोड़-चिंचोड़-कर मुर्ग़ा खाते और नान के बड़े-बड़े गस्से जंगली भिखारियों की भाँति निगलते देख कली दंग रह गयी थी।

फिर वह क्या एक ही दिन की बात थी! धारीदार कच्छाधारी, धुएँ से पाण्डु-जीर्ण बनियान और बिना साफ़े के कसकर बाँधी गयी सरदारजी की जटा पर ही कली के अतिथिदल की भागीरथी झरझराकर निरन्तर कई दिनों तक बहती रही थी। तन्दूरी मुर्ग़, नान और कश्मीरी मिर्च से सँवरे लाल छोलों ने, समय से कुछ पहले ही अपना प्रतिशोध ले लिया। काठमाण्डू का प्रोग्राम कैन्सिल कर, मृतप्राय वैलहैम को एक प्रकार से गोदी में उठाकर ही कली मि. शेखरन को सौंप आयी थी।

"ऐसे विचित्र दल का संचालन मुझसे नहीं होगा सर, आप दफ़्तर के किसी पुरुष कर्मचारी को ही इनका आतिथ्य सौंप दें।"

पर वे छोकरे क्या उसे इतनी आसानी से छोड़ देते?

"अपना प्रॉमिज़ भूल गयी क्या केली!" दल के छह फ़ुटी पॉल ने उसकी सुघड़

कलाई थाम ली। "कलकत्ते के श्मशान हमें केली ही दिखायेगी। इसने प्रॉमिज़ किया था मि. शेखरन!"

उसकी आकर्षक मुसकान् कली को किसका स्मरण दिलाती थी? अचानक कली के दोनों कान गर्म हो उठे।

"ठीक है, मि. शेखरन, वैलहैम के ठीक होने पर मैं इन्हें वहाँ पहुँचा दूँगी।" फिर अपनी बड़ी ही नटखट हँसी से वह शेखरन की ओर देखकर चली गयी।

पन्द्रह दिनों के बीच जिस घर को एक अटपटी उदासी में उलझा वह छोड़ गयी थी उसका नक़्शा ही बदल गया है, यह वह गृहप्रवेश के साथ ही समझ गयी। उसे देखते ही माया मुसकराती उसके कमरे में चली आयी।

"अरे वाह, आपने तो पूरे कमरे की मनहूसी ही दूर कर दी। हम लोगों ने तो इस कमरे में आना ही छोड़ दिया था।"

बहुत दिनों से सफ़ाईहीन कमरा भी स्वच्छ-सुघड़ लग रहा था।

"लगता है, खूब थक गयी हैं आप। बहुत लम्बा दौरा था क्या?"

कली ने पहली बार माया का आकर्षक चेहरा निकट से देखा।

लड़की अपने बड़े भाई का ही छोटा संस्करण थी एकदम। वही नाक, रसीली आँखें और चमकीले दाँत। गलग्रह से विकृत बन गयी अपनी बड़ी बहन से स्वभाव और रूप दोनों में माया निश्चय ही भिन्न थी। दिन-भर गुमसुम रहनेवाली जया रात को प्रगल्भा बनी सुदर्शन पति के मधुर प्रस्तावों पर कैसी ठण्डी छूरी फेरती थी, वह सब बिस्तर पर पड़े-पड़े कली सुनती रहती थी। बेचारा दामोदर....पत्नी के उस हिम-शीतल व्यवहार के कारण ही क्या वह क्षुधातुर व्यक्ति कँगले भिखारी की भाँति सुस्वादु व्यंजनों की सुगन्ध पाते ही लार टपकाने लगता था? किसी भी पुरुष की उपस्थिति कली को कभी भयावह नहीं लगी। किन्तु गृह के उस व्यक्ति के सम्मुख एकान्त में उसका दुस्साहसी कलेजा भी थरथरा उठता था।

"दौरे तो और भी लम्बे थे, पर लौटना पड़ा। जिन्हें साथ लेकर गयी थी, उनमें से एक की तबीयत अचानक बहुत ख़राब हो गयी थी। अम्मा ठीक हैं ना? नहा-धोकर तब उनसे मिलने जाऊँगी," कली हँसकर माया के पास ही कुरसी खींचकर बैठ गयी।

वह जैसे जानबूझकर क्षण-भर की उस अतिथि को देर तक बैठाना चाह रही थी। सचमुच ही दोनों भाई-बहनों की सूरत में अद्‌भुत साम्य था।

"आपको देखकर तो हमेशा यही लगता है कि नहा-धोकर ही चली आ रही हैं," माया ने प्रशंसापूर्ण दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देखकर कहा।

"ओह, धन्यवाद, पर देखिए," उसने घने केशगुच्छ के एक कुण्डल को उठा-

कर अपना हीरे के कर्णफूल से जगमगाता छोटा-सा कान दिखा दिया, "देख रही हैं ना ? लगता है, इंजन ने अपने सारे कोयले के धुएँ का टार्जेट मेरे कान को ही वना दिया है ?"

"आप नहा-धोकर जल्दी आइएगा, अच्छा ? एक जबरदस्त सरप्राइज़ है आपके लिए," एकदम वच्ची की-सी दूधिया हँसी से कली को सराबोर करती वह चली गयी।

क्या सरप्राइज़ हो सकता था भला ! क्या पता कुछ अनहोनी घटना ही इस बीच घट गयी हो।

अपने रहस्यमय बचपन के अन्धकारपूर्ण कक्ष में अन्धी वनी वह घण्टों तक अपने स्नेहालु अदर्शी अनजान पिता की ममतामयी आकृति को टटोलती रहती थी। सुदर्शन पिता, जो स्कूल की नीरस स्टडी में डेस्क पर झुकी, दिवा स्वप्नों में डूवी विद्रोहिणी नन्हीं पुत्री को अचानक आकर उसके कल्पनालोक में छाती से लगा लेते थे, अव कहीं खो गये थे।

आज उसी कल्पनालोक का वर्षों से वन्द ज़ंग लगा ताला जैसे स्वयं ही खटाक से खुल गया था। अस्पष्ट अन्धकार में भटकती वह शून्य में बाँहें फैलाती फिर किसे खोजने लगी थी ? क्या पता उसकी अनुपस्थिति में उस दम्भी व्यक्ति ने उसके सौन्दर्य का लोहा मान लिया हो। उसे पाने के लिए वह शायद वैसे ही व्याकुल हो उठा हो, जैसे आज तक असंख्य पुरुष नतजानु होकर उसके सम्मुख व्याकुल हो लड़खड़ाकर बैठ गये थे ! क्या पता चुलवुली माया उसे यही सरप्राइज़ देने बुला गयी हो। दूसरे ही क्षण उसके पैरों के तले से ठोस धरातल को उसकी कुशाग्र विवेक चेतना ने स्वयं ही खींच लिया। कैसा बचपना था उसका ! जिस माया से वह पहली बार ऐसी घनिष्ठता से बोल पायी थी, वह क्या उसे ऐसा सरप्राइज़ देने बुला सकती थी ? और फिर ज़िस व्यक्ति को लेकर वह निरर्थक रसीला ताना-वाना बुन रही थी, वह उसकी जीवन-पुस्तिका का एक-एक वर्जित परिच्छेद पढ़ उसे दूर नहीं पटक चुका है ?

कमरा खुला ही छोड़कर वह अम्मा से मिलने चली गयी।

भारी पर्दे के व्यवधान से तीर की गति से आ रहे जिस व्यक्ति से वह पूरे वेग से टकरायी, उसने "अरे-अरे, सँभल के" कह, उसे बड़े यत्न से बाँहों में ऐसे भर लिया, जैसे मसलकर कीमा बना देगा। तीव्र टक्कर से मेज़ पर धरा एक फूलदान झनझनाता दूर तक लुढ़कता चला गया और शायद उसी आकस्मिक दुर्घटना का सशब्द आह्वान जया को वहाँ खींच लाया। सुन्दरी कली का सद्य:स्नाता सौन्दर्य पति के बाहु-पाश में बन्दी देख वह उलटे पैरों लौट गयी। कली ने एक झटके से दामोदर के वाहुपाश से अपने को छुड़ा लिया तो वह बेहया वड़ी निर्लज्जता से मुसकराने लगा, "वाह-वाह, क्या सुगन्ध लगाती हैं आप ! पल-भर को ऐसा लगा जैसे कोई इम्पोर्टेड सेंट की शीशी ही खाली हाथ में फूट गयी हो।" फिर वह दोनों रिक्त हथेलियों की मुट्ठी बाँधकर सूँघने लगा।

तड़पकर कली भीतर चली गयी। क्या सोचती होगी जया। कोई अनदेखी टक्कर उसे किसी की बाँहों में डाल दे, तो दोष क्या उसका था? पर इस दामोदर के बच्चे को कड़ा सबक़ सिखाना ही होगा।

माया के कमरे में ही चटाई डाले अम्मा उससे कई पोस्टकार्ड लिखवा रही थीं। उसे देखते ही अम्मा ने बार-बार नाक पर फिसलता चश्मा उतारकर नीचे धर दिया।

"ला तो री माया, पहले इसका मीठा मुँह करा," उन्होंने हँसकर उसे हाथ से खींच अपने पास बिठा लिया।

"क्या बात है, अम्मा, कैसा मुंह मीठा करवा रही हो?" कली अभी भी जंगली दामोदर के काँटे चुभोते स्पर्श से सिहरी जा रही थी।

"ले पहले पेड़ा खा," अम्मा ने अपने हाथों से पेड़े का आधा टुकड़ा कली के मुख में ठूँस दिया।

"अब सुन, हमारे लल्ला ने शादी के लिए हाँ कर दी है।"

कण्ठ का पेड़ा कण्ठ ही में अटक गया। नादान शून्य में फैली बाँहें एक बार फिर किसी अनाड़ी तैराक की भाँति अगम जलराशि में किसी तिनके का अदृश्य सहारा टटोलने लगीं।

"अब पूछ लड़की कौन है?"

एक डुबकी के साथ ही जैसे बहुत-सा पानी अनाड़ी तैराक की आँख, नाक, कान में घुसकर उसे मृतप्राय बना गया। कली को लगा वह गिर पड़ेगी। ऐसी पहेली क्या अम्मा कभी बुझाती थीं?

"अरी, बावली, अब भी ना समझी? अपने पाण्डेजी की कुन्नी। ज़बर्दस्ती ले गये थे ना उस दिन? फिर ऐसी सोहनी सूरत भला किसे पसन्द नहीं आती। अरी छोटी-सी थी यही कुन्नी तो एकदम मरियल, लिवर का इलाज कराने पाण्डेजी मद्रास ले गये थे। अब तो उसका नक़्शा ही बदल गया है। क्यों है ना री माया?"

समग्र ब्रह्माण्ड कली को लिये गोल-गोल घूम रहा था।

"इसी इतवार को हमें समधियाने की दावत में जाना है। तू भी चलेगी बिट्टो? तू क्या मेरी जया, माया से परायी है?"

"और क्या, आपको तो चलना ही होगा, साथ ही एक काम भी आप ही को करना होगा," माया उसके कन्धे पर झुक आयी।

"उसी दिन पाण्डेजी टीका भी चढ़ा रहे हैं। हमारी अम्मा को भी दुहराना होगा। पहाड़ का यही क़ायदा है। एक बढ़िया-सी साड़ी आप ही को खरीदकर ला देनी होगी।"

"मुझे?" कली के सूखे ओठों से प्रश्न स्वयं ही फिसल गया।

"क्यों? दिन-रात आप मॉडल बनती रहती हैं। आप की-सी बढ़िया च्वाइस

भला और किसको होगी ? उस दिन कुन्नी भी शायद आपकी कोई फ़ैशन परेड देख आयी थी। कह रही थी, 'तुम्हारी मिस मजूमदार तो डी. सी. एम. की सस्ती छींट का थान भी कन्धे पर डालकर निकल जायें, तो किमख्वाब लगने लगता है। बस, इतना ध्यान रखिएगा कि साड़ी का रंग नीला या काला न हो। क्यों है ना अम्मा ?"

"अरी चटक लाल लइयो बस। वहू तो उजली चिट्ठी आ रही है।" अपनी गर्वोक्ति के मुँह से निकलते ही अम्मा खिसिया गयीं। साँवली कली के सम्मुख बार-बार गौरवर्ण भावी पुत्रवधू के उजले रंग का बखान ही शायद कली को अनमनी कर गया था।

सरला अम्मा ने चट से उसे रूठी बच्ची की भाँति फुसलाने के लिए बात पलट दी, "अरी अब गोरे रंग से थोड़े ही ना सब कुछ होता है। हमारी इस कली को ही देखो, लाल, नीला, पीला जो पहन ले वही खिल उठता है। पर हमारे पहाड़ी ब्याह-बारातों में राती-पीली चुनरी ही चढ़ती है बेटी।"

"ठीक है अम्मा, मैं लेती आऊँगी।" कली उठ गयी।

"अरी रुपये तो लेती जा," अम्मा ने पास ही धरा क़लमदान खोलकर सौ-सौ के चार नोट निकाल लिये।

"इत्ते सारे नोट लेकर क्या करूँगी अम्मा ?" कली साड़ी के मोल-तोल के मूड में थी भी नहीं।

"अरी, सौ में तो आज-कल लट्ठे का एक थान भी नहीं आता। बढ़िया-सी ला देना बेटी। बड़े घर की लड़की आ रही है। हमेशा अच्छा खाया-पहना, ओढ़ा होगा।"

चारों नोट हाथ में दबाये कली लौटी, तो माया भी साथ-साथ चलने लगी। खिड़की के पास ही सिर झुकाये खड़ी जया की लाल सूजी आँखों को दोनों ने एक साथ देखकर दृष्टि फेर ली।

माया अपदस्थ-सी हो गयी। क्षण-भर पूर्व का समग्र उल्लास न जाने कहाँ उड़ गया। धीमे स्वर में वह स्वयं ही कहने लगी, "पता नहीं क्या हो गया है दीदी को, दिन-रात खुद ही नहीं रोतीं, घर-भर को रुलाती हैं। इतनी मनहूसी के बाद ऐसा शुभ दिन आया और इनका मुँह लटका ही रहता है।"

बड़ी बहन के प्रति उसके आक्रोश को सुनते ही कली ने उसे अपने कमरे में खींच लिया, "माया, तुम से कुछ कहना है," और उसे अपने पलंग पर बिठाकर वह एक ही साँस में अपनी आकस्मिक मुठभेड़ का विवरण उगल गयी।

"पता नहीं तुम्हारी दीदी क्या सोचती होंगी। इससे पहले कि मैं तुम्हारे जीजा के बाहुबन्धन से अपने को छुड़ाती, दीदी पलटकर चली गयीं। तुम उन्हें सब समझा-कर अभी कह दो माया, प्लीज़ !"

कली की बहुत बड़ी आँखों को गीली देखकर माया मुग्ध हो गयी। ठीक जैसे

किसी चलचित्र के चतुर कैमरामैन ने सुन्दरी नायिका की जलभीनी बड़ी आँखों पर फोकस का घेरा डाल उन्हें और भी सुन्दर बना दिया था।

"तुम क्या सोचती हो दीदी जीजा को नहीं जानतीं ?" एक लम्बी साँस खींचकर माया पल-भर को चुप हो गयी। फिर उठकर उसने द्वार बन्द कर दिया। क्या पता दीवार का कान बना कुटिल दामोदर यहीं कहीं छिपा दोनों की बातें सुन रहा हो। "तुम तो परायी हो। मैं तो दीदी की सगी बहन हूँ। मुझे ही उसने एक दिन ऐसे जकड़ लिया। मैंने तो कसकर एक तमाचा भी धर दिया। अब तुम्हीं सोचो, क्या ऐसी बात मैं अम्मा, दीदी या अपने पति से कह सकती थी ? मैं तो स्वयं ही सोच रही थी कली, तुम्हें आगाह कर दूँ। शायद इसी आशंका से बड़े दा भी विचलित हो गये थे। तुम्हें हटाने के लिए अम्मा से दो-तीन बार कह चुके हैं।"

"अच्छा ?" कली का कलेजा डूब गया। तो वह उसे यहाँ से खदेड़ना चाहता है। किन्तु चित्त का क्षोभ उसने चेहरे पर नहीं उभरने दिया।

"तुम्हारे बड़े दा को मेरी चिन्ता नहीं करनी होगी माया," वह हँसकर कहने लगी, "मैं खुद ही कलकत्ते से बाहर चली जा रही हूँ।"

"वाह, यह कैसे हो सकता है, बड़े दा की शादी के पहले आप को जाने ही कौन देगा ?"

कुछ ही घंटों की परिचिता माया उससे किसी वर्षों की पूर्वपरिचिता सखी की अन्तरंगता से लिपट गयी।

"कहाँ जा रही हैं, आखिर सुनूँ भी।"

"पिछले महीने ऐसे ही खेल-खेल में एक बड़ी अच्छी नौकरी की अर्जी डाल दी थी। उसमें सुना बड़ी सिफ़ारिश चलती है। सीलोन टी बोर्ड के सेक्रेटरी का पद केवल योग्यता की ही क़ैफ़ियत नहीं माँगता। यू मस्ट हैव लुक्स, वर्थ ऐंड ब्रेन। फिर इण्टरव्यू देकर लौटी तो आशा ही छोड़ दी थी।"

"क्यों ?"

"एक से एक सुन्दरी अप्सराओं का मेला जुटा था।"

"तुमसे भी सुन्दर ?" माया की विस्फारित दृष्टि में मिथ्या चाटुकारी का लवलेश भी नहीं था।

"और क्या, देखती तो बस देखती ही रह जाती। मिनी साड़ी, मिनी स्कर्ट, फ़ाल्स आइलैशेज़, फ़ाल्स ब्रेस्ट-पैड्स और यहाँ अपना कुछ भी फ़ाल्स नहीं था। जो था सब एकदम विधाता का दिया—राँ मैटीरियल।" कली हँसने लगी। "पर फिर भी बलिहारी उनकी रुचि को, पता नहीं कैसे मुझे ही छाँट लिया। देखो ना!" बटुए से अपना एपाइण्टमेण्ट लेटर निकालकर उसने माया को थमा दिया।

"हाय राम, मैं मर गयी। इतनी दूर जा रही हो, एकदम रावण के देश में।

देख लेना दूसरे ही दिन भागकर चली आओगी। कलकत्ते की माया क्या सहज में छूटती है।"

"शायद।" दार्शनिक की-सी मुद्रा में कली ने मुसकराकर पत्र को बड़े यत्न से मोड़कर बटुए में धर लिया और कुहनियों को तकिये की टेक लगाकर पलंग पर ही औंधी हो गयी।

"एक तो इस नौकरी में बाहर जाने का सुअवसर मिलता रहेगा। फिर सच पूछो तो मैं स्वदेश से कहीं दूर जाना भी चाहती थी माया। अब यह तो बतलाओ कि शादी है कब ?"

"यही तो चिन्ता का घुन अम्मा को परसों से चाटे जा रहा है," माया कली के खुल गये घड़ी के फ़ीते को बाँधती कहने लगी।

"बड़े दा ने एक शर्त भी तो लगायी है। अब पता नहीं कौन सी अनोखी शर्त है! कहीं अब ये अड़ंगा न लगा दें कि एक-दो साल तक शादी ही नहीं करेंगे। पर कुन्नी को ठीक से देख लेने पर फिर शर्त-वर्त सब भूल जायेंगे।"

"अच्छा ? इतनी सुन्दर है क्या ?" कली ने पूछा और फिर स्वयं ही खिसिया गयी। अम्मा की बात अलग थी। उनसे तो वह कुछ भी उलटी-सीधी बातें पूछ सकती थी, पर माया कहीं कुछ सोच न बैठे। उसे भला क्या पड़ी है। हुआ करे सुन्दर।

"अब कैसे बताऊँ तुम्हें," माया बोली, "शायद तुम्हें पसन्द न आये। यू नो, दैट समथिंग-समथिंग," दोनों हथेलियों की तालियाँ-सी बजाती वह अपनी उलझन में कुछ क्षणों तक उलझ गयी, "शरीर थोड़ा भारी है, बल्कि ये तो कहने लगे, 'आहा, साउथ इण्डियन ऐक्ट्रेस-सी लगती है एकदम।' मैंने डाँटा भी, 'कहीं बड़े दा के सामने मत यह कह देना।' पर हमारे समाज में अभी अच्छी लड़कियों का स्लम्प है। और फिर बड़े दा हमारे 'हाई ब्रोड' हैं। थैंक गॉड। ये पसन्द तो आयीं। अभी भी विश्वास नहीं होता।"

अचानक कार का शब्द सुनकर वह अचकचाकर खड़ी हो गयी, "लगता है ये आ गये, आज इन्हें लेकर बड़े दा बिना नाश्ता किये ही रामनवमी झलाने निकल गये थे।"

"रामनवमी ? वह तो कोई व्रत होता है ना ?" कली भी उठकर बैठ गयी।

"हाय राम, मैं कहाँ जाऊँ," माया फिक से हँस पड़ी। "इतना भी नहीं जानतीं, तीन लड़ों की अम्मा की रामनवमी झलाने ले गये थे, सोने का हार! उस उनतीस तोले की रामनवमी के लिए मैं और दीदी झींकती रहीं, पर हमें नहीं मिली। मिल रही है कुन्नी को। 'लकी बग, इट इज़ टेरिफिक!' यह बड़े-बड़े दाने—ओकेज़नल वियर के लिए 'जस्ट दं थिंग।' तुमसे इसीसे तो ज़रीदार साड़ी लाने को कहा है। टीके में यही दो चीज़ें चढ़ेंगी। झलाकर ले आये होंगे, तो अभी तुम्हें दिखला जाऊँगी।"

पर माया के जाते ही कली छलाँग लगाकर बाहर निकल गयी। न उसने रूखे, उलझे बालों पर कंघी फेरी, न दर्पण की ओर ही देखा। सुबह की भूखी थी, प्यास से गला सूखा जा रहा था। कहीं एक प्याला चाय का भी जुट जाता, तो शायद कनपटी पर चल रहे हथौड़े बन्द हो जाते। पर द्वार पर ताला मारकर वह निरुद्देश्य भटकने चल पड़ी। आज उसका ऑफ़ डे था, पर दिन-रात धमा-चौकड़ी मचा, त्रैलोक्य दर्शन की एक-एक गोली मुख में धर अल्पकालीन मृत्यु की निश्चेष्ट करवट में सो जानेवाले अपने भूत-पिशाचों के दल में स्वयं डाकिनी बन सम्मिलित होने वह अचानक असमय ही उनके होटल में पहुँच गयी। पॉल ने एक चीख मारकर उसे बाँहों में उठा लिया, "हे, केली, तुमने अपना पता दिया होता तो हम तुम्हें कब का किडनैप कर ले आये होते। वैलहैम आज एकदम ठीक है। कल डिस्चार्ज हो जायेगा। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को ही श्मशान-दर्शन का आदेश गुरुजी ने दिया था। बस रविवार को श्मशान में दिन-भर पिकनिक और रात को साधना—प्यूनी—प्यूनी माई लव !"

वह बेतरतीब से फैले दो-तीन शेपलेस चोगों के ऊपर औंधी होकर मुर्दे-सी पड़ी थी। कली को यह विदेशी लड़की बहुत पहले मुक्तेश्वर लैब में देखी, क्षय-रोग के कीटाणुओं-द्वारा ज़बरन रोगिणी बनायी गयी सफ़ेद चुहिया-सी लगती थी। दिन-भर वह मुरझायी खोयी रहती, पर सन्ध्या की आगमनी के साथ-साथ अपनी गोली मुख में रखते ही वह बुलबुल-सी 'चहकने लगती।

"चौदह वर्ष की थी तब से ही एडिक्ट है यह," वेलहैम ने कली को बताया था।

करोड़पति पिता की इकलौती पुत्री प्यूनी के नेतृत्व में ही यह दल भारत आया था। जिन प्रवासी योगिराज ने उसे शिक्षा दी थी, उन्हीं के प्रभावशाली सिफ़ारिशी पत्रों का पुलिन्दा उसे बार-बार कस्टम के दुरूह चक्रव्यूह से बचाकर सकुशल बाहर निकाल लाता। दल के पाँचों पाण्डव उसकी मुट्ठी में बन्द थे, जिन्हें समय-समय पर वह ढील देकर इधर-उधर घूमने छोड़ देती। पर अपोलो-सा सुन्दर नीली आँखोंवाला पॉल सदा उसकी मुट्ठी में बन्द रहता।

कली के प्रति अपने उस सर्वाधिकार सुरक्षित प्रेमी का आकस्मिक रुझान शायद इधर उसने देख लिया था। श्मशान-यात्रा के प्रस्ताव को उसने जान-बूझकर ठुकरा दिया, "तुम लोग जाओ, मेरी तबीयत ठीक नहीं है," वह पीठकर लेटी ही रही।

फिर भी पॉल बड़े दुस्साहस से कली के कान के पास झुक आया और फुसफुसाकर कहने लगा, "तुम शनिवार को ही यहाँ आ जाना। फिर तड़के ही उठकर चल देंगे।"

फुसफुसाहट के साथ ही क्षुधातुर अधरों के स्पर्श से कली का कान सिहर उठा। वह झपक से उठ गयी, "नहीं, मैं इतवार को ही आकर तुम्हें वहाँ ले चलूँगी, सिंस इट वाज़ ए प्रॉमिज़। नहीं तो हमारे यहाँ स्त्रियाँ श्मशान नहीं जातीं।"

"ओ माई स्वीट," पॉल ने सूली पर टँके ईसू की-सी ही निर्दोष मुद्रा से रूठी

कली को मनाने की चेष्टा की।

"तुम से कहा है ना मैंने, हमारे दल में सेक्स इज़ नो बार। न हम में कोई स्त्री है, न पुरुष। थोड़ा बैठो ना!"

"नहीं पॉल, मुझे कुछ शापिंग करना है।"

होटल से निकलकर उसने महातृप्ति की साँस लेकर ललाट का पसीना पोंछा।

सोलह

उस विदेशी दल का क्षणिक सान्निध्य भी उसे ईथर का-सा नशा सुंघाकर झुमा देता था। फिर क्यों गयी थी वहाँ वह मन ही मन सोचती, उत्तरपाड़ा की बस में चढ़कर बैठ गयी। क्या करेगी उत्तरपाड़ा जाकर। कौन था वहाँ? कोई भी नहीं....फिर क्या करेगी वहाँ जाकर....क्यों....उसी बस स्टाप से अलीपुर वापस चली आयेगी....पगली कहीं की, इससे तो कहीं और चली जाती....कहाँ?....वहाँ? जहाँ झलाकर नयी बनायी गयी रामनवमी की प्रदर्शनी चल रही थी, या लौरीन आण्टी के यहाँ....कहाँ जा सकती थी वह....इतने बड़े शहर में क्या कहीं भी ऐसी दो आँखें थीं, जो उसे देखकर प्रसन्नता से चमक उठतीं?....क्या विधाता ने उसे इसीलिए बनाया है कि निर्दयी संसारी उसे अपने स्वार्थ के लिए निर्जीव शटलकॉक की भाँति इधर-उधर उछालते रहें? क्या वह जीवन-भर दूसरों के लिए ही विवाह की साड़ियाँ खरीदती रहेगी?....जिस रविवार को पूरा गृह आमोद-प्रमोद के मांगलिक उत्सव में आकण्ठ डूबा होगा, वह श्मशान में पिकनिक मना रही होगी!

चलती बस में वह स्वयं ही हँसने लगी। पास बैठी वृद्धा पारसी महिला उसे घूर-घूरकर देखने लगी। वह बीमार-सी पीली सुन्दरी लड़की उसे कुछ एब्नॉर्मल-सी लगी। कैसे हँसे जा रही थी! क्या पता किसी पागलखाने से भागकर चली आयी हो। पारसी महिला ने सहमकर पीठ फेर ली।

एक के बाद एक बस बदलती कली घर पहुँची, तो रात हो गयी थी। बग़ल का पैकेट अभी जाकर ही अम्मा को दे आयेगी। एक अनजानी छोटी दूकान पर ही इतनी सुन्दर साड़ी मिल जायेगी, उसे आशा भी नहीं थी। एकदम फ़्लेमरेड। उसपर चौड़ा ज़रीदार आँचल, न बेल न बूटी। काउण्टर पर एक-सी दो साड़ियाँ धरी थीं—ठीक जैसे जुड़वा बहनें हों। कली को न जाने क्या सनक सवार हुई कि दोनों खरीद लीं।

वह साँवली है तो क्या हुआ। लाल रंग जितना साँवले पर खिलता है, उतना क्या कभी गोरे पर खिल सकता है? सन्थाल सुन्दरियों की काले गोबरा-सी चिकनी काली पीठ पर शिथिल जूड़े पर लगा रक्त जवा का पुष्प कितना सुन्दर लगता है! पिकनिक के दिन यही साड़ी पहनेगी। और चलते-चलते उसे भी दिखा देगी—'ए मिस्टर, अकेली तुम्हारी कुन्नी ही नहीं पहन सकती, ऐसी साड़ी। देख लो कौन अधिक सुन्दरी लगती है, गोरी या काली?'

वह मन ही मन मुसकराती अपनी साड़ी कमरे में धर आयी, फिर हाथ का दूसरा पैकेट नचाती, हँसती गोल कमरे में पहुँच गयी। पूरे परिवार की गोष्ठी चल रही थी। प्रवीर न जाने किस बात पर ठहाका लगाकर हँस रहा था। उसे ऐसे हँसते देख कली आश्चर्य से ठिठककर खड़ी रह गयी। अच्छा यह क्रूर व्यक्ति ऐसे हँस भी सकता है।

पर अचानक कली को कमरे में आविर्भूता देखकर उसकी हँसी आरोह ही में सूखकर रह गयी। वह फिर गुमसुम हो गया। चेहरे पर उभरी खीझ की रेखाएँ देखकर कली मुसकराकर बढ़ गयी।

"लीजिए अम्मा," उसने साड़ी का पैकेट अम्मा की गोदी में डाल दिया।

"देखिए पसन्द की चीज़ है या नहीं?"

"आओ-आओ बेटी," अम्मा ने चश्मा लगा लिया और पैकेट खोलने लगीं, "मैं जानती थी कि तुम ज़रूर ले आओगी। वाह, एकदम ऐसा ही रंग चाह रही थी मैं, क्यों, है ना जया?" पर कली को देखते ही जया फिर अटेन्शन में खिंचकर काठ का सिपाही बन गयी थी।

"हूँ" कहकर वह चुप रह गयी। निर्लज्ज दामोदर उस क्षण-क्षण में नये रूप धरनेवाली अष्टभुजा की सी तेजोमयी सुन्दरी को घूरे जा रहा था।

"चल रही है ना इतवार को?" अम्मा ने पूछा।

"नहीं अम्मा," कली जान-बूझकर ही माया से सटकर बैठ गयी। वैसे अम्मा के पास भी बहुत-सी जगह खाली थी, पर माया से सटकर उसका सुदर्शन भाई जो बैठा था। कली का आँचल क्षण-भर को हवा में फहराता माया की पीठ से होकर प्रवीर के कन्धे को छू गया। कली ने कनखियों से अपने बड़े यत्न से फैलाये गये आँचल की प्रगति देखी और मुसकराने लगी।

"बड़ी सस्ती मिल गयी अम्मा, पौने चार सौ की है—असल में अब बनारसी साड़ियों की खूब स्मगलिंग चल रही है, इसी से कुछ सस्ती मिल गयी है।"

"पौने चार सौ को आप सस्ती कहती हैं," नवीन की आँखें फटने लगी थीं, "इतने में तो हम साल-भर के कपड़े बनवा लेते। हमें तो आज ही पता लगा कि साड़ियाँ भी ससुरी इतनी महँगी होती हैं।"

"वाह," कली हँसकर कहने लगी, "पिछली बार कनाडा में ढाई हज़ार की

एक साड़ी में तो मैं ही मॉडल बनी थी। कहिए तो अम्मा, आपकी बहू के लिए वही साड़ी ला दूँ," उसने मज़ाक़ किया।

"नहीं जी, माफ़ कीजिए," दामोदर बीच में ही बोल पड़ा, "हमारी अम्मा ऐसी फ़िज़ूलख़र्ची में विश्वास नहीं करती। उनका बस चले, तो ढाई हज़ार में साड़ी सहित मॉडल ही ख़रीद लायेंगी।"

एक क्षण को कली का चेहरा लाल पड़ गया। इस व्यक्ति को देखते ही उसके शरीर में अजीब सुरसुरी होने लगती थी।

"अब मैं चलूँ," वह उठ गयी, "यह लीजिए कैशमेमो और रुपये," उसने बटुआ खोलकर कुछ नोट अम्मा को थमा दिये।

वहाँ से उठकर जाने की उसकी ज़रा भी इच्छा नहीं थी, जी कर रहा था देर तक यहीं बैठी-बैठी गप्पें मारती रहे। पर वह चलने लगी, तो किसी ने भी उससे एक बार बैठने को नहीं कहा। लग रहा था, उसके सहसा आ जाने से उस पारिवारिक गोष्ठी में तनाव-सा आ गया है। हँसनेवाले ने हँसना बन्द कर दिया है और उसके आने से पहले बकर-बकर करनेवाली जया मुँह लटकाकर कोने में बैठ गयी है। अम्मा ने भी तो एक बार भी बैठने का आग्रह नहीं किया। वह चुपचाप उठकर अपने कमरे में चली आयी।

बड़ी देर तक वह खिड़की की ठण्डी सलाखें पकड़कर सूनी सड़क को देखती रही। पहले एक छोटी-सी दुर्घटना हुई—किसी स्कूटर की एक टैक्सी से टक्कर, फिर गाली-गलौज, पुलिस की भीड़भाड़ और फिर सब शान्त। थोड़ी देर में 'बोलो हरि, हरि बोल' के आह्वान से दिशाएँ गुँजाती एक अर्थी गयी, दो-तीन शराबी गाते खिल-खिलाते निकले, फिर सड़क कुछ क्षणों के लिए जनहीन बन गयी।

दिन-भर की थकान से कली का अंग-अंग दुख रहा था, पर आँखों में नींद नहीं थी। आज इतने वर्षों में उसे अपनी अम्मा की याद क्यों आ रही थी? गुलाबी साड़ी, गौरवर्ण, उदास आँखें और उन आँखों में कली के प्रति कैसा विचित्र भाव! क्या वह सच्चा वात्सल्य था या करुणा थी? कभी-कभी कितनी ही अस्पष्ट आकृतियाँ, प्रेत छायाओं-सी उसे अनिद्रावस्था में भी घेरकर नाचने लगती थीं। लम्बी, नाटी, गोरी, साँवली असंख्य लाड़-दुलार-भरी देशी-विदेशी मौसियाँ, रेशमी कपड़ों में झलमलाती दासियाँ, एक-दूसरे से टकराते झाड़-फानूस, दूध-सी धुली चाँदनी, उस पर गावतकिया लगाये, कितने सारे सजे-सँवरे पुरुष, और गहनों से झलमलाती बीच में कान पर हाथ धरकर गाती अम्मा—

जोबनवा के सब रस
ले गइलै भँवरा
गूँजी रे गूँजी

चौंककर कली उठ बैठती।

क्या वह प्रेत दरबार था ! यदि कभी उसने देखा नहीं तो वह गाना भला उसे कैसे याद रह गया ? एक बार हँसी-हँसी में उसने अम्मा से पूछ भी लिया था, 'क्यों अम्मा, तुम कभी यह गाना गाती थीं ना ?''

अम्मा का चेहरा सफ़ेद फक पड़ गया था। 'नहीं, पता नहीं कहाँ से सुन आयी है,' उसने कहा था।

पर एक दिन स्कूल से अचानक ही होम लीव मिल गयी और वह माँ को छकाने, दबे पैरों खिड़की से उचककर देखने लगी। पलंग पर बैठी माँ आँखें मूँदे कान पर हाथ धरे वैसे ही मीठी आवाज़ में गा रही थी, वही गाना—

जोबनवा के सब रस
ले गइलै भँवरा
गूँजी रे गूँजी

आँखों से बहती अविरल अश्रुधारा देखकर माँ को छेड़-छेड़कर दिन-रात जलानेवाली अबाध्य कली भी सहमकर रह गयी थी।

आज माँ का वही गाना वह स्वयं गुनगुनाने लगी। कितनी सधी मीठी आवाज़ थी माँ की ! तुझे अँगरेज़ी स्कूल में न भेजा होता, तो आज तक तू भी टप्पा-ठुमरी गा सकती थी—क्या बढ़िया आवाज़ है, पर अब क्या ख़ाक सीखेगी !' सचमुच ही अपनी मीठी आवाज़ की मोहक गूँज पर कली स्वयं मुग्ध हो गयी।

उसी स्वर के साथ सहसा बड़ी-बड़ी आँखोंवाली मुसकराती एक और प्रेत छाया उसके तप्त ललाट पर हाथ धर देती—तानी मौसी—कितनी ही बार कली उस कुछ-कुछ पहचानी स्नेही आकृति का पूरा चेहरा याद करने की कोशिश करती, पर कभी दो मुसकराती आँखें पल्ले पड़तीं, कभी छोटे-से रसीले, हँसी से फड़कते अधर। बुरी तरह से उलझे बचपन के तानों-बानों में उलझकर वह फिर सो जाती।

उस दिन भी यही हुआ। सुबह उठी तो दिन चढ़ आया था। एक बार वैलहैम को लेने अस्पताल जाना होगा, फिर दफ़्तर। होटल जाने पर फिर अभागा पॉल नहीं आने देगा, इसी से वैलहैम को टैक्सी में ही भेजकर वह दफ़्तर से सीधी घर चली आयेगी। पहले दफ़्तर जाना होता, तो अम्मा से बिना कहे वह पाँव भी बाहर नहीं निकालती थी, पर अब नित्य प्रहरी बने दानव-से दामोदर के भय से वह हर पर्दा उठाने से पहले ऐसे झिझक-सहम कर भीतर झाँकती थी, जैसे कोई ज़हरीला बिच्छू पर्दे की परत में छिपा बैठा हो !

कमरे में ताला मारकर वह दबे पैरों निकल गयी। वैसे चाहने पर वह शनिवार की आधी छुट्टी घर ही पर मना सकती थी, पर जान-बूझकर ही वह इधर-उधर डोलती रही। जिस घर में अम्मा के पास पैर फैलाकर छुट्टी के दिन गप्पें मारने में

उसे महा आनन्द आता था, वही घर अब उसे काट खाने को दौड़ता। लगता, सब उसे सन्दिग्ध दृष्टि से घूरे जा रहे हैं। कहीं सरला अम्मा को भी तो उनके बेटे ने नहीं भड़का दिया? मन की व्यर्थ आशंका से त्रस्त कली दिन डूबे घर लौटी, तो द्वार पर ही कई ठोंगों से लदी-फँदी माया मिल गयी।

"बाप रे बाप, क्या-क्या ख़रीददारी कर लायी हो?" हँसकर कली ने पूछा।

"क्या नहीं लायी, यह पूछो। मेवा-मिष्ठान्न, कॉस-मेटिक्स, रूमाल और फल। हाथ टूटे जा रहे हैं। उस पर भी नारियल लाना भूल ही गयी। कल बड़े दा का टीका चढ़ रहा है ना, चल रही हो ना कली?"

कल का नाम सुनते ही कली का उत्फुल्ल चेहरा मुरझा गया। "नहीं माया, तुमसे कहा था ना, कल एक ज़रूरी काम से दिन-भर बाहर रहना है और फिर बड़ा एम्बरैसिंग लगता है माया! न वे मुझे जानते हैं, न मैं उन्हें। बेकार में 'दाल-भात में मूसरचन्द' बनकर क्या करूँगी? परसों लौटकर तुमसे सब सुनूँगी। कल सुबह तड़के ही उठकर जाना है, इसी से अभी जाकर लम्बी तान रही हूँ।"

वह हँसकर कमरे का ताला खोलकर भीतर चली गयी। वैसे इतवार के दिन कली दस बजे तक सोती रहती थी। कभी-कभी तो अम्मा ही आकर उसे उठा जातीं, पर उस दिन उसने चार ही बजे का अलार्म लगा लिया था।

नहा-धोकर उसने उस दिन अपने प्रसाधन का नित्य का मुखौटा उतारकर दूर धर दिया। वही जुड़वाँ लाल साड़ी पहनकर वह दर्पण के सम्मुख खड़ी हुई, तो आत्मप्रशंसा की झलक बड़ी-बड़ी आँखों में उभर आयी। वाह-वाह यह साड़ी देखने में जितनी सुन्दर लगी थी, पहनकर और भी सुन्दर लग रही थी। उगते सूर्य की अरुण रश्मियों का जाल स्वयं ही खिड़की की सलाखों से उतरकर उसके चौड़े आँचल पर बिखर गया। वैसे वह न बनारसी साड़ी देख सकती थी, न किसी बनारसी साड़ी पहनने-वाली को। उसे ऐसी चटकीली साड़ी देखकर सदा कैलेंडर में बनी सस्ती तसवीरों का ही स्मरण हो आता था, या फिर अपने विचित्र दिवास्वप्न के धूमिल प्रेत दरबार का! झाड़-फ़ानूसों के नीचे जगमगाते कितने ही बनारसी आँचल उसके स्मृति-खण्डहर में केतुध्वज-से फहराने लगते।

एक बार पन्ना, बक्स के तले से, नेप्थलीन सुवासित कितनी ही रंग-बिरंगी साड़ियाँ निकाल लायी थी—एक से एक भारी बनारसी साड़ियाँ!

"अब तू पहनेगी इन्हें, अब यह सिल्क भला कहाँ मिलेगा और फिर ऐसी ज़री," उसने बड़े लाड़ से कहा था।

पर तबतक कली ने उन भड़कीली साड़ियों की सम्यता का इतिहास अपनी अद्भुत घ्राण शक्ति से बहुत कुछ सूंघ लिया था। इन्हीं साड़ियों को पहन-पहनकर अम्मा ने न जाने कितने पुरुषों को रिझाया-तड़पाया होगा। मुफ़्त में मिल रहे उस दामी गट्ठर को कली ने घृणा से नाक सिकोड़कर वापस माँ की गोदी में डाल दिया

था, "थैंक्स अम्मा, पर ये सड़ी बनारसी साड़ियाँ मैं कभी नहीं पहनूँगी।"

पन्ना की आँखों में आँसू छलक आये थे। जब-जब वह इस हठीली छोकरी को छाती से लगाने बढ़ी थी, तब-तब वह उसे एक प्राणान्तक घूँसा मारकर दूर ढकेल देती।

"ठीक है बेटी," उसने शान्त स्वर में कहा था, "आज तुमने इन साड़ियों को ठुकरा दिया, पर एक न एक दिन हर लड़की को ज़िन्दगी में ऐसा आता है, जब वह बनारसी साड़ी पहनकर ही सजने-धजने को स्वयं तरसने लगती है।"

शायद आज कली के जीवन का वही दिन आ गया था, जब वह अपने अवांछित कौमार्य के काल्पनिक मुक्ति द्वार पर लाल बनारसी साड़ी में दुलहन बनी स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब पर न्योछावर हुई जा रही थी। बहुत पहले नैनीताल के लन्दन हाउस की सीढ़ियों पर फैले एक तिब्बती लामा से उसने उसी के कान में पड़े लाल मूँगे का जोड़ा खरीदा था, और काठमाण्डू से उसके एक विदेशी मित्र ने उसे दो मूंगों के बीच गुँथा एक चौकोर तांबे का तावीज़ ला दिया था। काले मोटे डोरे में गुँथा वही तावीज़ उसने कण्ठ में लटका लिया। कानों में मूँगे साड़ी के लाल रंग से होड़-सी ले रहे थे। और वह रक्तिम आभा ताँबे के अठनिया तावीज़ पर उतर आयी थी। वास्तव में उसकी कलात्मक रुचि अनुपम थी। बीच में माँग निकालकर उसने कटे बालों को कानों के पीछे ले जाकर एक हड्डी के क्लैस्प से कसकर छोड़ दिया। केशों के गहन पाश से उन्मुक्त कर्णद्वय लाल-लाल प्रवाल के भार से स्वयं ही रक्तिम हो उठे थे। एक बार कली अपना वह अग्निगर्भा रूप उसे दिखाना चाह रही थी—देख, साड़ी ऐसे पहनी जाती है। तुम्हारी कुन्नी के कण्ठ में पड़ी उन्तीस तोले की असली सोने की रामनवमी क्या मेरे इस अठनिया ताँबे के तावीज़ के ताम्रतेज के सम्मुख टिक सकती है?

पर अभी तो वह शायद सो ही रहा होगा। वैसे चाहने पर वह बड़ी धृष्टता से जाकर उसे कमरे में ही घेराव में बाँध सकती है। उसका द्वार खुला रहता है, यह वह कई बार देख चुकी है। पर बीच ही में कहीं दानव दामोदर मिल गया तब?

मरे मन से कमरे में ताला लगाकर वह चाबी बटुए में रख ही रही थी कि किसी की आहट पाकर चौंकी। हाथ की सिगरेट बाहर फेंकने वह स्वयं ही बरामदे में चला आया था, या कली की इच्छा-शक्ति ही उसे बाहर खींच लायी थी।

कली ने एक पल को भी देर नहीं की।

"ए काबुलीवाला," वह हँसती हुई उससे सटकर खड़ी हो गयी, "गोइंग टु फ़ादर-इन-लॉज़ हाउस?"

पहले प्रवीर हतप्रभ-सा रह गया, फिर दूसरे ही क्षण उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। कैसा दुस्साहस है छोकरी का! कुन्नी की ही साड़ी पर हाथ साफ़ कर

दिया और फिर पहनकर उसे ही दिखाने आयी है। उसकी ऐसी चोरी और सीनाज़ोरी देखकर वह स्तब्ध रह गया।

शायद उसके चेहरे की खीझ को कली ने देखते ही समझ लिया। वह किसी शैतान बच्ची की भाँति खिलखिला उठी, "यह तुम्हारी कुन्नी की साड़ी नहीं है जी! एक ठो हम भी अपने लिए ले आये थे। कोई कॉपी राइट है क्या? मुँह क्यों फुला लिया। पर 'रेड सूट्स मी' क्यों, है ना?"

और फिर वह हँसती-हँसती सर्र से किसी विदेशी बैले की भाँति हवा में तैरती बाहर निकल गयी।

बिजली की चमक दिखाकर वह क्षणिक प्रभा से प्रवीर को सचमुच चौंधिया गयी थी।

लड़की का सौन्दर्य अपने समस्त अवगुणों के बावजूद दिव्य था, इसमें कोई सन्देह नहीं। उसकी चाल, सतर कन्धों की गढ़न, सादे ढंग से सँवारे गये काले केश-गुच्छ, साड़ी पहनने का सलीक़ा और उससे भी बढ़कर लम्बे आँचल को लहरा-लहराकर कैसे नपे-तुले क़दमों से चलती थी, जैसे कोई विदेशी राजमहिषी अपने कोरोनेशन के लिए चली जा रही हो, और पीछे लटकता लम्बा आँचल थामे, चल रहे हों दो अदृश्य पेज-ब्वॉय!

न चाहने पर भी बहुत दिनों पूर्व पढ़े एक श्लोक की पंक्तियाँ उसके कानों में बजने लगीं—

'तन्वंगी गजगामिनी चपलदृक् सङ्गीतशिल्पान्विता
नो ह्रस्वा न बृहत्तराऽथ सुकृशा मध्ये मयूरस्वरा।
पीनश्रोणि पयोधरा सुललिते जङ्घे वहन्ती कृशे।'

अचानक उसके दोनों कान लाल होकर दहकने लगे। कैसी दुर्बलता थी यह उसकी! ऐसी सस्ती लड़की जिसका स्पर्श होने पर भी शायद उसे नहाना पड़ता, उसी के लिए इस श्लोक की आवृत्ति!

पर फिर भी कमरे में जाकर वह उन बिसरी अधूरी पंक्तियों के टुकड़े याद करने लगा।

'भृङ्गश्यामल-कुन्तला च जलजग्रीवोऽप....

वह फिर बौखलाकर एक के बाद एक कितनी ही सिगरेटें फूँकता चला गया।

पाण्डेजी ने उस दिन बड़े उत्साह से शायद आधा कलकत्ता ही न्यौत दिया था।

"हाय, मैं ऐसा जानती तो और बढ़िया साड़ी पहनकर आती अम्मा," माया अपनी साधारण रेशमी साड़ी देखकर स्वयं ही गड़ी जा रही थी। वहाँ तो एक से एक सजी-धजी अप्सराएँ आयी थीं। कुन्नी तो उस दिन पहचान ही में नहीं आ रही थी। लगता था किसी पेशेवर हेयर ड्रेसर से उसने अपना लोपामुद्रा का-सा जूड़ा बनवाया है।

बड़ी आँखों को भला काजल से चीरकर और बड़ी बनाने का क्या प्रयोजन था, प्रवीर की समझ में नहीं आया ! एकदम कलाकेन्द्रम् के रामायण की सीता बनी वह नाटकीय मुद्रा में दायें-बायें लजाकर ढुलकी जा रही थी।

जया-माया ने उसे साथ लायी साड़ी पहनाकर आँचल मेवों से भर दिया। अम्मा ने बड़े गर्व से पुत्र को सुनाकर पति से कहा, "एकदम महालक्ष्मी लग रही है ?"

पर उस लाल साड़ी को देखते ही एक अदृश्य लम्बी छरहरी पीले चेहरे की किशोरी बार-बार कुन्नी को धक्का देकर प्रवीर के सम्मुख हँसती खड़ी हो जा रही थी।

'तन्वंगी गजगामिनी चपलदृक् सङ्गीत-शिल्पान्विता'
'काबुलीवाला, गोइंग टु फ़ादर इन-लॉज़ हाउस ?'

भय से सचकित होकर प्रवीर सचमुच ही इधर-उधर देखने लगा था ! क्या पता कहीं यहीं न धमक पड़े ! उस आँधी तूफ़ान-सी वेगवती दुस्साहसी लड़की के लिए सब-कुछ करना सम्भव था।

पाण्डेजी सत्यजित राय की-सी फ़ोटो यूनिट लेकर फ़्लैश बल्ब चटका-चटकाकर सबको चौंका रहे थे। कभी मूवी कैमरा लेकर दोनों मोटे-मोटे थम्बकथैया पैर चौड़ाई में फैलाते कथकलि नर्तक की भाँति आगे बढ़ते, कभी वैसे ही ताल में सधे पैर रखते दूर तक पीछे चले जाते।

"कुन्नी बेटी, ज़रा दायें, प्रवीर तुम थोड़ा आगे, ना-ना कुछ पीछे, 'टु दॅ लेफ़्ट, दैट्स राइट'," और फिर फ़्लैश बल्ब की चटाक-चटाक कर चुटकियाँ बजने लगतीं।

न जाने कितनी तसवीरें खींची गयीं, कितनी बनावटी मुसकानें बनीं और बिगड़ीं, कुन्नी ने एक के बाद एक इतने गाने गाये कि अन्त के गीत में आवाज़ फटकर रह गयी।

ठीक चलने का समय हुआ, तो पाण्डेजी ने जामाता को साग्रह रोक लिया।

"अभी मेरे परमप्रिय मित्र गजेन्द्र तो आये ही नहीं। राजा गजेन्द्र किशोर वर्मन। अभी-अभी उनका अगरतला से फ़ोन आया है, रात को पहुँच रहे हैं। आ भी रहे हैं प्रवीर से ही मिलने। इन्हें हम रात का खाना खाने के बाद ही छोड़ पायेंगे अब ! आप गाड़ी की चिन्ता न करें। दो-दो गाड़ियाँ पड़ी हैं, ड्राइवर छोड़ आयेगा।"

दो-दो गाड़ियों का व्यर्थ प्रसंग छेड़कर सरल बाबूजी को प्रभावित करने की भावी श्वसुर की कुचेष्टा देखकर प्रवीर तन गया। एक बार जी में आया कि उनका अभद्र प्रस्ताव ठुकराकर रुखाई से चल दे। पर दूसरे ही क्षण उसने कुन्नी की याचकतापूर्ण आँखों में नवीन प्रेम की झलक को देख लिया।

विचित्र व्यक्ति थे पाण्डेजी ! कभी एकदम बालक का-सा निश्छल व्यवहार और कभी कपटी काक की-सी मुद्रा ! निश्चय ही वह व्यक्ति कभी अपने परिवार की सीमित परिधि लाँघकर बाहर नहीं जा सकता। अब प्रवीर भी उसी परिवार का नवीन सदस्य था, इसी से पाण्डेजी बार-बार उसे आँखों ही आँखों में ऐसे पिये जा रहे थे कि स्वयं

प्रवीर को अम्मा-बाबूजी के सामने अजीब खिसियाहट होने लगी थी।

पिता-माता, बहन-बहनोइयों की उपस्थिति में प्रवीर कुन्नी से आधी बात भी नहीं कर पाया है, यह शायद पाण्डेजी ने देख लिया था। वैसे भी अपनी स्वार्थसिद्धि के साथ ही अवांछित अतिथियों को भगाने में पाण्डेजी को कमाल हासिल था।

"मैं तो आप सबसे ही रात का खाना खाने का अनुरोध करता, पर बड़ी रात हो जायेगी। गजेन्द्र ज़रा देर से खाना पसन्द करता है, और यह ज़रा भद्दा लगेगा कि उससे पहले आप सबको खिला दूँ।"

उन्होंने बड़े ही चातुर्य से भूमिका बाँध-बाँधकर अतिथियों को विदा कर दिया।

असल में गजेन्द्र का तो बहाना था। वह आ अवश्य रहा था, पर यदि उस का स्वयं अपना नया दामाद होता, तब भी शायद वह उस से मिलने की उत्सुकता नहीं दिखाता। वह तो मित्र के साथ उसकी बँगलिया में जश्न मनाने आ रहा था। उसके खाने-पीने का प्रबन्ध पाण्डेजी पहले ही छोटी बँगलिया में कर आये थे। वह बँगला उनकी कोठी से दूर इसी प्रयोजन से बनाया गया था। पाण्डेजी के एक से एक मोटे असामियों का अतिथिगृह उनका सबसे बड़ा आकर्षण था। राजनीतिज्ञ, पत्रकार, व्यवसायी अपनी वानप्रस्थ की अवस्था को ताक पर धरकर यहाँ मनमानी रँगरेलियाँ मना सकते थे। उसी छोटे कमरे में सुरा-सुन्दरी और विलासपूर्ण छप्पन प्रकार के तामसी भोज्य पदार्थों के अपूर्व तोहफ़े भेंट कर कुटिल पाण्डेजी लाखों का वारा-न्यारा करते थे। न जाने कितने प्रोफ़्यूमो उनकी मुट्ठी में बन्द रहते, जिससे जब चाहें पानी भरवा लें। जबतक कलकत्ते में लॉरीन थी, तबतक उन्हें अपने व्यवसाय की कोई चिन्ता नहीं थी। पैसा उनके हाथ का मैल था। फिर सबसे छोटी पुत्री के विवाह में कोई भी क़सर बाक़ी न रहने पाये, यही उनकी उत्कट अभिलाषा थी। ऐसा अपूर्व जामाता क्या सहज ही में जुट सकता था।

जान-बूझकर ही प्रवीर को कुन्नी के साथ एकान्त में छोड़ पाण्डेजी पत्नी को लेकर बाहर घूमने चले गये। इतने सारे अतिथियों से भरा गोल कमरा खाली हो गया, तो संकोची स्वभाव न होने पर भी प्रवीर सोफ़े के कोने में सिमटकर बैठ गया।

कुन्नी बड़ी स्वाभाविकता से हँसकर खड़ी हो गयी।

"आप एक सेकण्ड बैठें, मैं यह साड़ी बदल आऊँ। इतनी भारी है कि सँभलती ही नहीं। फिर आपको अपना नया स्विमिंग पूल दिखाने ले चलूँगी। 'इट इज़ ए ब्यूटी!' कल ही डैडी ने उसमें पानी भरवाया है।"

वह चली गयी, तो प्रवीर ने दोनों टाँगें फ़ैलाकर सिगरेट जला ली। शायद साड़ी बदलकर आने पर वह अपने मौलिक व्यक्तित्व में लौट आयेगी।

एक हलकी धानी डूरी सूती साड़ी में वह सचमुच ही जैसे चोला बदल आयी

थी। उसके गौर वर्ण पर धानी रंग खिल उठा था।

"वाह बड़ा सुन्दर रंग है, और आपको सूट भी करता है," प्रवीर ने चित्त में उमड़ती, लाल साड़ी का आँचल फहराती दुस्साहसी किशोरी की मूर्ति को भगाने के लिए ही शायद सम्मुख बैठी कुन्नी की प्रशंसा का पहला पुष्प निवेदन किया।

"जानते हैं बँगला में इसे क्या कहते हैं? 'कोची कौला पातार रंग'—केले की कोंपल का रंग। मुझे तो इन बंगाल की धनेखाली डूरे साड़ियों के सामने बनारसी साड़ियाँ भी फीकी लगती हैं," वह मुसकराती हुई उठ खड़ी हुई, "चलिए ना, स्विमिंग पूल देख आयें।"

पान के पत्ते के आकार में बँधी जलराशि नियोन बत्तियों के नीले प्रकाश में झलमला रही थी। संगमरमर की बेंच पर ही कुन्नी इठलाकर बैठ गयी।

"आइए ना, बैठ जाइए, कबतक खड़े रहिएगा।"

प्रवीर उसके पास ही बैठ गया। उसकी गोरी पुष्ट कलाई पर पड़ा मगरमुखी कंकण झलमला रहा था। धानी साड़ी की आड़ी-तिरछी डोरियाँ बिजली के प्रकाश में अपनी ही छाया-प्रतिछाया की धूप-छाँह की-सी रेखाएँ बना मिटा रही थीं, शंखग्रीवा में पड़ी पतली सोने की चेन खुले गले के धानी ब्लाउज़ पर सोने के बाल-सी चमक रही थी। ऊँचा बनाया गया जूड़ा शायद इधर-उधर चलने-फिरने से कुछ शिथिल होकर कन्धे पर उतर आया था, और इसी से चेहरे का बनावटी मुखौटा जैसे कान की कमानी से कुछ नीचे खिसक आया था।

प्रवीर की सूक्ष्म दृष्टि ने मुखौटे के भीतर से झाँकता असलियत का नैन-नक़्श देख लिया। लेप-प्रलेप से मुक्त होने पर चेहरा निर्दोष लगेगा, बड़ी आँखों में बुद्धि की दीप्ति चाहे न हो, जननी का वात्सल्य अवश्य था! और जो हो, यह स्वस्थ शरीर उसे स्वस्थ सन्तान का पिता बनायेगा, इसमें कोई सन्देह न था। रिकेटी, दुबले-पतले रिरियाते बच्चों को वह देख नहीं सकता था। यह दीर्घाङ्गी, दुर्बल शिशु की जननी कभी नहीं बन सकती। हो सकता है आलसी गृहिणी बन जाये। उसके मोटे विलासप्रिय अधर, शरीर के कुछ-कुछ पृथुल बनने का अभी से रुझान, उसे कुछ वर्षों की लापरवाही से ही अनाकर्षक थुलथुली गृहिणी बना सकते थे। वह निश्चय ही उन कुमारिकाओं के दल की थी, जिन्हें पिता का वैभव-सम्पन्न गृह समय से पूर्व ही यौवन के द्वार पर खड़ा कर देता है। समस्त व्यंजन करतल पर रहते भी, जिन्हें चटोरी जिह्वा को संयम के अंकुश से साधकर बिना चुपड़ी रोटी खाकर सन्तोष करना पड़ता है। पर जहाँ विवाह हुआ, गृहस्थी की रस्साकशी उन्हें अमानवीय धैर्य से ज़मीन पर पैर गाड़े डाइटिंग की मोटी रस्सी से बँधे, खिंचते खिलाड़ियों की भाँति ही अपने दल की ओर खींच ले जाती है। फ़ुटबाल के पिचके ब्लैडर की ही भाँति हवा पाते ही यह देह भी एक दिन तन उठेगी, यह प्रवीर समझ गया था। कपास के फूल-सी हलकी दूसरी तन्वंगी उसे फिर कल्पनालोक में खींचकर अँगूठा दिखाने लगी। वह खीझकर उठ गया।

सत्रह

"चलिए, शायद अब आपके डैडी के मित्र आ गये होंगे," प्रवीर ने कहा।

"ओ डैडी के मित्र !" कुन्नी ज़ोर से हँसी। "यू डोंट नो हिम, आप क्या सोचते हैं डैडी ने आपको उनसे मिलाने रोक लिया था ? वे तो मुझे और आपको एकान्त देना चाह रहे थे।"

वह उठकर प्रवीर के साथ सटकर ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे कह रही हो, 'मूर्ख ! इतना कहकर भी नहीं समझे ? इस एकान्त में तुम्हें और लायी किस लिये हूँ।'

उसके शरीर से आती तीव्र सुगन्ध का भभाका प्रवीर को सहसा उन्मत्त कर गया। कली भी दो-तीन बार उसके एकदम पास ऐसे ही सटकर अपनी सुगन्ध छोड़ गयी है, पर कितना अन्तर था दोनों सुगन्धों में ! एक थी मन्दी कस्तूरी-सी गमक और दूसरी बँगलौरी अगरबत्ती के तीव्र भभाके से दम घुटाने लगती थी।

कुन्नी और भी निकट सटकर चलने लगी, लग रहा था अब वह स्वयं ही प्रवीर का हाथ पकड़कर अपने कन्धे पर धर लेगी। हड़बड़ाकर प्रवीर ने चाल तेज़ कर उसे पछाड़ दिया। गेट की रोशनी देखकर वह आश्वस्त हुआ।

आज तक वह प्रगतिवादी समाज के ऐसे ऊँचे तबके में रहकर नौकरी करता रहा था, जहाँ तर्जनी के सामान्य आदेश से ही एक से एक सुन्दरी सेक्रेटरी को करतल पर बिठा सकता था। काबुल के प्रसिद्ध 'खैबर' होटल में ऐसी ही एक सुन्दरी अरब किशोरी उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गयी थी। कुवैत में उसके पिता के तेल के कुएँ दिन-रात सोना उगलते थे, काबुल में वह अपने मामा के पास छुट्टियाँ बिताने आयी थी। बड़ी-बड़ी भूरी आँखों और सुनहले बालों की वह सौन्दर्य-सम्राज्ञी, उसे एम्बैसी के ही एक सहभोज में मिली थी। उसकी खतरनाक फ़रेबी मोर्चाबन्दी से भी वह अपनी जवानी को दाँतों के बीच जीभ-सी सेंतकर निकाल लाया था। जहाँ तक लड़कियों का प्रश्न था, वह निश्चय ही अबतक निरामिषभोजी था। उस कठोर संयम के पश्चात् भावी पत्नी का आकर्षक सान्निध्य उसे बार-बार लुभाने लगा, पर तनाव से खिंची जा रही उत्तेजित शिराओं को उसने कसकर चाबुक मार दिया। लम्बी-लम्बी डगें भरकर वह बड़ी अभद्रता से साथ चल रही संगिनी को पीछे छोड़ गया।

कुन्नी के डैडी अभी भी लौटकर नहीं आये थे। गोल कमरे में जाकर प्रवीर बैठा ही था कि कुन्नी आ गयी।

"बाप रे बाप, आप तो ऐसे भागे कि जैसे पीछे पागल कुत्ता आ रहा हो !"

"बड़ी देर हो गयी, देखिए ना आठ बज गये। सुनिए, एक प्याला चाय या कॉफ़ी मिल सकेगी क्या ?" उसने अनायास ही कह दिया।

"क्यों नहीं मिल सकती। कौन-सी ऐसी चीज़ है जो आपको नहीं मिल सकती," —वह अर्थपूर्ण मुसकान बिखेरती भीतर चली गयी।

थोड़ी ही देर में वर्दीधारी बैरा भारी-भारी चाँदी के बरतनों में चाय लेकर आ गया।

यह चाँदी का टी सेट भी क्या मुझे 'इम्प्रेस' करने को मँगवाया गया है ? मन ही मन सोचता प्रवीर मुसकराने लगा।

"क्यों, हँसी क्यों आ रही है आपको ? क्या चाय अच्छी नहीं बनी ? बननी तो अच्छी चाहिए, कल ही डैडी के चाय बागान के एक मित्र दे गये हैं।"

"अच्छा ?" प्रवीर को अपनी उस कभी परममूर्खा और कभी चतुरा भावी पत्नी को चिढ़ाने में आनन्द आने लगा था, "क्यों, आपके पिता के कोई 'ब्रुअरी' में भी मित्र हैं क्या ?" उसने दबी मुसकान के साथ चुटकी ली। यही दबी मुसकान उसका सबसे बड़ा आकर्षण था। अरब सुन्दरी ताहिरा उसकी इसी मुसकान की सौ-सौ तसवीरें उतारकर साथ ले गयी थी।

"आर यू इण्टेरेस्टेड ? वाह, अच्छे आदमी हैं आप ! आँव-गाँव के खा गये घर के माँगें भीख ! आज की दावत ही में पता नहीं डैडी की कितनी शैम्पेन नालायक़ कण्ठों के नीचे उतरी है, और हमने तो डर से आपसे पूछा ही नहीं। आप लोग ठहरे कुमाऊँ के कट्टर पण्डित, डैडी ने एकदम सब कुछ छिपा दिया था। बोलिए, क्या लीजिएगा ?"

वह किसी सुप्रसिद्ध बार की सुन्दरी साक़ी बनी उसकी ओर ढल गयी।

"मैं तो मज़ाक़ कर रहा था। मुझे ऐसा अभ्यास नहीं है।"

"यह तो मैं समझ ही गयी थी। अभ्यास होता तो...." उसने हँसकर अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

"तो शायद मैं चाय नहीं माँगता, क्यों ?"

"नहीं," उसका चेहरा म्लान हो गया, "तो शायद आप इतने रूखे नहीं होते। शायद डैडी आ गये," वह द्वार की ओर बढ़ गयी।

पाण्डेजी अपने मित्र को साथ लेकर पत्नी को शायद कहीं छोड़ आये थे।

"एई जे गौजेन, देखो कैमौन राजा जामाई पेयेछी," (यह देखो गजेन्द्र मुझे कैसा राजा दामाद मिला है)

प्रवीर ने उठकर बड़ी नम्रता से नमस्कार किया और बनैले बुन्देलखण्डी अकेला (सुअर) - सा ही हिंस्र बदशकल, वह चौकोर व्यक्ति उस पर टूट-सा पड़ा।

पहले उसने प्रवीर के प्रशस्त ललाट को चूमा, फिर दोनों हाथ पकड़कर अपनी छाती पर धर लिये।

"आहा बूक जूड़िये गैली माँ लोक्खी"—(आहा छाती ठण्डी हो गयी माँ लक्ष्मी) वह सकुचायी कुन्नी की ओर देखकर बोला।

उस व्यक्ति को देखते ही प्रवीर को लगा कि यह व्यक्ति तन का ही नहीं, मन का भी काला है। बंगाल की प्राचीन नाटकमण्डली के 'यात्रादल' में दुर्योधन बने एक पात्र ने बचपन में उसकी कई रातों के स्वप्नों का पीछा कर उसे सहमाया था, आज वही दुर्योधन जैसे बचपन के सपनों से निकलकर फिर सामने बैठ गया था। अँगुलियों में रंग-बिरंगे माणिक-मोतियों की अँगूठियाँ, सूर्यमुखी के फूल-सी चौड़ी घड़ी, महीन ज़रीदार कुन्नी की धोती, चुना कुरता और भयावह भालू-सा रोयेंदार शरीर! कुन्नी को माँ-माँ पुकारता वह क्रूर नरव्याघ्र की-सी जिस दृष्टि से उसे देख रहा था, वह निश्चय ही स्नेही पुत्र को नहीं थी। कभी वह क्षुधातुर दृष्टि उसके नीचे तक खुले गले पर निबद्ध होती, कभी आकर्षक नितम्बों पर झूल रही करधनी पर।

वह बराबर बंगला ही बोले जा रहा था—"की है जामाई बाबू—बांग्ला शीखते पारले ना? (क्यों है जामाई बाबू, बंगला नहीं सीख सके क्या?) इस घर में तो बंगला ही चलती है प्यारे! चटपट सीख डालो। हमारी कुन्नी का रवीन्द्र संगीत सुना या नहीं?"

खाने की मेज़ पर तो राजा गजेन्द्र किशोर ने अपना मुखौटा ही उतारकर दूर धर दिया। कभी जंगली आदिवासियों की भाँति, मुर्ग़ का बड़ा-सा टुकड़ा चिचोड़-चिचोड़कर खाने लगते, गले में किसी अबोध बालक के बिब से बँधे चौड़े नैपकिन से ही नाक-आँख का पानी पोंछते, बड़ी-बड़ी चम्मचों में भरकर मुर्ग़ की ग्रेवी पीते प्रशंसा के पुल बाँधने लगते—"वाह, क्या लाजवाब मुर्ग़ बनाता है तुम्हारा खानसामा! आखिर नवाब रामपुर के ख़ास बाग़ में काम कर चुका है, और बातों का भी ऐसा तेज़-तर्रार है जामाई बाबू, कि एक दिन हमने पूछा, शकूर, आखिर क्या-क्या मसाला डालते हो इसमें? ज़रा हमें भी बता दो, अपने उड़िया महाराज को भी सिखा दें, तो जानते हो क्या कहने लगा?

बोला, "हुजूर, इसके मसाले पीसनेवाले और होते हैं, बनानेवाले और!"

"जबतक मिर्च से, आँख-नाक से, पानी न बहने लगे, भला खाने का क्या मज़ा?"

"ओहे पाण्डे, एक टु मिष्टी दाओ देखी!" (अरे पाण्डे, ज़रा मिठाई बढ़ाना इधर) और कटग्लास के ओवल डोंगे से, एक-एक कर भीमाकार, 'खीर कदम्ब' सुरसा के-से फैलाये विराट् मुख में ऐसे जाने लगे जैसे झरबेरी हों।

उस व्यक्ति की खाने की क्षमता देखकर प्रवीर दंग रह गया। जीवन का-सा ही असंयम वह खाने में भी बरतता था। कभी काले-काले भुजंग से हाथों की मोटी

सॉसेज-सी अँगुलियों से नान भकोसता, कभी मिठाई और फिर मुर्ग़ के बड़े-बड़े टुकड़ों पर विरयानी का केसरिया थक्के का थक्का डाल लेता। उसकी लोलुप दृष्टि, गोल मेज़ पर सजे तरह-तरह के व्यंजनों की परिक्रमा-सी कर रही थी। एक साथ ही प्लेट को वह ऐसे भरकर रख ले रहा था जैसे तनिक-सा विलम्ब करने पर सब चीज़ें चुक जायेंगी।

खाने के बाद टूथ पिक का पूरा डिब्बा ही लेकर वह अलस तृप्त अजगर की भाँति आराम-कुरसी पर लद गया। "जा खेयेछी !" (कसकर खाया है) कहता, वह गगनभेदी डकारों के सिंहनाद से खाने का कमरा गुँजाता, नितान्त घिनौने ढंग से दाँत कुरेद-कुरेदकर, मांस-मछली के अवशेष निकालता, ज़मीन पर ही थूकने लगा।

प्रवीर का शरीर सिहर उठा। यह ठीक था कि वह स्वयं सामिषभोजी था, किन्तु संस्कारी गृह का वह सभ्य युवक, सुपारी का टुकड़ा भी सशब्द नहीं कटका सकता था। यह चिक्षुर-सा महादानव बिना हाथ-मुँह धोये टाँग फैलाकर, गृह की माता-पुत्री के सम्मुख ही जिस निर्लज्जता से पड़ा जुगाली कर रहा था, वह देखकर ही उसे घृणा होने लगी। क्या इस गृह में मर्यादा नाम की कोई वस्तु है ही नहीं ?

"ओहे पांडे, आमी ऐखोन तोर बँगलियाय गिये एकटू शोबौ बूझली !"

(अरे पाण्डे, अब मैं तेरी बँगलिया में जाकर ज़रा सोऊँगा—समझा ?)

"मुझे भी आज्ञा दीजिए," प्रवीर भी उठ गया, "साढ़े दस बज गये हैं, पहुँचते-पहुँचते ग्यारह बज जायेंगे।"

"सुन्दरसिंह, बचीसिंह, भोला, महावीर—" पाण्डेजी ने एक साथ ही चार भृत्यों का आह्वान किया और चारों हाथ बाँधे खड़े हो गये।

"जाओ, रतनसिंह को बोलो काली फ़ियेट, गैराज से निकालकर कुँअर साहब को छोड़ आये।"

प्रवीर इस सर्वथा नवीन सम्बोधन को सुनकर चौंका। एक ही दिन में पाण्डेजी ने जैसे किसी जादुई छड़ी के स्पर्श से उसे आपाद-मस्तक बदल दिया था।

उसे छोड़ने पूरा परिवार गेट तक चला आया। कुन्नी ने बढ़ कर बड़ी अन्तरंग आत्मीयता से कार का द्वार बन्द किया और कार स्टार्ट होने पर भी सटकर खड़ी रही।

इतने लोगों के सामने उससे कुछ कहने या मूक दृष्टि की विदा लेने में भी प्रवीर को संकोच हुआ। किन्तु सुडौल बाहु पर बँधे बाज़ूबन्द के लटकते ज़रीदार लाल डोरे को देखकर अपनी भावी वधू का वही हाथ पकड़कर दबा देने को वह व्याकुल हो उठा। संसारी पाण्डेजी की कुटिलता, उनके घिनौने मित्र राजा गजेन्द्र किशोर वर्मन का कुत्सित व्यवहार वह भूलकर रह गया।

चलती गाड़ी के साथ सिर झुकाये चुपचाप खड़ी कुन्नी की धानी छवि की स्मृति ही अन्त तक उसके साथ गयी।

इतने भारी खाने का प्रवीर को अभ्यास नहीं था। कैसा आलस्य-सा घेरने लगा था!

"रतनसिंह," उसने कहा, "तुम हमें अगली पान की दूकान पर छोड़ दो, वहाँ से पैदल चले जायेंगे।"

और वह पान की दूकान पर उतर गया। तीन-चार मोड़ के बाद ही घर पहुँच जायेगा, शायद एक बीड़ा पान खाकर दो-चार क़दम चलने से आलस्य भी दूर हो जायेगा।

उस बातूनी पानवाले को वह वर्षों से जानता था। 'उस छोटी-सी दूकान के ही वह आठ सौ रुपया माह देता है। कैसे वर्षों पहले मिर्ज़ापुर से भागकर वह यहाँ चला आया और कभी-कभी कैसे गुण्डों का जमघट वहाँ आ जुटता है' सुनाता वह जान-बूझकर एक बीड़ा पान सजाने में आध घण्टा लगा देता। पर उस दिन प्रवीर को उसकी बातों में उलझने का अवकाश नहीं था। एक तो वैसे ही खिसियाहट हो रही थी, सवा ग्यारह बज चुके थे, इसी से जान-बूझकर वह गाड़ी छोड़ आया था। कार के शब्द से पूरा घर जग जाता और सब क्या सोचते! पहले दिन ससुराल गया तो मुँह फुलाया और दूसरे दिन रात के साढ़े ग्यारह बजा दिये! पान के पैसे चुकाकर वह तेज़ क़दमों से चलने लगा कि किसी ने पीछे से आकर पीठ पर हाथ धर दिया। वह चौंककर मुड़ा तो देखा उसका मित्र घोष मुसकरा रहा था।

"की हे, शशुरवाड़ी थेके बुझी?" कन्धे पर झूलती चुनी धोती को घोष ने हाथ में उतार लिया, "वैसे ऐसे शुभ कार्य से तू लौटा है, मुझे छूना नहीं चाहिए। अशौच है यार, अभी-अभी राँगा दी की सास को फूँककर चला आ रहा हूँ—और जानता है वहाँ कौन मिली?"

लैम्पपोस्ट के पास ही दोनों खड़े हो गये। घोष का फ़्लैट आ गया था।

"तेरी टेनेंट मिस मजूमदार! माईरी यार, ग़ज़ब की है छोकरी। साथ में थे तीन-चार हिप्पी छोकरे और एक छोकरी। घूम-घूमकर जलती चिताएँ ऐसे देख रहे थे जैसे कोई प्रदर्शनी चल रही हो या कार्निवल! मुझे देखा तो सकपका गयी। आयी थी श्मशान में और साड़ी ऐसी पहनी थी जैसे ससुराल आयी हो। लाल बनारसी। एकदम चिता की लाल लपटों से मैच करती साड़ी। और जो हो, शी नोज़ हाऊ टु कैरी हर सेल्फ़।"

प्रवीर ने न कुछ पूछा न कहा।

घोष कहता जा रहा था, "पता नहीं तुम्हारे-जैसे संस्कारी गृह में इतने दिन रहकर भी लड़की, ऐसी बुरी-सोहबत में कैसे पड़ सकी! एक तो ये हिप्पी विदेशी छोकरे जिसे संग लिये घूमेंगे, उसी को ले डूबेंगे। पता नहीं कैसा ज़माना आ गया है," वह

किसी दार्शनिक बुजुर्ग के-से गम्भीर स्वर में कहने लगा, "हमने जैसे बुद्धिज्म, जैनिज्म के उन्नति और अवनति के कारण रटे हैं, वैसे ही हमारी अगली पीढ़ी अब शायद हिप्पीज्म के उत्थान-पतन के कारण रटेगी और उस अवनति के कारणों में निश्चय ही यह तेरी टेनेंट भिक्षुणी मिस मजूमदार भी एक होगी। अच्छा गुडनाइट, अभी घर पहुँचते ही माँ फिर नहाने को कहेंगी। ऐसे दिन मरी राँगा दी की सास कि इतवार की छुट्टी ही चौपट कर दी।"

प्रवीर अबतक जिसकी स्मृति को बड़ी सजगता से लाठी लेकर दूर खदेड़ आया था, उसी श्मशान-साधिका रक्ताम्बरा भैरवी की नवीन मूर्ति फिर आँखों के सामने खिच गयी। कैसा दुरूह गोरखधन्धे-सा व्यक्तित्व है उस लड़की का! चेहरा ऐसा सुकुमार, निष्पाप जैसे दूध के दाँत भी न टूटे हों, और करनी ऐसी! अम्मा कह रही थीं वह पहाड़ में ही जन्मी-पली है, तब क्या सरल पर्वतीय समाज से वह कुछ भी ग्रहण नहीं कर पायी? कैसे माँ-बाप थे जो इस कच्ची उमर में लड़की को रिसेप्शनिस्ट बनाकर इतनी दूर भेज दिया?

वह इसी उधेड़बुन से उलझा घर पहुँचा, तो घर मुर्दा पड़ा था। हरामखोर मानबहादुर दरवान मुफ़्त की तनख्वाह लेता था। आज भी बेंच पर मुर्दा बना सो रहा था। प्रवीर दबे पैरों बढ़ गया। आज उसकी कसकर खबर लेगा। वह बेंच पर सोये दरवान की ओर झुका और चौंककर सीधा हो गया। यह तो दरबान नहीं, जैसे ज़हरीला करैता नाग ही फन फैलाये डँसने को खड़ा था।

लाल बनारसी साड़ी में, छाती पर चौकोर बटुआ धरे कली सो रही थी। एक हाथ नीचे लटका था, एक की-रिंग में झूल रहा दो-तीन चाबियों का गुच्छा, तर्जनी में अटककर रह गया था। लग रहा था कि क्लान्त स्वामिनी में कमरा खोलकर भीतर जाने की शक्ति भी नहीं रही थी। ऑपरेशन थियेटर की मेज़ पर ईथर सुँघायी गयी किसी दुर्बल रोगिणी-सी ही वह लकड़ी की बेंच पर निढाल होकर पड़ी थी। उस बेहद अकेली, मासूम और कमज़ोर लग रही लड़की को छोड़कर प्रवीर भीतर नहीं जा सका।

कहीं कुछ नशा-वशा करके तो नहीं पड़ी थी! वह झुका, पर उन मादक अधरों से किसी भी नशे का भभाका नहीं उठा। विवाह की प्रथम रात्रि की निस्तब्धता में डूबी लाल बनारसी साड़ी पहने ही जैसे कोई बालिका वधू सो रही थी। श्मशान से लौटी, उस मधुमदालसा बाल भैरवी को देख उसका कठोर चित्त भी पल-भर को आर्द्र हो गया। क्या करे? अम्मा या जया-माया को बुला लाये? पर दामोदर-जैसा कुटिल व्यक्ति, इसी बात को लेकर हंगामा मचा सकता था। जो स्वयं जैसा होता है, वैसी ही बातें दूसरों के लिए भी सोचता है। आधी रात को मूर्छिता सुन्दरी कली के लिए

व्याकुल होकर माँ-बहनों को बुला लानेवाले प्रवीर के लिए वह दुष्ट कभी अच्छी बात नहीं सोच पायेगा।

"मिस मजूमदार, मिस मजूमदार," उसने झुककर निश्चेष्ट पड़ी कली के नुकीले कन्धे को छूकर हिलाया। उस क्षणिक स्पर्श ने उसे बिजली के नंगे तार का-सा झटका दिया और वह सहमकर सतर हो गया।

कली न हिली, न डुली।

अर्थी में बँधे मुर्दे की-सी अवश देह सँकरी बेंच के किनारे पर ही ऐसी निश्चेष्ट करवट ले उठी कि वह लपककर सहारा न देता तो शायद ज़मीन पर ही लुढ़क पड़ती।

प्रवीर ने एक बार झुककर कानों के पास ही मुँह सटाकर कहा, "मिस मजूमदार!"

परिचित मीठी मादक सुगन्ध ने उसके गले में बाँहें-सी डाल दीं। स्वयं कली मुर्दे-सी पड़ी ही रही। उसका म्लान चेहरा द्वितीया के वक्र चन्द्रालोक में भी स्पष्ट हो उठा। सौन्दर्य में कैसी क्षमता है, कैसी अमोघ शक्ति है, यह देख प्रवीर सहम गया। 'यदि सा वनिता हृदयं निहिता, क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः' इस कथन की वह कैसी हँसी उड़ाया करता था! किन्तु आज उसे लगा कि ऐसी श्यामा सुन्दरी सचमुच ही जप-तप समाधि को व्यर्थ सिद्ध कर सकती थी।

प्रवीर ने तीसरी बार लटका हाथ पकड़कर डरते-डरते फिर हिलाया।

हाथ से तर्जनी में अटका की-रिंग नीचे गिर पड़ा। ललाट पर झुक आये बालों का गुच्छा आँखों पर झुक आया, पर बेहोश कली वैसे ही सोती रही।

निश्चय ही उसके हिप्पी साथियों ने उसे एल. एस. डी. की एक-आध गोली खिला दी थी! नहीं तो ऐसी कुम्भकर्णी नींद भला किसी को आ सकती थी? यहाँ उसे इस विवस्त्रावस्था में छोड़ना ठीक नहीं था। बारह बज चुके थे। राह चलती मुखरा सड़क का कोई भी मनचला उठाईगीर, बेंच पर पड़ी उस लावारिस कमनीय लाल रेशमी पोटली को कन्धे पर डालकर जा सकता था, और फिर अपना ही गृहदस्यु दामोदर रात-आधी रात इधर अर्थपूर्ण चक्कर लगाता रहता था। प्रवीर दो-तीन बार उसे पकड़ चुका था।

प्रवीर ने चाबी उठा ली, कली को बेंच पर ही छोड़ उसने कमरा धीमे से खोल दिया। खुली खिड़की से आते क्षीण आलोक में भी कोने में बिछी साफ़-सुथरी पलंग दिख रही थी। वह बाहर गया। एक पल को शायद कुछ झिझका पर जैसे मरीज़ आँखें बन्द कर, एक ही साँस में कड़वी औषधि कण्ठ तले घुटक लेता है, उसने लपककर बटुए सहित कली को बाँहों में उठा लिया, और यत्न से अपने कमरे तक लाकर पलंग पर लिटा दिया। फिर स्वयं भी लड़खड़ाकर पलंग की पाटी पर बैठ गया।

बाप रे बाप! देखने में फूल-सी हलकी लगनेवाली लड़की कितनी भारी है!

इतनी ही दूर लाने में टाँगें लड़खड़ाकर सन्तुलन खो बैठीं।

छोटे भाई की मृत्यु और अनुजवधू की कलंक कथा के बाद, वह उस कमरे में पहली बार आया था। छोटे भाई के साथ वह इसी कमरे में बचपन में सोता रहा है। एक बार सामान्य-सी लड़ाई ने उग्र रूप ले लिया था, और उसने छोटे भाई का सिर पकड़कर इसी दीवार पर दे मारा था। फिर उसकी क़मीज़ पर गिरती रक्तधारा को देखकर अम्मा-बाबूजी के भय से इसी खिड़की से कूदकर हवा हो गया था। आज उसी परित्यक्त कमरे की सहस्र स्मृतियाँ उसे घेरकर नाचने लगीं। वह उठ गया। लड़की कुछ खाकर ही आयी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं था। एक बार उसे सकरुण दृष्टि से देखकर वह बाहर निकल आया। कुछ देर सोचकर उसने ताला खटकाकर बन्द किया और चाबी अपनी जेब में डाल ली। कल उसके उठने से पहले ही आकर ताला खोल जायेगा। नरभक्षी दामोदर के पंजे से तो लड़की बची रहेगी, उसने सोचा।

सारी रात वह ठीक से सो नहीं पाया। ज़रा-सी झपक लगती तो चौंककर उठ बैठता—कहीं ऐसा न हो कि वह सोता ही रहे और बन्दिनी कमरे में ही बन्द पड़ी रह जाये। हाथ की घड़ी जैसे कछुए की गति से चल रही थी। राम-राम करते तीन बजे और वह चुपचाप चाबी का गुच्छा लेकर निकल गया। आकाश में अभी तारे ही थे। अलबत्ता इक्की-दुक्की कार और रिक्शा का आवागमन आरम्भ हो गया था। उसने दबे पैरों जाकर ताला खोल दिया। चाबी के गुच्छे को खुली खिड़की की सलाखों से बड़े यत्न से डालने पर भी, सीमेंट के फ़र्श पर गुच्छा झन-झनकर झनक उठा। कमरे की स्वामिनी घोड़ा बेचकर बेखबर सोती रही। वह फिर अपने कमरे में आकर लेट गया।

क्या जगने पर उस चरस-गाँजे की दम लगाकर लौटी मूर्खा किशोरी को कुछ स्मरण रहेगा कि वह दरबान की बेंच पर ही नशे में लड़खड़ाकर लुढ़क पड़ी थी? तब उसे कौन उठाकर, कमरा खोल इतने यत्न से सुला गया होगा? कैसे जान पायेगी वह? अच्छा ही है—जैसी लड़की थी, कभी इसी प्रसंग का लाभ उठाकर उसे फँसा सकती थी।

पौ फटने लगी, तो प्रवीर की आँखें लग गयीं। किसी की आहट पाकर वह सहसा चौंककर उठ बैठा।

सिरहाने गम्भीर मुखमुद्रा बनाकर माया खड़ी थी।

"लगता है रात बड़ी देर से लौटे, दो बार तो मैं ही कमरे में झाँककर लौट गयी। अम्मा भी शायद कई बार तुम्हें आकर देख गयीं।"

"क्यों, क्या बात हो गयी जो बारी-बारी सब मेरी हाज़िरी लेने आ गये?" प्रवीर ने पूछा।

"बात भला क्या होती, अब इस घर में कभी कुछ अच्छी बात होती है, जो

पूछ रहे हो ? पता नहीं, कैसे कल ज़रा तुम्हारी ससुराल में रौनक़ रही, घर लौटे तो फिर वही ढाक के तीन पात ! घर पहुँचते ही दीदी और जीजा में ऐसी ठनकी कि पूछो मत। जीजाजी ने गरज-गरजकर पूरे कमरे का सामान वाहर फेंक दिया। शादी में मिली अपनी घड़ी, तुम्हारा लाया ट्रांजिस्टर, फ़ाउन्टेनपेन। हाय, मैं तो मारे लाज के ज़मीन में गड़ गयी। ऐसी-ऐसी गालियाँ दे रहे थे दीदी को कि क्या कोई ताँगेवाला अपनी घोड़ी को देगा। वावूजी वरामदे में खड़े थे, चट से उठकर भीतर चले गये। तुम तो जानते ही हो उन्हें कभी हमारा ज़ोर से वोलना भी पसन्द नहीं था। न दीदी ही चुप होती थीं, न जीजाजी। वड़ी देर तक एकदम कुँजड़ोंवाली लड़ाई चलती रही। हारकर मैं ही दीदी को खींचकर अम्मा के कमरे में ले आयी। मुझे देखते ही जीजाजी और चीखने लगे, 'तुम्हारे माँ-वाप ने पेशा करनेवाली भटियारिन को लाकर किराये पर कोठरी उठा दी है। उसी के नाज़-नख़रे तुम दोनों वहनों ने भी सीख लिये हैं।' मैं चुप रही। वह तो अच्छा हुआ कली अपने कमरे में नहीं थी। कहीं सुन लेती, तो क्या सोचती।"

प्रवीर का चेहरा गम्भीर हो गया। "दामोदर क्या अपने ही कमरे में है ?"

"वही तो कहने आयी हूँ," माया भाई के पायताने बैठ गयी। "रात ही न जाने कहाँ चले गये। कल रात किसी ने भी नहीं खाया। पान की दूकान तक जाकर वावूजी दो वार देख आये। रात-भर अम्मा बैठी रहीं। उन्हें डर है, कहीं क्रोध में आकर कुछ कर न बैठें। पर दीदी का कहना है कि वे उन्हें जानती हैं, जेव के पैसे और पेट का अन्न चुकेगा तो खुद ही भिखमंगे वने, द्वार पर खड़े हो जायेंगे।"

प्रवीर उठ गया, "तू चल मैं आ रहा हूँ। जया ठीक कहती है, क्रोध में आकर कुछ कर बैठे ऐसा साहस उस कायर में कभी नहीं हो सकता। दोपहर के खाने तक वह खुद ही लौट आयेगा। पहली वार भी तो ऐसा ही किया था।"

प्रवीर अम्मा के कमरे में गया तो जया तख़त पर औंधी पड़ी थी। माँ के पास बैठी पुत्री सहमी दृष्टि से कभी माँ को देखती, कभी नानी को। मामा को देखकर वह सुवकने लगी।

"क्या वचपना करते हो तुम दोनों जया," प्रवीर अपनी झुँझलाहट नहीं रोक पाया, "यू शुड हैव सम सेंस, ह्वाई क्रिएट सच सीन्स।"

हिस्टिरिकल-सी बनी जया उठकर बैठ गयी। वहन के उलझे वाल और गलग्रह के भार से विकृत वन गयी, फटी सूजी लाल आँखें देखकर पल-भर को प्रवीर अपनी सगी वहन को ही नहीं पहचान पाया। क्या यह सचमुच उसकी वही वहन थी, जिसकी कानवेंट की शिक्षा, लावण्य और नम्र मिष्ट स्वभाव ने कभी दोनों भाइयों का सिरदर्द वेहद वढ़ा दिया था। न जाने उसके कितने अनजान प्रशंसकों के प्रेम-पत्र, आत्महत्या की धमकियाँ उन्हें आये दिन उनसे जूझने को बाध्य करतीं। आज किसी लड़के ने कॉलेज जा रही जया की गोदी में सेंट में वसा नीला लिफ़ाफ़ा डाल दिया,

आज जस्टिस बनर्जी के पुत्र ने उसे धमकी दे दी कि वह उसके पत्र का उत्तर नहीं देगी तो वह एसिड डालकर उसके सुन्दर चेहरे को वीभत्स बना देगा। आज सचमुच ही नियति ने एसिड डालकर उस सुन्दर चेहरे की लुनाई छीन ली थी। बंगाल में असाधारण रूपवती किशोरी को एक सर्वथा नवीन नाम लेकर पुकारते हैं 'बीबी'। जया सत्रह की भी नहीं हुई थी कि बिना प्रयास के ही बंगाल की 'बीबी' बन गयी थी। उन दिनों 'बीबी' की उपाधि मिस यूनिवर्स से भी अधिक महत्त्व रखती थी। आज उसी 'बीबी' पर मक्खियाँ भिनकने लगी थीं।

"मुझसे क्या कहते हो?" वह कर्कश, फटे स्वर में चीखने लगी, "अम्मा से क्यों नहीं कहते, जो बिना देखे-सुने, मुझे पहाड़ के अँधेरे कुएँ में धकेल दिया? मेरी तो माँ-बहन ही परायी हो गयीं। कली तो उनकी ऐसी अनोखी बेटी बन गयी है, जो आँखों में मूँदने पर भी अम्मा को नहीं पिराती! बस हम झूठी हैं। हमने अपनी आँखों से उस छोकरी को इनकी बाँहों में देखा, और अम्मा-माया हमें ही झूठा बनाती हैं। अपना ही सोना खोटा न होता तो क्या परखनेवाले को दोष देती?"

"जया," प्रवीर ने उसे ऐसे डपटा कि वह सहम गयी, "तू क्या एकदम ही बौरा गयी है? सयानी लड़की यहाँ बैठी है।" वह अँगरेज़ी में उसे फिर धड़ल्ले से धमकाने लगा।

"तू यहाँ क्या कर रही है, जा, बाहर खेल," उसने फिर डरी-सहमी भानजी को बाहर भगा दिया।

रात-भर बेंच पर लावारिस लाश-सी बिछी जिस लड़की के लिए प्रवीर का चित्त पसीज उठा था, वह वर्षा में भीगे कंक्रीट की भाँति फिर पत्थर बन गया।

"मैंने तुमसे क्या कहा था अम्मा! देखो वही हुआ ना! एकदम अनजान लड़की को तुम यहाँ ले आयीं।"

अबतक चुपचाप खड़ी माया सहसा कली का पक्ष लेकर अखाड़े में कूद पड़ी, "पता नहीं, यह दीदी को क्या हो गया है। शी रिफ़्यूजेज़ टु बी रीज़नेबल। कुछ सुनेंगी ही नहीं। फिर क्या खाक समझेंगी? असल में बात यह थी बड़े दा...."

वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पायी थी कि लाल अँगारे-सी दहकती आँखें लेकर दामोदर द्वार पर आ खड़ा हुआ।

"वाह," वह बड़ी बेहयाई से हँसकर बीच द्वार में द्वारपाल की मुद्रा में खड़ा हो गया, "यहाँ तो पूरी संसद्-समीक्षा चल रही है। क्यों जी सासूजी, हमारी अनुपस्थिति में हम पर क्या-क्या अभियोग लगाये गये हैं, ज़रा हम भी सुनें!"

अठारह

विरोधी पक्ष के किसी निर्लज्ज संसद्-सदस्य की ही सीनाजोरी में तना, वह हाथ बाँधकर तख़्त पर जम गया। उसके मुँह से आती मादक दुर्गन्ध का भभाका पूरे कमरे में फैल गया। स्पष्ट था कि वह सस्ते देशी ठर्रे की पूरी बोतल ही गटककर लौटा है। फूहड़ गँवारू ढंग से चबाये गये पान की पीक, एक लम्बी रेखा बनाती, उसकी काट्सवूल की क़मीज़ के सुरुचिपूर्ण कॉलर को रँगती, बटनों को लाल बना गयी थी, 'यू आर नॉट सोबर दामोदर," प्रवीर ने ठण्डे स्वर में कहा, "जाओ, एक-दो लोटा ठण्डा पानी सिर पर उँडेलकर सो रहो, फिर बातें होंगी।"

"तुम्हारे सिर पर न डालूँ दो लोटा ठण्डा पानी ?" वह झगड़ालू गँवार-सा व्यक्ति प्रवीर के सामने ऐसे तनकर खड़ा हो गया कि माया सहम गयी। क्या पता, कहीं नशे के झोंके में कहीं कुछ कर न बैठे !

"जो कहना है अभी कह दो, समझे, मैं इस घर का दामाद हूँ नौकर नहीं।"

"देखो दामोदर," प्रवीर का स्वर आश्चर्यजनक रूप से ठण्डा था, "बाबूजी को लड़ाई-झगड़े से सख़्त नफ़रत है। तुम जब तक यहाँ रहना चाहो हमारे सिर-आँखों पर रहो, पर भगवान् के लिए यह चीख़ना-चिल्लाना और पीना-पिलाना बन्द करो। यहाँ यह नहीं चलेगा। हमारे घर की अपनी एक मर्यादा है।"

"अच्छा !" व्यंग्य से दामोदर का गला एकदम ही पतला बन गया। उस सुदर्शन व्यक्ति के गोरे चेहरे पर रात-भर के असंयम ने होली का तेल-कालिख भरा काला रंग-सा पोत दिया था—"तुम अपने घर की मर्यादा की बात कर रहे हो ? घर की बहू स्वामीजी के साथ भाग गयी, किराये में रहती है, वह तीन कौड़ी की छोकरी, जिसकी सोहबत ने घर की बेटियों के भी पर उगा दिये हैं, जो मुर्दों से भी फ़्लर्ट करने श्मशान पहुँचती है। चौंको मत प्यारे, हम भी किसी ज़माने में पुलिस महक़मे के अफ़सर रह चुके हैं। कौन परिन्दा उड़कर कहाँ जा रहा है। सब ख़बर रखते हैं। फिर हमी से तुम घर की मर्यादा का बखान करते हो ? स्वयं तुम्हारा रिश्ता हो रहा है पाण्डेजी की पुत्री से। अब भला, तुम्हारे पाण्डेजी को कौन नहीं जानता ? कौन से दूध के धुले हैं पाण्डेजी ? कहो तो खोल दूँ फ़ाइल ?"

प्रवीर उसे एक प्रकार से धकेलकर अपने कमरे में चला आया। उस व्यक्ति से निरर्थक बहस में उलझना, कीचड़ में पत्थर फेंकना था। सोचा था, थोड़े दिन छुट्टियों में ज़रा 'चेंज' हो जायेगा सो ख़ूब चेंज हो गया था। अगले बुधवार को उसका एयर

पैसेज बुक हो गया था, पर उसके जी में आ रहा था वह घर की इस दिन-रात की चखचख से छुट्टी पाने, जल्दी ही काबुल लौट जाये।

दोपहर के खाने के लिए, माया दो बार उसे बुलाकर लौट गयी। तीसरी बार, स्वयं बाबूजी द्वार पर आकर खड़े हो गये—"तुम्हारी अम्मा ने कल भी कुछ नहीं खाया। तुम भूखे रहे, तो वह भी अन्न का दाना मुँह में नहीं डालेगी।"

प्रवीर चुपचाप उठकर उनके पीछे-पीछे चला गया। खाने की मेज़ पर शायद सब उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। दामोदर को छोड़, अन्य सबके चेहरों पर वैसी ही अस्वाभाविक मुर्दनी छायी थी। जैसे भयानक गृह-कलह के पश्चात्, रूठे मनाये गये गृह-सदस्यों के चेहरों पर छायी रहती है। जया-माया खाने के कौरों से खेल-सी रही थीं। नवीन थाली में पड़ी चपाती को गोल-गोल घुमा रहा था, प्रवीर को आते देख, उसने थाली पास खींच ली। खाने के कमरे में लगे पर्दे के व्यवधान से चौके में पीढ़े पर, सबकी ओर पीठ किये, बैठी अम्मा का उदास-उतरा चेहरा, बीच-बीच में दिख रहा था।

"बाबूजी," प्रवीर ने मनहूस चुप्पी की हिमशिला पर, हथौड़े की-सी चोट की। "मुझे बुधवार को जाना था, पर अब मैंने प्रोग्राम कुछ बदल लिया है। वहाँ कुछ ज़रूरी काम छोड़ आया था, सोच रहा हूँ परसों चला जाऊँ।"

बाबूजी के मुँह का गुस्सा मुँह ही में रह गया। उस धुँधली सरल दृष्टि के मूक प्रश्न का वह कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। अम्मा, अचानक पर्दा उठाकर मेज़ के पास खड़ी हो गयीं।

बाबूजी शायद उसके जल्दी घर से चले जाने का कारण समझ गये थे।

दामोदर खाना खतम कर मेज़ पर बैठे अन्य सदस्यों की अनुमति लिये बिना ही बड़ी अभद्रता से सशब्द कुरसी ठेलकर बाहर चला गया। उसके कमरे से जाते ही तनाव से बोझिल अस्वाभाविक वातावरण, वाष्प-सा बनकर विलीन हो गया। अम्मा प्रवीर के पास बैठ गयीं।

"देख लल्ला, अब जब सगाई हो गयी है, तो ढील-ढिलाव देना ठीक नहीं, इसको तो देख ही रहा है, खाना-पीना छोड़कर उसी बेहया के दुख में घुली जा रही है। तेरी शादी जब तक नहीं होगी तेरे बाबूजी पाण्डेजी से कहेंगे भी किस मुँह से। फिर कल पाण्डेजी मुझ से कई बार हाथ जोड़कर कह गये हैं कि जैसे भी हो अप्रैल में ही कुन्नी की शादी से निबटना चाहते हैं। लड़की को ढाई साल की ऐसी विकट दशा है कि फिर शादी नहीं हो सकती।"

"तो हर्ज क्या है अम्मा, ढाई साल बाद ही सही।"

अम्मा ने अविश्वासपूर्ण दृष्टि से सनकी पुत्र को देखा और रुआँसी हो गयीं। "और क्या, बुढ़ापे में सेहरा बाँधना, मेरा क्या! आज तक तूने मेरी कोई बात मानी

है, जो आज मानेगा !" बाबूजी उठकर बाहर चले गये, उनके कुछ न कहने पर भी, चेहरे की खिन्न रेखाएँ बहुत कुछ कह गयी थीं।

अम्मा चश्मा उतारकर पोंछने लगीं। कल समधियाने से न जाने किस कुघड़ी में लौटीं कि बड़ी-बड़ी स्टील की थालियों में भरे मेवे-मिष्ठान्न का एक बताशा भी पास-पड़ोस में नहीं बाँट पायीं। सब सामान वैसा ही धरा था। जया की पुत्री ही एक दो बार लुभावनी थालियों पर पड़ा मेज़पोश का घूंघट हटाकर झाँक गयी थी और जया ने उसे एक चाँटा धर दिया था। निर्वीर्य पति के घर-दामाद बन जाने पर वह पुत्री को ननिहाल में सामान्य-सी याचना करने पर भी निर्ममता से कूट देती। उसे लगता, वह मायके में अपना महत्त्वपूर्ण पद खो बैठी है। जिस लाड़-दुलार से अम्मा उसे इकलौती पुत्री की ही भाँति पान के पत्ते-सा फेरती थीं, उसका स्थान अब करुणा ने ले लिया था, वही सहानुभूति, जननी की निष्कपट सहानुभूति होने पर भी उसे विपतुल्य लग उठती, पहले की जया होती तो शायद प्रवीर को वहीं पर चीरकर धर देती। पर अब वह पोर्टफ़ोलियो विहीन मन्त्री की ही भाँति चुपचाप, हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। एक बार अम्मा ने बड़ी करुण याचनापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। जैसे कह रही हो—'तू ही इसे मनाना जया। तेरी बात तो यह खूब सुनता था'।

"काबुल जाने पर तू क्या कभी साल-भर से पहले लौटा है।" अम्मा जैसे निराशा से हताश हो गयी थीं।

"देखो अम्मा !" प्रवीर ने कुरसी अम्मा की ओर मोड़ ली। "सात दिन बाद तो मुझे वैसे भी जाना ही था और उन सात दिनों में तो तुम मेरा ब्याह रचा नहीं सकती थीं। नाक में नकेल तो तुमने डाल ही दी है, घबड़ा क्यों रही हो ?"

"क्यों अम्मा", दामोदर न जाने कहाँ से आकर फिर द्वार पर खड़ा हो गया, "क्या समधियाने की मिठाई का अचार डालोगी ? खिलाओ ना एक-आध बालूशाही ! हमें तो भाई अपने घर में खाने के बाद मिष्ठदन्त का अभ्यास है।"

फिर अम्मा के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही, उसने सबसे बड़े थाल का कपड़ा उठाकर दोनों हाथों में कँगले की भाँति बालूशाहियाँ ऐसे भर लीं जैसे आज तक कभी देखी ही न हों। जया का चेहरा क्रोध, अपमान और विवशता से लाल पड़कर सफ़ेद हो गया। अबोध पुत्री को उसने ऐसी ही लोलुपता के लिए समुचित दण्ड दे दिया था, पर इस सुशिक्षित परिपक्व मस्तिष्क के प्रौढ़ पति को वह क्या वैसा ही दण्ड दे सकती थी ? पति के निर्लज्ज आचरण से क्षुब्ध होकर, वह कण्ठ की सिसकी कण्ठ ही में घुटकती, हवा-सी बाहर निकल गयी। अम्मा चौके में चली गयीं। नवीन फ़ोन की घण्टी सुनने का बहाना बनाकर, आँख के इशारे से, माया को भी अपने साथ खींच ले गया, दामोदर कुरसी खींचकर मिठाई के थाल के पास ही जम गया, उसे किसी के आने-जाने की चिन्ता नहीं थी, नशा उतर गया था। पर खुमारी अभी भी लाल आँखों के भारी पपोटों को बोझिल बना रही थी। एक बालूशाही उसने प्रवीर की ओर बढ़ा

दी और हँसकर कहने लगा, "लो चखो प्यारे, ससुराल की मिठाई और भी मीठी लगती है।"

प्रवीर के जी में आया, वही बालूशाही खींचकर उसके मद्यपान से मूर्ख बन गये चेहरे पर दे मारे। क्या वह व्यक्ति लोकलाज, मान-सम्मान को भी ठर्रे के साथ कॉकटेल बनाकर पी गया था या 'सस्पेंशन' के आकस्मिक आघात ने इसे पतनगर्त की जानलेवा गहराई में ढकेलकर छोड़ दिया था? "सोच रहा हूँ प्यारे, आज तुम्हारी ससुराल तक घूम आयें! कल चलने लगे तो तुम्हारे ससुरजी ने बड़ा प्रेम-भरा निमन्त्रण दिया था।"

दामोदर ने बालूशाही से चिपचिपे ओठों पर तृप्त जिह्वा फेरी और कुरसी प्रवीर की ओर खींच ली।

"आई से, एक दस का नोट दे सकोगे क्या? हमारा प्रिवीपर्स आजकल तुम्हारी राजरानी बहन के पास रहता है और आज उनसे कुछ मिलने की आशा व्यर्थ है।"

प्रवीर का चेहरा तमतमा उठा। बहन के पास उसका कैसा प्रिवीपर्स है वह जानता था। कई बार उसका उदास खिन्न चेहरा देखकर प्रवीर के जी में आया था कि वह उसके हाथ में सौ-दो सौ रुपये रख दे, किन्तु वह उस आत्माभिमानिनी बहन को खूब पहचानता था। चेहरे को विकृत बना देनेवाले रोग, पति के निर्लज्ज आचरण एवं 'सस्पेंशन' ने उसे इतना 'सेंसिटिव' बना दिया था कि तीज-त्योहार पर दी गयी रक़म को भी वह शंकालु होकर देख लेती, कहीं कोई उसे दया की पात्री समझकर भीख तो नहीं दे रहा है। यह वही जया थी, जो भाई से काबुल के कोट, घड़ी और शिफ़ॉन, ज्यॉर्जेट की इम्पोर्टेड साड़ियों के लिए मचलने लगती थी।

"क्यों प्रवीर, किस सोच में पड़ गये। बड़े आदमी हो, दस का नोट तो तुम्हारे कोट की सींवन ही में पड़ा होगा!"

प्रवीर ने बटुआ खोलकर दस का एक नोट बड़ी अवज्ञा से दामोदर के पैरों के पास फेंक दिया, जैसे किसी बकबक कर रहे भिक्षुक को भीख दे रहा हो और फिर वह बाहर निकल गया। उसे यह नोट न देता तो शायद बेहया दामोदर उसकी ससुराल जाकर पाण्डेजी से ही यह रक़म झटक लाता। क्या पता अब भी जाकर माँग ले। अभी ही उसे साफ़-साफ़ समझा देना ठीक होगा।

"देखो दामोदर" वह उलटे पाँवों लौट आया, "पाण्डेजी के यहाँ तुम्हारा जाना ठीक नहीं है।"

"ओह अच्छा! तुम्हारा जाना तो ठीक है ना?" वह हँसकर कहने लगा, "मैंने सुना, तुम्हें कल फिर चाय पर बुलाया है। शायद तुमने नहीं सुना। मैंने कहा था ना, हजार हो, आखिर पुलिस महक़मे का अफ़सर हूँ—उड़ती चिड़िया तो हमारा थानेदार ही पहचान लेता है। अभी उन्हीं का तो फ़ोन आया था। हमने सुन लिया।

तुम तो साले वहरे हो। कोई मन्त्रीजी आ रहे हैं—पाण्डेजी तुम्हारी वदली के लिए उन्हीं की धरपकड़ कर रहे हैं। इसी से तो हम भी जा रहे थे कि वहती गंगा में हम भी हाथ धो लें, पर तुमने टोक दिया। दामोदर को किसी ने चलते-चलते टोक दिया, तो फिर वह वहाँ भूलकर भी नहीं जाता, समझे ?"

दामोदर ने ठीक ही सुना था। वह अपने कमरे में गया तो माया भागती-भागती आ गयी। "वड़े दा, पाण्डेजी का फ़ोन आया था। कल मन्त्रीजी, उन के यहाँ चाय पर आ रहे हैं, पाण्डेजी ने तुम्हें भी वुलाया है। शायद तुम्हारी वदली अब दिल्ली जल्दी ही हो जायेगी।"

"ठीक है," प्रवीर ने मन ही मन सोचा, कल ही एकान्त में वह कुन्नी को सव वातें समझा देगा। घर की बहू वनकर वह जव आ ही रही थी, तव दामोदर का परिचय देने में क्या दोष था! पर जया ने दामोदर की वाँहों में कली को देखने का जो स्पष्ट अभियोग लगाया था, वह क्या सच था? क्या दामोदर सचमुच ही इतना गिर गया होगा? और कली? क्या वह उन वाँहों में वँधकर चीखी-चिल्लायी नहीं होगी?

उस दिन प्रवीर कहीं भी घूमने नहीं गया। माया को वुलाकर उसने एक प्याला कॉफ़ी कमरे में ही मँगाकर पी ली।

"रात को भी मुझे खाने पर वाहर जाना है माया, तुम लोग खा लेना," कहकर वह घोष के यहाँ चला गया। नटू घोष की स्नेही विधवा माँ उसे बचपन से ही 'निमाई' कहकर पुकारती थी।

" 'आहा की ठांडा छेले'—(अहा कैसा ठण्डा पुत्र है)—एक ये मेरा नटू है, जरा पूछो इससे, एक दिन भी ऐसा जाता है, जो माँ से नहीं झगड़ता!"

सचमुच ही तुरन्त पितृहीन नटू माँ का सिरदर्द नित्य बढ़ाता ही रहता। गत वर्ष माता-पुत्र के बीच ऐसी ठनकी कि माँ पोटली वाँध-वूँधकर काशीवास के लिए निकल गयीं। प्रवीर ही उन्हें मना कर स्टेशन से लौटा लाया था। न जाने किस नाटक-मण्डली में सीता वनी एक दुवली-पतली गोरी असमी लड़की को लेकर नटू घर आ गया था।

"माँ, तुम्हारे लिए वहू ले आया हूँ, रोज़ कहती थीं ना वहू ला, वहू ला।"

माँ का एकादशी के व्रत से सूखा मुँह और सूखकर रह गया। दुवली-पतली एकदम कंकाल, चेहरा ऐसा पीला, जैसे सौरगृह से अभी निकलकर आयी हो, न चेहरे पर श्री, न आँखों में लज्जा, न प्रणाम, न नमस्कार, वस खी-खी कर हँसने लगी थी छोकरी।

"क्या वकता है नटू," माँ कन्धे तानकर खड़ी हो गयी थीं। "यह नयी वहू है या जच्चा ?"

"शाव्वास माँ", नटू ने वढ़कर माँ की पीठ ठोंक दी और उसे भीतर खींच

लाया। पीछे-पीछे वहीं धृष्टा छोकरी भी आकर खड़ी हो गयी थी।

"माँ" नटू ने फुसफुसाकर कहा था, "तभी तो कहता हूँ, तुम्हें स्कॉटलैण्ड यार्ड का जासूस बनना था। फिर उसने जो कुछ माँ को बतलाया, वह सुनकर स्तब्ध हो गयी थी। ऐसी पतिता को वह बहू बनाकर ले आया? जिस नाटक-मण्डली में नटू काम करता था, वहीं वह लड़की भी कभी-कभी अभिनय करने आया करती थी। नया क़ानून बनने पर उसकी माँ ने पेशा छोड़ दिया था। कभी-कभी आकाशवाणी से दादरा, ठुमरी गा लेती—कभी गाने के ट्यूशन कर लेती। इस भाँति उसने लड़की को बी. ए. तक पढ़ा लिया था। लड़की में भी अद्भुत प्रतिभा थी। चेहरा फ़ोटो-जेनिक होता, तो शायद फ़िल्म लाइन में भी चमक उठती। पर थियेटर कम्पनी की, फ़ुटलाइट में ही वह चेहरा ऐसा चमका कि थोड़े ही दिनों में वह एक साथ, अनेक नाट्य-संघों की द्युतिमान् तारिका बन गयी। उसी सौर-मण्डल की जगमगाहट में उस का परिचय धूमकेतु-से चमकते शिवकान्त भादूड़ी से हुआ। प्रसिद्ध उद्योगपति का इक-लौता पुत्र जहाँगीर बनता, तो वह नूरजहाँ, वह आनन्दकन्द रघुनन्दन की भूमिका में अवतरित होता, तो वह सकुचाती सीता के अभिनय से दर्शकों को सम्मोहित कर देती। किन्तु नाटक के परदे के साथ ही एक दिन उसके जीवन नाटक का भी परदा ऐसा गिरा कि बेचारी टुलू अपना सब मुखस्थ किया पार्ट भूलकर रह गयी। अवस्था ऐसी थी कि अब लव-कुश की जननी बनने से कुछ पूर्व का ही अभिनय वह निभा सकती थी। गोलमटोल पीले चेहरे की उस नूरजहाँ की व्यथा को न भाँप लेते, ऐसे मूर्ख कलकत्ते के दर्शक नहीं थे। माँ ने सुना तो द्वार बन्द कर दिये। अपने कलुषित जीवन के पिछले परिच्छेद फाड़-फूड़कर वह जला चुकी थी। नवीन समाज में उसने एक मर्यादापूर्ण स्थान बना लिया था, उसे अब मूर्खा पुत्री के कलंक से वह दूषित नहीं होने देगी। क्रोध से उबलती टुलू, पार्क की बेंच पर बैठी रो रही थी कि नटू घोष मिल गया। पहले उसने सोचा, शायद वह वनगामिनी पतिपरित्यक्ता सीता का पार्ट कण्ठस्थ कर रही है, पर जब उसके पूछते ही वह उसी से लिपटकर, फफक-फफककर रो पड़ी, तो कच्चे दिल का नटू स्वयं भी रोने लगा। एक बार, नाटक के तीन घण्टे पहले जहाँगीर को गैस्ट्रो एंटाइटिस ने अधमरा बना दिया था और नटू ने ही इस कलपती नूरजहाँ को अपनी बाँहों में सँभाल लिया था। दर्शक उस नवीन जहाँगीर के अभिनय को देखकर मुग्ध हो गये थे, फिर आज, वह उसे जीवन के विराट् रंगमंच पर अकेली कैसे छोड़ देता? तीन महीने तक एक मिशनरी अस्पताल में उसने टुलू के प्रसव का पूरा खर्चा ऐसे औदार्य से उठाया, जैसे वह ही अजन्मे शिशु का पिता हो! फिर जब ब्रोच केस में अकालमृत्यु कवलित मृत शिशु की देह पर टुलू नाटकीय मुद्रा में पछाड़ें खाती विलाप करने लगी, तो साथ में वह भी बिलखने लगा। वहीं एक नर्स की सान्त्वना उसे अचानक प्रेरणा दे गयी, "रोते क्यों हो मि. घोष, अभी तो आप दोनों की पूरी ज़िन्दगी पड़ी है। भगवान् ने चाहा तो, अभी ऐसे बीसियों बेटे होंगे।" आज

के परिवार नियोजन का वर्ष होता, तो अभागी नर्स की नौकरी चली जाती। नटू ने प्रवीर से हँसकर कहा था, "पर मुझे उसकी बात प्रेरणा दे गयी। मैं टुलू को उसी क्षण, रिक्शा कर, घर ले आया।"

पर लाने से क्या होता! माँ ने झोंटा पकड़कर, मुसकराती बेहया बहू को किया घर से बाहर और नटू को कमरे में बन्द कर तीन दिन तक भूखा रखा। चौथे दिन भूखे शेर और शेरनी की लड़ाई के बीच में यदि प्रवीर नहीं पड़ता, तो अनर्थ हो गया होता। उस दिन से, प्रवीर को जब माशी माँ देखतीं, उनकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू छलक आते। पर लाख बुलाने पर भी, वह इस बार एक दिन भी खाने का निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर पाया था। आज अचानक ही, अपने को स्वयं निमन्त्रित कर उपस्थित हो गये अनमोल अतिथि की अभ्यर्थना में, घोष-जननी दुहरी हो गयीं। लड़के की पसन्द को वे बचपन से पहचानती थीं। लाख हिन्दुस्तानी हो, पसन्द थी एकदम बंगाली। पटल का दोलना, मागुर माछ का झोल और छेने की खीर। यही सब पसन्द था उसे। आज वही सब राँधने का सुविस्तृत आयोजन रचाती, माशी माँ वहीं से प्रश्नों की बौछार करने लगीं।

"क्यों रे प्रवीर, तेरी बहू सुना खूब गोरी है, अपनी जया-माया से भी उजली! बाप रे बाप! तुम पहाड़ियों का रंग तो कश्मीरियों से भी चिट्टा होता है रे—एक तू ही काला कैसे हो गया?"

"फिर भी तो माँ तुम मुझे निमाई कहकर पुकारती हो" प्रवीर हँसकर, लकड़ी के तख्त पर लेट गया।

"आहा, चेहरे के रंग से क्या होता है सोना, मन का रंग देखकर ही तो तुझे पुकारती हूँ 'निमाई'।"

"और क्या" नटू ने मित्र की पीठ पर कुहनियाँ टेक लीं—"यह गौरांग महाप्रभु न आते तो आज दो-दो नाती-नतनी इस घर को गुलज़ार कर देते।"

"चुप कर राक्षस" माँ ने उसे झिड़क दिया, "न जाने कहाँ के गड़े मुरदे उखाड़ता है अभागा। हाँ रे निमाई, तेरी माँ ने कहा है अगले रविवार को मुझे भी तेरी ससुराल ले चलेंगी। पर मैं तो इस बीच तेरे घर जाकर ग़ज़ब ही कर आयी रे! सुना दे तो रे नटू, मुझे तो कहते भी लाज आती है।" माशी माँ, आँचल से मुँह ढाँप हँसने लगीं।

"जानता है माँ क्या कर आयीं? तेरे यहाँ गयीं तो मिस मजूमदार, शायद किसी दुलहनों की फ़ैशन परेड की मॉडल बनने जा रही थीं। एकदम सजी-धजी—शोकेस की मोम की गुड़िया बनी थीं। माँ ने आव देखा न ताव, बस लिपट गयीं। कहने लगीं, 'मेरा मन कहता है, यह मेरे निमाई की बहू है। क्यों बेटी, हो ना प्रवीर की होनेवाली बहू?"

"और बस, उस छोकरी ने भी सोचा, बनाओ बुद्धू। लजा-सकुचाकर सुना

ऐसी छुईमुई बन गयी, जैसे सचमुच ही तेरी वहू हो। मुसकराकर कह दिया, 'हाँ' और हमारी ईडियट मातेश्वरी ने आशीर्वादों की झड़ी लगा दी। वह तो उसी पल तुझे ढूँढ़ता मैं पहुँचा, तो हक्का-बक्का रह गया। माँ उसे गैया बनी, ऐसे चूम-चाट रही थीं जैसे बिछड़ी बछिया हो। मेरा माथा ठनका, मैंने पूछा, क्यों मिस मजूमदार, आज माँ का आप पर यह कैसा प्रेम उमड़ रहा है।' तो बदज़ात छोकरी हँसने लगी।"

"अरे, मैं क्या जानूँ रे निमाई," माशी माँ बोली, "लड़की का चेहरा तो ऐसा भोलाभाला था, जैसे अभी भी माँ की दूधपीती बच्ची हो और पेट में सवा दो गज़ लम्बी दाढ़ी! अरी, मैं क्या कोई तेरी देवरानी-जेठानी हूँ, जो ऐसा मज़ाक़ किया? अब बता भला! तेरी दादी की उम्र की मैं और मुझी को बुद्धू बना गयी। पर हाँ रे प्रवीर! ऐसी सुन्दरी कुँवारी लड़की को घर में रखना ठीक नहीं है। यह तो मैं जानती हूँ कि तू ठहरा संन्यासी-जती मानुष, पर अपने इस अभागे पर मुझे रत्ती-भर विश्वास नहीं होता। दिन-रात बाहर नाटक खेल-खेलकर घर में भी कभी-कभी नाटक खड़ा कर देता है। तेरे घर आता-जाता रहता है। कब आकर कह दे, 'ले माँ, तेरे लिए बहू ले आया हूँ।' और फिर ऐसी बहू, जो अपनी दादी-नानी से भी मज़ाक़ करती फिरती है, हमें पसन्द नहीं है बाबा।"

नटू को, माँ का यह संकेतात्मक प्रस्ताव बेहद पसन्द आया। वह ज़ोर से हँसकर बोला, "माई री यार, यह बात अपने दिमाग़ ही में नहीं आयी। पता नहीं मिस मजूमदार को नाटक-वाटक में रुचि है या नहीं। इस बार हमारा संघ एक प्रतीकात्मक नाटक का प्रयोग कर रहा है। एक ऐसा चेहरा जुट जाता तो बस! उस दिन श्मशान में रांगा दी की सास की चिता को एकटक देख रही थी छोकरी। दो बड़ी आँखों के फ़ोकस में, दायें-बायें जलती दो चिताओं के प्रतिबिम्ब को कोई दूर से भी देख सकता था। ऐसी पात्री, अपने झुलू दा के मेकअप के स्वर्गीय स्ट्रोक से धन्य होकर एक बार स्टेज पर आ जाये तो बस, चित भी अपनी और पट भी। पार्ट की लाइन भूल भी जाये, तो वे सदाबहार आँखें ही पूरा पार्ट प्राम्प्ट कर देंगी।"

प्रवीर चुपचाप, तखत पर पड़ी पेन्सिल से माशी माँ की हिसाब की कापी पर उलटी-सीधी रेखाएँ खींचता रहा।

"और सोच," घोष स्वयं ही बड़बड़ाता जा रहा था, "पड़ गयी है उन विदेशी लफ्फाड़ियों की सोहबत में! एकदम गिरलायन से जंगली, निर्भीक, खूँखार, वनचर, कन्धे तक झूलती सुनहली अयाल, ढीलमढल्ला राजा जनक के चोग़े-सा कोट, कामातुर, मूर्ख आँखें, गले में रुद्राक्ष की माला—साले एकदम वीरभूम के नरभक्षी कापालिक लग रहे थे और साथ में यह सुन्दरी अघोरी-भैरवी।

"बड़ा आश्चर्य है रे प्रवीर," फिर ऐसे धीमे स्वर में फुसफुसाकर कहा, जिस

से चौके में बैठी माँ न सुन पाये ।

"ऐसी दहकती भट्ठी के इतने पास धरा तेरा हृदय-नवनीत पिघलकर उसी में नहीं गिर गया ! मैंने तो उसे दो-तीन ही बार देखा है, पर जितनी बार देखता हूँ, जो चाहता है ऊँची आवाज़ में, चण्डीदास का वही पद गुनगुनाने लगूँ—

प्रभाते उठिया, जे मुख हेरी तू
दिन जावे आजी भालो—

"आज सुबह उठते ही जिसका चन्द्रमुख देखा है उसे देखने पर निश्चय ही मेरा दिन अच्छा बीतेगा ।"

प्रवीर, नटू को वर्षों से जानता था । ऐसे न जाने कितने चेहरे देखकर वह इस पद को लाखों बार दोहरा चुका होगा ! लड़की मात्र को देखने पर नटू का हृदय सिखाये नट-सी मशीनी गुलाटें खाने लगता था । यह कोई नयी बात नहीं थी ।

खाना खाकर प्रवीर बड़ी देर तक वहीं गप्पें मारता रहा । कलह से मलिन अपने गृह लौट जाने को उसका मन ही नहीं कर रहा था । नटू को अपने नाटक के रिहर्सल के लिए जाना था, उसे वहाँ छोड़कर वह घर लौटा, तो दस बज गये थे । गेट पर पहुँचते ही, सशंकित दृष्टि से उसने बेंच को देखा । कहीं आज भी श्मशान-साधिका मदालसा बेंच पर ही चित पड़ी न मिले । पर आज उसके कमरे में ताला नहीं था । द्वार बन्द थे । लगता था, माया-वनविहारिणी स्वामिनी आज स्वेच्छा से ही कपाट मूँदकर सो गयी थी ।

वह अपने कमरे में जाकर सो गया । तकिये पर सिर रखते ही उसे गहरी नींद आ गयी । आँखें लगी ही थीं कि वह अचकचाकर जग गया । उसे लगा, किसी ने उसके पैर का अँगूठा ज़ोर से पकड़कर हिला दिया है । "कौन ? माया—" उसने पूछा—निश्चय ही दामोदर ने आधी रात को फिर कोई बखेड़ा कर दिया होगा ।

"क्या हुआ माया ?" वह उठ बैठा ।

उन्नीस

वह उसके कानों के पास चेहरा सटाकर फुसफुसाने लगी । "माया नहीं है काबुलीवाले, यह तो मैं हूँ—कली !" फिर वह बचकानी हँसी हँसती, उसके कन्धे के पास अपना सिर ले आयी । क्रमशः निकट आती, उसके मन्द स्मित की सुरसुरी प्रवीर की रीढ़ की हड्डी को सुरसुरा गयी ।

इतनी रात को उसके कमरे में वह दुरन्त लड़की, किसी खुले छिद्र से आँधी

के अवाध्य झोंके-सी ही घुस आयी थी।

"डरो मत काबुलीवाले! तुम्हें खा नहीं जाऊँगी, लो, यह देने आयी थी!" वह उसके सामने खड़ी हो गयी, अस्पष्ट धुँधलके में वह छपे ड्रेसिंग गाउन के नीलाभ थैले में डूबी दो बालिका की सी पतली, बाँहों को ही देख पाया।

"लो," उसने जेब में से कुछ निकाल, प्रवीर की हथेली ज़बरन खींचकर थमा दिया, काठ बनकर बैठा प्रवीर चौंक उठा।

"बस, घूम आये काबुल-कन्धार। पर रहे बुद्धू के बुद्धू!" कमनीय कपोलों की मदमस्त मलय-कस्तूरी की पिचकारी जैसे किसी ने खींचकर प्रवीर की कनपटी पर मार दी, वह तिलमिलाकर पीछे हट गया। पर हिप्नोटिक ट्रान्स में ढुलकती मीडियम-सी कली उधर ही लचक गयी।

"किसी अनजान कुँआरी सोयी लड़की के पलंग पर किसी अविवाहित तरुण की अँगूठी मिले तो मामला रादर शेडी लगता है, क्यों है ना? पर मैं समझ गयी थी कि यह किसी अनाड़ी की पहली बार अनभ्यस्त उँगली पर पहनी गयी अँगूठी है, वैसे चाहती तो दुष्यन्त की-सी इस अँगूठी का बिना भुना चेक, ब्लैकमेल मार्केट में, ऊँचे दामों में भुना सकती थी। पर—" वह फिर किसी अदृश्य किन्नरी की-सी दैवी मुसकान से, प्रवीर को मूक बना गयी।

"पर तुम कली को जितनी नीच समझते हो वह उतनी नीच नहीं है। वैसे, सच पूछो तो केवल अँगूठी ही लौटाने मैं यहाँ नहीं आयी।"

उसका कण्ठ-स्वर ट्रान्समीटर फ़ेल हो गये रेडियो से विलीन होते स्वर की ही भाँति कुछ क्षणों तक विलीन हो गया—फिर मोहक अधर कानों से सट गये। शायद वह उस सम्भावना की ओर भी सजग थी कि दामोदर के अदृश्य-टेप रिकॉर्डर का ताना-बाना कहीं आसपास ही बिखरा हो।

"जानते हो क्यों आयी हूँ?"

प्रवीर का सर्वांग थरथरा उठा। क्यों वह तीव्र पहाड़ी नाले के वेग में बहे जा रहे कठोर शिलाखण्ड-सा अपनी समग्र कठोरता खोता जा रहा था। यह निश्चय ही इस लड़की की ज़्यादती थी। लगता था, आज भी उसे, कल की ही भाँति उठाकर कमरे में बन्दिनी बनाना होगा।

"तुम सोच रहे होगे, मैंने कल नशा किया था। हाँ, किया था, जानते हो क्यों?"

वह और भी निकट सट गयी।

विदेशी सुगन्ध क्या ऐसी मारात्मक होती होगी? सुगन्धित केशों का मृदु स्पर्श कुछ क्षणों के लिए प्रवीर को फिर काठ बना गया।

"मेरी नौकरी ही ऐसी है काबुलीवाले—कभी 'ताज' के 'बालरूम', 'क्रिस्टल रूम' और कभी श्मशान का सन्नाटा ! उस दिन अपने विदेशी अतिथियों को लेकर जाना पड़ा श्मशान ! पहले जो फिरंगी भारत के राजा-महाराजा हाथी-हौदे देखने आता था, वह अब भारत के कंकाल और चिताएँ देखने आता है, अब वही मुर्दों की खोपड़ी का पोलो खेलना चाहता है अभागा ! दिन-भर, कल, जलती चिताएँ देखीं, लौटने लगी, तो लगा कोई पीछे-पीछे आ रहा है। जलते नाखून और बालों की दुर्गन्ध नथुनों में ऐसी भरकर रह गयी थी कि 'ऑल दें परफ़्यूम्स ऑफ़ अरेबिया' सूँघकर भी शायद नहीं जाती।" वह फिर हँसकर, अलस मखमली पर्शियन बिल्ली-सी ही प्रवीर से सट गयी—"क्षण-भर पहले, शाखा सिन्दूर में दमकती, जिन दो सौभाग्य सुन्दरियों को चिता में बीभत्स कोयला बना देखा था वह जैसे दाँत निकाल-निकालकर मुझे धमकियाँ देने लगीं।"

"जा तो सही घर, अकेले कमरे में आज श्मशान-प्रवेश का मज़ा चखा देंगी।"

"सहमकर, मैं पॉल से एक गोली माँग लायी, कहता था, मुख में धरते ही एकदम वैकुण्ठ-दर्शन !"

"बाप रे बाप ! मैं क्या जानती थी कि ऐसा घातक पोटेशियम साइनाइड है। चाबी हाथ में धरकर गोली खायी कि कमरा खोलकर सो जाऊँगी, पर वहाँ तो सहस्रों यमदूत खींचकर साथ ले गये। बेंच पर लुढ़की थी बस इतना ही याद रहा। यह अँगूठी न मिलती, तो शायद जान भी न पाती कि कौन महा-मानव बिस्तर पर सुला गया है। पर आज गोली नहीं है, तब से कमरे में ऐसी ही बैठी हूँ। देखो छूकर—" उसने अपनी बर्फ़-सी ठण्डी हथेलियों में प्रवीर के हाथ जकड़ लिये।

"अब मैं नहीं जाऊँगी। पहले सोचा माया को जगाकर उसके पास जाऊँ, पर वहाँ वह क्या अकेली होगी ? और जया ? बाप रे बाप, उस कमरे से तो मैं श्मशान जाना पसन्द करूँगी—अम्मा के कमरे में बाबूजी होंगे—पूरे घर में एक तुम्हीं ऐसे हो, जिसके पास कुछ दिनों तक आ सकती हूँ, तुम आराम से सो जाओ—गुडनाइट ऐण्ड स्वीट ड्रीम्स।"

वह दुष्टता से हँसी और पतली रस्सी पर साइकिल-चलाती, किसी नटिनी-सी सर्कस सुन्दरी की लचीली छलाँग में, पतली टाँगें साधती, लम्बी कुरसी की फैली बाँहों पर पैर रखती, उसकी गद्दी में पालतू बिल्ली ही-सी अंग समेटकर सो गयी।

प्रवीर हतबुद्धि-सा बैठा ही रह गया।

कैसी लड़की थी यह ! निश्चय ही वह नॉर्मल नहीं थी। आधी रात को, उसके कमरे में आकर, वह कैसी अधिकारपूर्ण मुद्रा में सो रही थी, जैसे वह ही उसकी पत्नी हो !

नित्य पूजा करके, अम्मा उसके कमरे में चाय का गिलास लाकर धर जाती थीं। उस कल्पनामात्र से ही वह पसीना-पसीना हो गया। क्या उस छोकरी को सचमुच ही इतनी जल्दी नींद आ गयी थी या उसे चिढ़ाने, वह जान-बूझकर ही गहरी साँसें छोड़ रही थी। वर्षों पुरानी उस आरामकुरसी का बेंत, दामोदर ने दोनों पैर ऊपर धर गँवारू ढंग से बैठकर, झूला बना दिया था। एकदम कमोड बन गयी जिस कुरसी पर कोई ढंग से बैठ भी नहीं सकता था, उसी पर वह ऐसे सो रही थी जैसे किसी हैमाक पर सो रही विदेशी मॉडल हो।

उससे कुछ भी कहने के लिए अब प्रवीर को निकट जाकर फुसफुसाना होगा और ऐसा करने में उसे महासंकोच हो रहा था, सोचेगी, वह भी उसके षड्यन्त्र का लोहा मान गया है। और यदि वह साहस कर सशब्द फटकारता है, तो कहीं आसपास के कमरों में सो रहे आत्मीय स्वजन न जाग जायें। सोती लड़की को वह कल रात की ही भाँति सशरीर उठाकर, उसके कमरे में अवश्य पटक सकता था, पर यदि वह बेहया कहीं चीख पड़ी तब! किसे मुँह दिखा पायेगा फिर? क्या गृह के उस ज्येष्ठ पुत्र के प्रोज्ज्वल निष्कलंक चरित्र पर उसकी वह चीख कोलतार नहीं पोत देगी? काश! आज वह नटू के यहाँ ही सो गया होता, पर तब वह क्या स्वप्न में भी सोच सकता था कि यह दुर्दिनाभिसारिका, आधी रात को उसके कमरे में ऐसे छप्पर फाड़कर टपक पड़ेगी?

यदि कहीं इसी बीच माया आ गयी या स्वयं दामोदर! क्या वह निर्लज्ज, कई बार दिन का कलह भूल-भालकर, रात को उसके कमरे से बिना पूछे सिगरेट का पैकेट नहीं ले गया है? कुरसी पर निश्चेष्ट पड़ी उस निद्रान्ध सुन्दरी को देखकर, फिर कौन विश्वास करेगा कि वह निर्दोष है।

कोयले की कोठरी से क्या फिर वह बिना कालिख की लीक लिये निकल पायेगा?

ऐसी विचित्र लड़की के लिए कहा ही क्या जा सकता था। उसने एक बार फिर कुरसी पर सो रही कली को देखा, उसकी गहरी साँसें कमरे की निस्तब्धता में सर्पिणी की-सी विषैली फुफकारें छोड़ती उसका दिल दहला उठीं। क्रमशः उठते-गिरते नन्हें उरोजों को वह न चाहने पर भी स्पष्ट देख रहा था। एक हाथ कान के नीचे धर, वह कौशलाभिमानिनी कभी एक पैर सिकोड़कर करवट बदलती, कभी दोनों टाँगें कुरसी की निर्जीव फैली बाँहों पर उठा लेती। ऐसे हाथ पर हाथ धरकर बैठने से बात बनेगी नहीं। प्रवीर चुपचाप उठकर बाहर चला गया। उसके सान्निध्य से बरामदे का ठण्डा सीमेण्ट वांछनीय था। कभी क्रोध से उसका सर्वांग काँपने लगता, कभी विवशता उसकी गरदन मरोड़कर रख देती। ऐसे ही उकड़ूँ होकर बैठे-बैठे उसे नींद आ गयी। पर बैठे ही बैठे कहीं देर तक नींद आती है? कभी असहाय गरदन इधर-उधर ढुलकती, कभी हाथ की दोनों कुहनियाँ बुरी तरह दुखने लगतीं और वह अचकचाकर जग जाता। बैठे ही बैठे उसने रात काट दी। हाथ की घड़ी को बड़े यत्न से घुमा-

फिराकर समय देखा, तो चार बज चुके थे।

नित्य पाँच बजे अम्मा के शंखघोष का एलार्म घर-भर को जगा देता था। अब उसे उठाकर कमरे में न पटकने पर अनर्थ की सम्भावना थी। वह उठा, थके, मुड़े-तुड़े हाथ-पैर सीधे किये और कमरे में गया तो कुरसी ख़ाली थी। चलो, बला टली। प्रवीर को लगा उसकी छाती पर, रात-भर पड़ी भारी शिला स्वयं हट गयी है। अन्त तक विधाता ने उसे सुमति दे ही दी। अब चिटखनी चढ़ाकर वह देर तक नींद पूरी करेगा। चित्त ऐसा हलका हो गया कि वह धीमे से सीटी बजाता, चिटखनी चढ़ाकर पलंग की ओर लपका। अचानक कण्ठ की सीटी कण्ठ ही में सूखकर रह गयी। बेढंगी कुरसी से, सुविधानुसार स्थान परिवर्तन कर, दस्युकन्या उसी की चादर सिर से पैर तक लपेटे, उसके खाली पलंग पर सो रही थी। लगता था देर तक गठरी बन, कुरसी पर सोने के पश्चात् उसके अपूर्व प्रकम्पित पर्यंक पर सोने में उसकी सुडौल काया अपनी पूरी लम्बाई में तन गयी थी। ऐसी किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर खड़े रहने का अब समय नहीं था। अम्मा किसी भी पल चाय का गिलास लेकर द्वार पर खड़ी हो सकती थीं। प्रवीर ने बिना कुछ कहे निद्रामग्ना कली के पैर का अँगूठा पकड़कर ज़ोर से वैसे ही हिला दिया जैसे कली ने कुछ देर पूर्व हिलाकर उसे जगाया था।

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। खिड़की से अन्धकार मिश्रित साँवला उजाला झाँकने लगा था। नीले ड्रेसिंग गाउन में चमकती त्वचा का पीलापन देखकर, प्रवीर को पहले दया आ गयी। कितनी बीमार, डरी-सहमी लग रही थी वह! पर दूसरे ही क्षण लज्जास्पद परिस्थिति की वास्तविकता ने उसकी विवेकपूर्ण चेतना लौटा दी। उसने पलंग पर बैठी, अर्ध-उन्मीलित आँखों से उसे टुकुर-टुकुर निहारती विस्मित-भावा कली को बड़ी रुखाई से कन्धा पकड़कर नीचे उतार दिया। वह पहले बुत बनी खड़ी रही। फिर सोमनम्बुलिस्ट-सी चुपचाप चिटखनी खोलकर बाहर निकल गयी तो प्रवीर ने लपककर चिटख़नी बन्द कर दी। कुछ देर तक वह द्वार से सटकर ही खड़ा रहा, चिटखनी बन्द थी, फिर भी उसे भय हो रहा था। कहीं जादूगर हुडूनी की बाज़ीगरी से वह चिटखनी ख़ोल, फिर उसी की पलंग पर पड़ी नज़र न आये। आज उसे कमरा खोलकर सोने का सबक़ मिल चुका था। ऐसी नरभक्षिणी बग़ल के कमरे में थी और उसे अपने पुष्ट शरीर को आँखों ही आँखों में निगलते वह कई बार देख चुका था, फिर भी द्वार खोलकर उसी ने तो 'आ बैल मुझे मार' कहा था। फिर दोष भला किसका था? एक ही रात की बात थी, कल वह अम्मा के बग़ल के कमरे में जाकर सो रहेगा। कह देगा रात-भर सड़क चलती रहती है उसे नींद नहीं आती। फिर रात-भर निकलते जुलूसों का हुल्लड़ अम्मा-बाबूजी भी तो सुनते रहते थे। कभी 'कांग्रेसेर धप्पाबाजी, चलबे ना चलबे ना', कभी 'संयुक्त दल होलो विफल'। ठीक था, यही कह देगा। काबुल जाने पर वह क्या वहाँ उड़कर आयेगी? यदि आ भी गयी तो वह वहाँ उससे निपट लेगा। उस-जैसी बोसियों गोष्ठीप्रिया अभिसारिकाओं को वह अपने संयम से पटखनी दे

सकता था। उसकी जिस तकिया पर वह हाथ धरकर सोयी थी उसपर पतली बाँह का 'कास्ट'-सा बन गया था। क्या, सेंट की शीशी ही उड़ेल गयी थी छोकरी? वही परिचित 'परफ़्यूम' का कस्तूरी भभाका उसे विचलित कर उठा। उसने थपथपाकर तकिये की सिलवट ठीक की और बिस्तर ढक दिया। उजाला हो गया था, अम्मा के शंख का एलार्म बज चुका था। वह बत्ती जलाकर बासी अख़बार ही पढ़ने की विफल चेष्टा कर रहा था कि चिटखनी स्वयं ही खुल गयी। अम्मा चाय का गिलास लिये खड़ी थीं, पन्द्रह मिनट पहले यदि कहीं ऐसे ही आकर द्वार पर खड़ी हो जातीं!

चाय का गिलास उसे थमाकर अम्मा उसी के पलंग पर बैठ गयीं।

एक बात तुझसे कहने आयी हूँ, लल्ला! आज तू वहाँ जायेगा। तेरे बाबूजी तो ऐसे संकोची हैं कि एक बार तू काबुल गया तो फिर मुँह खोलकर पाण्डेजी से कुछ भी नहीं कह पायेंगे। तूने कल का नाटक तो देख ही लिया है, जैसे भी हो, दामोदर को नौकरी पर लगाना है। जबतक खाली बैठेंगे, यही सब उपद्रव खड़े करते रहेंगे। आखिर दामाद हैं। घर से बाहर ठेल भी नहीं सकती। वह तो अच्छा है, परदेश में हैं। यहाँ सबसे यही कह दिया है कि लम्बी छुट्टी लेकर जया का इलाज कराने आये हैं। पर लम्बी छुट्टी की हम कबतक कैफ़ियत देते फिरेंगे? और एक बात है बेटा!" अम्मा रुआँसी हो गयीं—"आज उन्होंने विवाह की तिथि बतलायी तो टालमटूल मत करना। अपने ही मामा को देख ले, शुभ कार्य जहाँ एक बार टला तो टला।"

प्रवीर के मामा का दुखद दृष्टान्त उसे पहले भी कई बार दिया जा चुका था।

पन्द्रह वर्ष पूर्व उनकी न जाने किस कुघड़ी में हुई सगाई उसी 'स्टेज' में ठप्प होकर रह गयी थी। मामा ने बड़े जोश में आकर पहली तिथि स्वयं ही टला दी थी।

'पहाड़ में कोर्टशिप नाम की कोई चीज़ ही नहीं है,' उन्होंने दोनों भानजों को प्रभावित कर दिया था, चट मँगनी और पट ब्याह, हमें यह सब पसन्द नहीं। मामा एक लम्बे अरसे तक विदेश में रहकर लौटे थे और विदेशियों की ही भाँति विवाह के पूर्व, कुछ समय तक रोमाण्टिक ग़ोताखोरी का आनन्द उठाना चाहते थे, किन्तु रसवन्ती ग़ोताखोरी की पहली ही डुबकी में बेचारे ऐसे डूबे कि फिर ऊपर नहीं आ पाये। पहले वर्ष, प्रवीर के नाना की मृत्यु ने विवाहतिथि टाल दी। दूसरे वर्ष स्वयं मामा को ऐसा विषम सन्निपात ज्वर हुआ कि चाँद गंजी हो गयी। वैसी गंजी सूरत पर सेहरा कैसे बँधता! तीसरे वर्ष मामा किसी सरकारी पुल-निर्माण योजना के प्रमुख इंजीनियर नियुक्त हुए थे। उस भीमकाय सेतु की नींव उनके कुछ बेईमान ठेकेदार, दीमक बने न जाने कब से चाट रहे थे, भरभराकर लोहे का एक पूरा खम्भा मामा के सिर पर आ गिरा। प्राण बच गये, किन्तु अर्धांग चला गया। पक्षाघात से पंगु बने मामा, फिर

चिरकुमार ही बने रहे। कौमार्य कवचधारिणी, अधूरी मामी सीमावर्ती क्षेत्र के किसी मोबाइल स्कूल की प्रधानाध्यापिका बन, एकदम मर्दानी बन चुकी थीं। पिछले वर्ष अपनी स्कूल गाइड की टोली लेकर कलकत्ता आयीं, तो प्रवीर पहले उन्हें पहचान ही नहीं पाया। प्रकृति से जूझकर क्या कोई उसे पराजित कर पाया है? जो जितने अमानवीय धैर्य से उससे भिड़ता है, उसे उतना ही कठोर दण्ड देकर प्रकृति पराजित कर देती है। यह वही मामी थीं जिन्हें बीसियों पहाड़ी लड़कियों को नापसन्द कर, मामा ने पसन्द किया था। दुबली, छरहरी पहाड़ी किशोरी, जिसने कभी पहाड़ की परिधि नहीं लाँघी। इसी से गालों पर थी स्वाभाविक लालिमा, चेहरे पर निर्दोष शिशु की लुनाई। अब वही गोरा रंग स्याह पड़ गया था, मर्दाने ट्वीड का लम्बा कोट, क्रेपसोल के मर्दाने जूते और आकारहीन शरीर पर ऊँची बँधी साड़ी, ठुड्डी पर एक नये टापू से उग आये मस्से पर दाढ़ी के गुच्छे का गुच्छा झूल आया था, जिसे वे अभ्यास-वश बार-बार मरोड़ती रहती थीं।

अम्मा ने सोच में डूबे प्रवीर की पीठ पर हाथ धरा तो वह चौंक पड़ा। पता नहीं, क्या-क्या ऊटपटाँग बातें दिमाग़ में आने लगी थीं, क्या कुन्नी भी कभी वैसी ही हो जायेगी? "मैं चलती हूँ लल्ला। आगा-पीछा सब सोच के चलना होगा, इसी से सोचा एकान्त में तुझे पकड़कर मन की बात कह ही आऊँ।" अम्मा, उसे सीख देकर चली गयीं। वैसे यदि सीख न भी मिलती, तो वह स्वयं ही पाण्डेजी की निर्धारित तिथि स्वीकार करने का निश्चय कर चुका था। कल रात की घटना, उसे सहमा गयी थी। अब वह ज़माना नहीं रहा, जब कुँआरी लड़कियाँ समाज के नर-व्याघ्रों के भय से सहम-कर, स्वयं ही अवलम्ब रूप में पति के स्कन्ध के लिए मनौतियाँ माँगती थीं, अब तो मर्यादाशील किसी भी पुरुष को शृंगारिका आधुनिका अपने सुवर्ण मृगचर्म से छल सकती थी।

वह बरामदे में गया, तो कली के कमरे में बड़ा-सा बन्द ताला लटक रहा था। वह निशाचरी क्या दिन-भर इधर-उधर डोलकर भी, रात को देर तक जगी रहती थी?

पाण्डेजी के यहाँ चाय का निमन्त्रण निभाने जाना है, यह माया, अम्मा और स्वयं बाबूजी, कई बार आकर उसे याद दिला गये। वहाँ जाने में प्रवीर को बहुत संकोच हो रहा था। अपने मुँह से वह भला दामोदर के 'सस्पेंशन' का अप्रिय प्रसंग छेड़ेगा ही कैसे? कहीं पाण्डेजी यह न समझने लगें कि दामाद कलाई पकड़ते ही पहुँचा पकड़ने लगा है। उनसे उसका परिचय था ही कितने दिनों का! पर वहाँ पहुँचते ही उसके भय की बेड़ियाँ स्वयं कट गयीं। कुन्नी की बड़ी बहन मुन्नी पति सहित पहाड़ से आ गयी थी। गोरी लम्बी बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, उस मुखरा साली ने वाता-

वरण को एकदम स्वाभाविक बनाकर स्वयं ही अप्रिय प्रसंग छेड़ दिया। वह बड़े बाप की बेटी ही नहीं थी लखपती श्वसुर की पुत्रवधू भी थी। इसी से श्वसुरगृह के ऐश्वर्य ने लावण्य को स्वाभाविक गरिमा प्रदान कर, जिह्वा को प्रगल्भा बना दिया था। वह बात-बात पर मन्त्रीजी को बड़ी आत्मीयता से छेड़ती, ऐसे गुदगुदा रही थी जैसे उनकी सगी मुँहलगी भतीजी हो। सोफ़े के कोने में बैठा मुन्नी का साँवला गोलमटोल पति मुखरा पत्नी के रोबदार व्यक्तित्व के आँचल में ही दुबककर रह गया था।

"देखिए अंकल," वह कहने लगी, "मेरी शादी में तो आपने 'इलेक्शन' का बहाना बनाया, अब देखूँ कुन्नी की शादी में कौन-सा बहाना बनाते हैं—पर देखिए, आप आयें ना आयें, कुन्नी की वेडिंग प्रेज़ेंट आपसे आज ही एडवान्स धरा लूँगी।"

लड़की के हीरों से दमकते कर्णफूल की सप्त किरणों की सर्चलाइट से बेचारे मन्त्रीजी की आँखें चौंधिया गयीं। मुन्नी के अपने शरीर को छोड़कर सब कुछ इम्पोर्टेड था। कान-हाथ के हीरे उसके डैडी विदेश से लाये थे। हाथ की घड़ी उनकी पिछली विदेशी यात्रा का तोहफ़ा थी। कार्डिगन पिता के एक राजनीतिक मित्र ने ला दिया था, साड़ी का बैंमवर्ग जॉर्जेट एक दूसरे मित्र की धोती के भीतर लंगोट बनकर आया था। उस पर मुन्नी उस अलभ्य कठिनता से जुटायी गयी प्रसाधन सामग्री का समुचित उपयोग करना भी जानती थी। मन्त्रीजी बेचारे थे गँवई गाँव के आदमी। दादी-नानी-चाची-ताई को भैंस दुहते ही देखा था, पत्नी को अच्छी-अच्छी साड़ियाँ लाकर भी देते तो सत्यानाश करके रख देतीं। मुन्नी के मीठे आदेश को उन्होंने सिर आँखों पर झेल लिया—"कहो बेटी, कौन-सा उपहार चाहिए?" उन्होंने हँसकर कुन्नी से पूछा। "वाह भला, वह क्या अपने मुँह से माँगेगी? थैंक गॉड, अभी हम सब घर के ही लोग हैं—आइए मैं बतलाऊँ। मुन्नी उन्हें बाँह पकड़कर एकान्त में खींच ले गयी—"एक तो आप को कुन्नी के पति की बदली दिल्ली करानी होगी। उन अफ़ग़ानियों के बीच हमारी कुन्नी सूखकर रह जायेगी और दूसरे, इनके 'ब्रदर इन ला' हैं—दामोदर। आई. पी. एस. के आदमी हैं, पर सस्पेण्ड कर दिये गये हैं। उन्हें भी ठीक करवाना होगा आपको।" वह फिर उन्हें पिता के पास खींच लायी और कहने लगी, "देखिए अंकल, एक सूत्र आपको और थमा दूँ—उस प्रदेश में विजिलैंस कमीशन के लिए जिनका नाम प्रस्तावित हुआ है, उनमें से एक आपके पालियामेण्ट्री सेक्रेटरी का साला है।"

"ठीक है, हो जायेगा!" मन्त्री प्रवर चुटकी बजाकर सोफ़े पर बैठे, तो सोफ़े का पूरा स्प्रिंग भीतर धँस गया।

"देखिए अंकल, यह मन्त्रियोंवाला 'हो जायेगा' तो नहीं है ना? शादी से पहले ही आपको सब कुछ करना होगा। घर की मनहूसी में शादी-ब्याह की शहनाई क्या खाक अच्छी लगेगी?"

पाण्डेजी ने आँखों ही आँखों में शाबाशी देकर गुणी पुत्री को काल्पनिक पुष्प-

हारों से लाद दिया। काश, उनकी यह डिप्लोमेट लड़की लड़का होकर जन्मी होती! इकलौते पुत्र से उन्हें रत्ती-भर आशा नहीं थी। न जाने कितनी ट्राम बस जला, वह पिता को हृद्रोग का अमूल्य उपहार दे चुका था। पिछले सप्ताह अपने पिता का पुतला जला उसने विद्यार्थी वर्ग में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। जीवनावस्था में ही योग्य पुत्र द्वारा इस पिण्डदान का कारण था—उनकी कुरसीधारी नेताओं से मित्रता। बीच-बीच में उन्हें डरा-धमका, अपनी अनामी पार्टी के लिए वह पिण्डारी डाकू की क्रूरता से थैली-भर रुपयों की वसूली कर फिर वीरान घाटियों में खो जाता।

कुन्नी उस दिन अपनी बड़ी बहन की तुलना में शान्त बैठी थी। कभी-कभी वह अपनी आँखें प्रवीर के चेहरे पर ऐसे गड़ा देती कि वह खिसिया जाता। दूसरे ही क्षण उसके सम्मुख वह मिठाई-नमकीन की प्लेटों का अम्बार लगा देती।

"क्यों री कुन्नी," मुन्नी ने छोटी बहन को हँसकर टोक दिया, "क्या अपने दूल्हे को खिला-खिलाकर दुम्बा बना देगी? शादी से पहले ही कहीं तोंद न निकल आये। ज़रा उसकी वेस्ट लाइन का ध्यान रख, समझी? एक तो हमारे पहाड़ के शादी-ब्याह में दूल्हे को वैसे ही कार्टून बनाकर धर देते हैं। मेरी शादी का मुकुट कैसा था याद है ना, डैडी? सामने से गणेशजी और पीछे से जालिमलोशन का विज्ञापन।" मन्त्रीजी भी हो-हो कर हँसने लगे।

"हमने चाय कब की पी ली और दो अतिथि आये नहीं—न विद्युतरंजन आया न लौरीन—"

"मैं बताऊँ डैडी," मुन्नी ने गप्प से एक पेस्ट्री मुख में धर ली, "मुझे लगता है रंजन काका लौरीन आण्टी को अपनी गाड़ी में ला रहे होंगे। बेचारी लौरीन आण्टी की गाड़ी को तो सुना लखनऊ में पकड़-पुकड़कर जला दिया।"

"अच्छा?" मन्त्रीजी लौरीन को वर्षों से जानते थे।

"आण्टी की नेमप्लेट पर कोलतार पोतने लगे तो उन्हें गुस्सा आ गया। अँगरेज़ी में ही आण्टी ने भाषण झाड़ दिया। बस फिर क्या था—पूरी गाड़ी ही हाथ से निकल गयी।"

"पता नहीं क्या हालत हो गयी है देश की?" पाण्डेजी का खिन्न स्वर शायद अबोध पुत्र के लिए भी मूक क्षमायाचना कर रहा था, "अब बताइए भला, क्या इस लीपापोती से अँगरेज़ी देश से चली जायेगी? निकालने के तौर-तरीक़े और होते हैं, अब आप ही लोगों ने अँगरेज़ों को देश से निकाल बाहर किया तो कौन-सी कोलतार पोती थी?" मन्त्रीजी को सहसा अपने सिर पर पड़ी लाठियाँ और गोरे सिपाहियों की ठोकरें याद हो आयीं। उनकी छाती रिक्रूटमेण्ट सेण्टर में खड़े किसी रंगरूट की छाती की भाँति, तनकर निकल आयी। बड़ी गर्वपूर्ण काकदृष्टि से उन्होंने इधर-उधर देखा।

सारी बहस के बीच, एक मूर्ति उदासीन होकर सोफ़े के कोने पर बैठी थी।

न उस वीतराग चेहरे पर उत्साह था न विद्रोह। लगता था निरन्तर संघर्ष करती वह एकदम ही चुक गयी है। पहली बार प्रवीर ने उन्हें देखा तब भी कुन्नी की माँ ऐसी ही चुपचाप थीं और आज भी।

कहीं न कहीं उसने भारी आघात पाया है, यह प्रवीर से छिपा न रहा।

"लीजिए, लौरीन आण्टी आ गयीं।" मुन्नी स्वागत के लिए बढ़ गयी—"मैंने कहा था ना, रंजन काका की गाड़ी में आ रही होंगी।"

बीस

"ओ माई डियर, सॉरी !" कह लौरीन ने बढ़कर, पाण्डेजी के दोनों हाथों को पकड़कर बड़ी आत्मीयता से झकझोरा। फिर मुन्नी और कुन्नी के गालों को चूमकर उनकी माँ के सम्मुख दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं।

न उन्होंने उस विनम्र नमस्कार का प्रत्यभिवादन किया, न कुछ बोलीं। पल-भर को चेहरा तमतमाकर फिर स्वाभाविक उदासीनता में रँग गया। थोड़ी ही देर में, सबकी दृष्टि बचाकर वे उठकर भीतर चली गयीं। स्पष्ट था कि इसी चेहरे से ही लम्पट लगनेवाली ऐंग्लो-इण्डियन महिला के आगमन से असन्तुष्ट होकर ही पाण्डे-गृहिणी भीतर चली गयी थीं।

"क्यों लौरीन, कैसी चल रही है तुम्हारी पोल्ट्री ?" पाण्डेजी ने गरम चाय का प्याला अतिथियों को थमाकर पूछा। फिर मन्त्रीजी की ओर मुड़कर कहने लगे—"हमारी लौरीन सच्चे अर्थ में समाजसेविका है। कहती है, जबतक भारत के हर अण्डरनरिश्ड बच्चे के हाथ में एक-एक ताजा अण्डा नहीं देख लेगी, तबतक क़ब्र में पैर भी नहीं रखेगी।"

हो-हो कर लौरीन ने अपनी मर्दानी हँसी से गोल कमरा गुँजा दिया।

विद्युतरंजन का प्रभावशाली व्यक्तित्व, ज़रीदार कन्नी की खद्दर की धोती और अहिंसात्मक मटके की रेशमी क़मीज़ में और भी खिल उठा था।

"एकदम 'साहब बीबी गुलाम' वाले ज़मींदार लगते हैं ना," मुन्नी प्रवीर के कान के पास आकर फुसफुसायी, "बड़े काम के आदमी हैं। तुम्हारी बदली के लिए डैडी अभी इनसे भी कहेंगे। आओ, तुम्हारा परिचय करा दूँ।"

"क्यों, दिल्ली आना चाहते हो क्या ?" विद्युतरंजन की मोहक हँसी ही उसका सबसे बड़ा आकर्षण थी। "मैं तो कहता हूँ वहीं बने रहो, एक बार पाण्डे की लड़की के हाथ में पड़े, तो बकरा बनाकर बाँध लेगी।" फिर ज़ोर से हँसने लगे।

"देखून" मुन्नी तुनककर बँगला पर उतर आयी, "भालो होबे ना बोलछी।" (देखिए, मैं कहती हूँ अच्छा नहीं होगा।) बड़े हलके-फुलके, मैत्रीपूर्ण राजसी वातावरण में प्रवीर का चित्त हलका बनकर पक्षी-सा देर तक उड़ता रहा। चलने का समय हुआ, तो एक बार फिर पूरा परिवार उसे विदा देने आ गया। आज वह अपनी ही गाड़ी लेकर आया था।

"देखो बेटा," पाण्डेजी ने पैर छूने को झुके प्रवीर की पीठ पर हाथ धर दिया, "हमने पण्डितजी से पत्रा खुलवाकर डेट फ़िक्स कर दी है। पन्द्रह अप्रैल की तिथि ही तुम दोनों को ठीक पड़ती है। साथ ही हमें भी। मार्च तक हम तुम्हें दिल्ली ले आयेंगे। और देखो, अपने बाबूजी से कह देना दामोदर की चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायेगा।"

उस दिन भी वह कुन्नी की ओर ठीक से आँख उठाकर नहीं देख पाया। कार को वह भीड़-भरे चौराहे से निकालता चला जा रहा था कि विक्टोरिया मेमोरियल के सामने आ रहे एक लम्बे जुलूस को देखकर उसने गाड़ी पीछे कर ली। इन विवेक-हीन बचकाने जुलूसों से वह गज़-भर की दूरी ही बरतता था। बड़े कौशल से उसने गाड़ी बैक कर, बरगद की जटाओं के तोरण द्वार में छिपा ली और स्वयं उतरकर पार्क में चला गया। पेड़ों के झुरमुट में पड़ी बेंच की ओर वह बढ़ा और ठिठककर रह गया। क्या वह किन्नरी उसकी उपस्थिति को सूँघकर ही आकाश से टपक पड़ी थी?

वही थी, उस मुद्रा को वह दस गज़ की दूरी से भी पहचान सकता था। वैसी ही निश्चेष्ट, जैसे उस रात को दरवान की बेंच पर पड़ी थी। क्या आज भी गोली खाकर आयी थी? पहले उसने सोचा, मुड़कर दूसरी ओर निकल जाये, पर फिर ऐसे सुअवसर को हाथ से जाने देना मूर्खता थी। उसे उस एकान्त में समझाना घर पहुँचकर समझाने से कहीं अच्छा था। उसे जगाकर, घर छोड़ने का नोटिस आज प्रवीर उसी बेंच पर दे देगा। वह निकट पहुँचा, तो उसने चौंककर देखा, फिर हड़बड़ा कर बैठ गयी, "ऐ काबुलीवाला, वाह, आज तो झोली लेकर आये हो—देखूँ क्या है तुम्हारी झोली में—" उस आनन्दी लड़की ने लपककर प्रवीर के हाथ में लटका ब्राउन कागज़ का थैला छीन लिया तो वह खिसिया गया। कैसा मूर्ख, अन्यमनस्क व्यक्ति था वह! चलने लगा तो उसकी भावी सास ने अम्मा के लिए मेवों का एक थैला दिया था। वह न जाने किस सोच में डूबा था कि थैला हाथ ही में लिये उतर गया। "वाह, वाह, एकदम टैगोर के काबुलीवाला के मेवे हैं—काजू, भुने बादाम, नमकीन पिस्ते—कौन कहता है हमारे देश में भुखमरी है।" उसने मुट्ठी-भर मेवे निकालकर गोदी में रख लिये और खाने लगी। प्रवीर को खड़ा देख, उसने पूरे मेवे गोदी में ही उँड़ेल लिये और बेंच पर हथेली थपथपाकर बोली, "बैठो ना, खड़े क्यों हो? लगता है ससुराल की थैली है, क्यों?"

"मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं मिस मजूमदार, हँसी-मज़ाक़ करने यहाँ नहीं

आया हूँ।" प्रवीर के गम्भीर स्वर में बनावटी गाम्भीर्य नहीं था। दस्युकन्या ने बड़ी-बड़ी काली पुतलियाँ घुमाकर, दोनों हाथ छाती पर धर लिये, "बाप रे बाप! चलिए बोल तो फूटा, मैं तो समझी थी आप गूँगे हैं। पर देखिए ना, इच्छाशक्ति भी निश्चय ही अपना अस्तित्व रखती है। मैं अभी यहाँ पड़ी-पड़ी यही सोच रही थी कि काश, आप आज यहाँ आ जाते। सुना कल जा रहे हैं। चलिए, आज आपसे पूरा कनफ़ेशन कर देती हूँ। कैथोलिक नन्स से शिक्षा पायी है ना, इसी से संस्कार वही हैं।"

"बैठिए ना," उसने हाथ पकड़कर बिठा दिया और फिर मुट्ठी-भर काजू निकाल लिये, "क्या फूला-फूला काजू है यार, एकदम शुतुर्मुर्ग का अण्डा! लगता है विशेष ऑर्डर देकर पेड़ पर उगाये गये हैं।"

कली ने एक बड़ा-सा काजू प्रवीर के ओठों के पास धरा। उसने सिर पीछे कर लिया, तो हँसकर उसने अपने मुँह में रख लिया—

"हाँ, तो कहिए न क्या कहना है मुझसे? वैसे शायद आपको यहाँ कहने में संकोच हो रहा है, क्यों है ना? चलिए, आपको अपने रानियोंवाले अन्तःपुर में ले चलूँ—", वह थैला हाथ में लिये उतर गयी। कुछ क़दम आगे बढ़कर उसने देखा प्रवीर मुँह लटकाये बेंच पर ही बैठा था। "बाप रे बाप, क्या हाथ पकड़कर खींचे जाना ही पसन्द करते हैं आप?" वह लौटकर उसे हाथ पकड़कर बड़ी स्वाभाविकता से खींच ले गयी। "एक बार नैनीताल में भी ऐसे ही बिगड़ैल घोड़े से पाला पड़ा था। लगाम पकड़कर खींचती-खींचती घर तक ले गयी थी।"

"यह देखिए, क्या राजसी प्राइवेसी है, देख रहे हैं ना?"

सचमुच ही, कन्धे से कन्धा मिलाये अर्वाचीन दो-तीन वट वृक्षों की सम्मिलित उलझी जटाओं का भारी परदा झूल रहा था। बीच में था एक कटे पेड़ का मोटा तना। "विराजिए, यही मेरे आरण्यक रनिवास का राजसिंहासन है।" कली ने उसे एक बार फिर खींचकर तने पर बिठा दिया और स्वयं उसके पैरों के पास बैठ गयी।

एक बार प्रवीर के जी में आया, उससे पूछ दे—इस राजसिंहासन पर देश-विदेश के कितने राजा अबतक बैठ चुके हैं? पर ऐसी हलकी-फुलकी बातें करने का उसे अभ्यास नहीं था।

"देखिए मिस मजूमदार, आपसे हाथ जोड़कर एक अनुरोध करने आया हूँ," प्रवीर का नम्र शिष्ट स्वर, संयत और शान्त था। "कृपा कर आप अपने रहने का कहीं अन्यत्र प्रवन्ध कर लें।"

"बस, इत्ती-सी बात?" कली हँसकर बोली, "एक अनुरोध मेरा भी है—जितनी देर यहाँ हैं, कृपा कर मुझे मिस मजूमदार कहकर डंक न दें। इस नाम से मुझे पुकारनेवाले, ईश्वर की कृपा से, बहुत हैं। मेरा नाम बहुत छोटा-सा है। जीभ को

किसी प्रकार की जिमनैस्टिक नहीं करनी पड़ती। कली—और रही आपका घर छोड़ने की बात, मैं कल ही जा रही हूँ महाशय।"

प्रवीर का स्वर कुछ ऊँचा हो गया, "देखिए, मुझे मज़ाक़ करने का अभ्यास नहीं है—कल और परसों आपने जो कुछ किया है, उससे शायद आपको लज्जा न हुई हो और ऐसा करने का अभ्यास रहा हो, पर मुझे नहीं है। हमारे घर की अपनी एक मर्यादा है।"

"ओह, आई सी!" बड़ी-बड़ी आँखों के व्यंग्य में सहसा दामोदर सजीव होकर प्रवीर को अँगूठा दिखाने लगा।

"मैंने सुना है कि विद्युतरंजन मजूमदार, राजा गजेन्द्र बर्मन आपके श्वसुर के परम मित्र हैं। लौरीन आण्टी के पोल्ट्री फ़ार्म में भी पाण्डेजी के खासे शेयर हैं—तब तो निश्चय ही आपको अपने गृह की मर्यादा का विशेष ध्यान रखना होगा।"

प्रवीर बौखलाकर उठ गया। "मैं आपसे यहाँ नीतिशतक पढ़ने नहीं आया हूँ। इतने दिनों से आप मुफ़्त में हमारा कमरा हथियाकर बैठी हैं, रात-आधी रात मसान साध, चरस-गाँजे की दम लगाने को क्या हमारा ही घर रह गया है?"

"शान्त हो महाराज," कली ने दोनों हाथ फैलाकर उसका मार्ग रोक दिया—"मैं मज़ाक़ नहीं कर रही हूँ। मुझे सीलोन में नौकरी मिल गयी है। अब आप जा रहे हैं काबुल और मैं सीलोन—दो विभिन्न दिशाओं में हम दोनों कल सैटेलाइट की ही तेज़ी से उड़कर अदृश्य हो जायेंगे—ह्वाई नॉट पार्ट फ़्रेण्ड्स? ज़रूरी नहीं है कि यहाँ कुश्ती के ही दावँ-पेंच हों।"

बड़े हलके स्वर में टहूकती कली उसे फिर उसी आसन पर खींच लायी।

"विद्युतरंजन मजूमदार तुम्हारे श्वसुर के मित्र न होते तो मैं तुम्हें जाने भी देती, पर मेरी अनुपस्थिति में वह कहीं कोई विषबुझा शब्दभेदी बाण छोड़कर मुझे लंका ही में ठण्डी न कर दे, इसी से तुम्हें सब सुनना होगा। मैं क्यों मसान साधती हूँ, क्यों गाँजे-चरस की दम लगाती हूँ—क्या यह भी कभी तुमने सोचने की कोशिश की है काबुलीवाले? क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि क्यों सब मेरे व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालते हैं?

"क्यों मेरे विकास का पथ काँटों से अवरुद्ध है? तुम्हारी दृष्टि में शायद मैं व्यभिचारिणी हूँ, क्यों? विदेशी छोकरों के साथ रात-आधी रात मसान साधती हूँ, फिर भला अच्छी हो कैसे सकती हूँ!" कली उसके एकदम पास खिसक आयी। "नर्सरी राइम पढ़ी हैं ना? 'ह्वेन शी वाज़ गुड, शी वाज़ वेरी वेरी गुड—ह्वेन शी वाज़ बैड, शी वाज़ हॉरिड!' शायद वही हूँ मैं—"

कली ने हँसकर अपना एक हाथ प्रवीर के घुटनों पर धर लिया। "एक ही बार श्मशान गयी हूँ, पर कितनी शान्ति मिली वहाँ, तुम्हें कैसे बतलाऊँ! कैसा आश्चर्य था कि जहाँ ऐसी शान्ति मिली थी, भय नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं

रहा था। घर लौटने पर उसी श्मशान की स्मृति मेरे प्राण लेने लगी थी—तभी तो तुम्हारे कमरे में भाग आयी थी।"

कली ने सहमकर अपनी लम्बी अँगुलियों के यत्न से सँवारे गये, लम्बे तीक्ष्ण नाखून प्रवीर के घुटने में गड़ा दिये।

"तुमने सोचा, मैं वहाना बना रही हूँ क्यों? पर तुम्हीं ने मेरी उच्छृंखलता को मुखर बना दिया है। जिस दिन तुम्हें पहली बार देखा, उसी दिन मुझे लगा था कि यही मेरा सिद्धि-सोपान है। जिस दिन इस दुरूह व्यक्तित्व-दुर्ग की चारुता, संयम और दर्प की दीवारों को अपने सौन्दर्य डायनामाइट से उड़ाकर इस सिद्धि-सोपान पर बैठ पाऊँगी उसी दिन मेरे हृदय में जन्म से सुलग रही विद्रोहाग्नि स्वयं ही ठण्डी हो जायेगी। कभी-कभी इस अग्नि से मैं भीतर ही भीतर ऐसी दहकने लगती हूँ कि जी में आता है, पूरे संसार को फूँक दूँ। जब वही तीव्र दाह असह्य हो उठता है," उसका सुकुमार भोला चेहरा जैसे किसी दैवी तेज से तेजोमय होकर दमकने लगा, "तभी मैं मसान साधती हूँ, तभी गाँजे-चरस की दम लगाती हूँ। जब लोगों की दृष्टि में मैं कभी अच्छी बन ही नहीं सकती, तब अच्छी बनने की व्यर्थ चेष्टा ही क्यों करूँ?"

प्रवीर को अब निश्चय रूप से लगने लगा कि उसके घुटनों पर नाखून गाड़-कर बैठी, यह लाल-लाल अंगारे-सी दहकती बड़ी आँखोंवाली लड़की एब्नॉर्मल है। कैसे काँपती जा रही थी, जैसे देवी आ गयी हों। अँधेरा हो चला था। गाड़ी भी बहुत सुरक्षित नहीं थी।

प्रवीर खड़ा हो गया।

कली ने उसे दोनों हाथ पकड़कर बिठा दिया, "मैंने पहले ही कह दिया था। आज सब सुनाये बिना नहीं छोड़ूँगी।"

कली का विचित्र अन्तःपुर अन्धकार में गले तक डूब चुका था। उसका प्रवीर के घुटनों से लगा पीला चेहरा कभी सड़क पर जा रही किसी कार के प्रकाश में क्षण-भर को चमकता और फिर अँधेरे में डूब जाता।

-

वह अनर्गल बोलती ही जा रही थी, जैसे आकाशवाणी के किसी पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम का टेप गोल-गोल घूम रहा हो। शिशुघाती पार्वती, पठान पिता, सुन्दरी पन्ना, विद्युतरंजन, असंख्य देशी-विदेशी मौसियों के धुँधले चेहरे, लौरीन आण्टी—सब बारी-बारी से आकर प्रवीर को घेरकर बैठ गये। घुटनों से लगी, उस दुबली कमज़ोर लड़की के प्रति महीनों की संचित निर्ममता सहसा मोहमय हो उठी।

कन्धे तक झूल रहे किंचित् कुंचित केश, निर्दोष चावनी में बाँध लेनेवाली बड़ी आँखें, यत्न से सँवारी गयी भवें और किसी मूर्ति में तराशी गयी-सी उन्नत नासिका। "किस मूर्ख ने कहा है" प्रवीर सोचने लगा, "फलेन परिचीयते वृक्षः (कौन कहता है कि

वृक्ष की पहचान फल से होती है ?) क्या सड़े-गले किसी वृक्ष पर ऐसा लुभावना फल सचमुच ही लगा होगा ?"

"मैं हमेशा सोचती थी," कली कहती जा रही थी, "कि मेरे डैडी भी विवियन के डैडी-से ही होंगे, ऊँचे, अगले हाथ में दवी होगी सिगार ! तब मैं क्या जानती थी कि मैं हाथ में सिगार थमा भी देती तव भी शायद मेरे डैडी अपनी अँगुलियों के ठूँठ में उसे पकड़ नहीं पाते । अम्मा इन्हीं विद्युतरंजन मजूमदार से कह रही थीं और मैंने छिपकर सब सुन लिया । डैडी की जिस इमेज को बनाने में अठारह साल लगे थे, वह तीन मिनिट में मिटकर रह गयी । "अपने को हूर समझती है छोकरी," अम्मा कह रही थीं—"क्या पता, कोढ़ियों की भीड़ में ही शायद तुझे तेरा कोढ़ी बाप मिल जाये या नैना देवी के वाहर वैठी कोढ़िनों की पंगत में तेरी माँ !"

"पहले मुझे लगा, मैं पागल हो जाऊँगी । ऐसा कभी नहीं हो सकता । जहाँ किसी कुष्ठ रोगी को देखती, मुझे लगता, यही मेरा पिता है । एक बार जगने पर रात-भर वैठी रहती । कभी देखती, मेरे दोनों पैरों की अँगुलियाँ झड़ गयी हैं और लँगड़ा-लँगड़ाकर भीख माँग रही हूँ, कभी देखती, मेरी यह नाक जिसका मुझे इतना गुमान है, वीभत्स बनकर भीतर धँस गयी है । जहाँ लेप्रेंजी का लिटरेचर मिलता, दीमक बनकर चाट जाती । आरम्भ में कैसे यह रोग छद्मवेशी शत्रु की भाँति आकर कन्धे पर हाथ रखता है, सव मैंने जान लिया । कभी एकान्त कमरे में मैं घण्टों अपनी त्वचा को टटोलती, क्या पता कहीं पैतृक रोग किसी कोने में कुटिल शत्रु-सा दुवककर वैठा हो ।"

कली का हाथ प्रवीर के घुटनों से लगा वार-बार काँप रहा था । "देश-विदेश में जब-जब मेरे सौन्दर्य को पत्र-पुष्प समर्पित होते, नियति साथ चल रही किसी शुभेच्छुका शेप्रन की ही भाँति मुझे अन्तरात्मा के एकान्त कक्ष में खींचकर समझाने लगती, 'डोण्ट लेट इट गो टु योर हेड !' प्रशंसा का मद, शैम्पेन का-सा ही मद होता है, 'इट गोज़ टु योर हेड इन नो टाइम' और जहाँ एक बार उतरा, 'इट मेक्स यू फ़ील मिज़-रेवल ।' फिर भी मैं, विश्व मेले के प्रांगण से उसी मद में झूमती अपने होटल के अकेले कमरे में लौटती, तो नशा उतर जाता । लगता, मेरे दीन-दरिद्र, पंगु माता-पिता मेरे सिरहाने खड़े होकर मुझे फटकारने लगे हैं—विलास, वैभव और ऐश्वर्य से अन्धी लड़की, तेरे माँ-बाप अली-गलियों में भीख माँग रहे हैं, उनके अमरीकी दूध के खाली डिब्बे के भिक्षापात्र में एक नया पैसा भी खनकता है, तो उनकी आँखें चमकने लगती हैं । और तुझ पर ऐसे विदेशी डॉलर वरस रहे हैं ! क्या तुझे शर्म नहीं आती ?"

कली ने यत्न से सिसकी दबाकर प्रवीर के घुटनों पर सिर रख दिया । फैले झवरे बालों पर स्वयं ही प्रवीर का हाथ चला गया । उसी स्पर्श से चौंककर कली ने सिर उठाया । अविश्वास से, सिर सहलानेवाले को देखने की चेष्टा की, पर अन्धकार में केवल स्पर्श ही हाथ आया । उसी हाथ को कली ने कसकर पकड़ लिया । "चाहती

तो मैं एक विदेशी लक्षाधिपति को छलकर उसकी अगाध सम्पत्ति हथिया सकती थी। बेचारा मेरे प्रेम में एकदम पागल हो गया था। उसने विवाह का प्रस्ताव रखा और मैंने अपने जन्म का टेप खोल दिया। फिर अभागे ने पलटकर नहीं देखा। कहीं तुमने ऐसा ही प्रस्ताव रखा होता, तो क्या मेरा टेप सुनकर भी मुझे ग्रहण कर पाते ?" वह हँसकर पूछती उसके शरीर से सट गयी—"शायद नहीं—इसी से तो मैं अपनी जीवन-दात्री को कभी क्षमा नहीं कर पाती। मुझे बचा तो लिया, पर फिर मेरे गले में पत्थर अटका, मेरे हाथ-पैर बाँध, मुझे गहरी झील में तैरने के लिए छोड़ दिया।"

"कली," अपने मुँह से बड़ी स्वाभाविकता से फिसल गये उस दो अक्षरों के नाम की खनक से प्रवीर चौंका नहीं।

"बहुत रात हो गयी है, अब चलो।"

वह उठ गया पर कली घुटनों में सिर छिपाये वैसी ही बैठी रह गयी। यह तो विद्रोहिणी कली का नया ही रूप था। सदा से ही मॉडलिंग के विदेशी स्कूल में, कन्धे सतर कर सिर उठाये चलने की शिक्षा पायी कली अचानक नतमुखी कैसे बन गयी।

"चलो घर चलें ?" प्रवीर ने बिना किसी झिझक के बड़े आदर से उसका हाथ पकड़ लिया।

"घर ? फिर कहो एक बार—चलो घर चलें।" वह उठनेवाली की हँसी थी या सिसकी ? खड़ी होकर कली प्रवीर की बाँह से लता-सी लिपट गयी।

"क्या अपनी अम्मा के सामने, अपनी कुन्नी के सामने मेरा हाथ पकड़कर ऐसे ही कह पाओगे, चलो घर चलें ?"

"मेरे गलित वंश की महिमा क्या इतनी जल्दी भूल गये ? मैंने ऐसी वेश्या का स्तनपान किया है, जिसकी धमनियों में फिरंगी का रक्त बहता था। दोग़ली सन्तान को साथ लेकर फेरे फिरना वह भी अग्नि को साक्षी धरकर इतना सहज नहीं होता। फिर भी अनजान बनकर कहते हो, चलो घर चलें ! ख़बरदार अब ऐसा मत कहना, क्या पता कहीं सचमुच ही बाँह पकड़कर साथ चल दूँ।" वह उसे छेड़ती, बाँह से झूलती चलने लगी।

प्रवीर ने बाँह छुड़ाने की चेष्टा नहीं की। कार के पास पहुँचकर उसने बड़ी स्वाभाविक भद्रता से पिछला द्वार खोल दिया और ऐसे खड़ा हो गया जैसे स्वयं उस गर्वीली स्वामिनी का दीन-हीन चालक हो।

कली ने लपककर द्वार बन्द कर दिया और चालक की सीट के पार्श्व में बड़े अधिकार से तनकर बैठ गयी। प्रवीर बिना कुछ कहे दूसरा द्वार खोलकर ह्वील साधने लगा।

"डरना मत," हँसकर कली बाँह पकड़कर उसकी ओर ढुलक गयी। "हर तीसरे महीने अपने रक्त की जाँच करवाती रहती हूँ। अरे, कहाँ लिये जा रहे हो !" बाँह की पकड़ सख्त हो गयी। "मैं आज घर नहीं जाऊँगी।"

परिचित मोहक सुगन्ध के साथ लुभावना चेहरा प्रवीर के कन्धे से लग गया। "चौंक क्यों गये, मैं सच कह रही हूँ, आज घर नहीं जाऊँगी।"

क्या आरण्यक की नतमुखी कली घुटनों में सिर छुपाये वहीं छूट गयी थी ?

यह तो नित्य की ही विद्रोहिणी कली थी, जो अपने हृदय की धधकती ज्वाला से समूचे संसार को फूँकना चाहती थी।

"मुझे लौरीन आण्टी के यहाँ छोड़ दो, आज मैं वहीं रहूँगी।"

जिस लम्पट लौरीन आण्टी का परिचय वह घण्टे-भर पूर्व स्वयं ही उसे दे चुकी थी, जहाँ उसे हमेशा यही लगता था कि सी. आई. डी. का पूरा गुप्तचर विभाग उसकी एक-एक साँस का लेखा-जोखा रखता, दिन-रात अदृश्य बना उसके पीछे हथ-कड़ियाँ लिये घूम रहा है, उसी लौरीन आण्टी के यहाँ स्वयं रात बिताने का प्रस्ताव !

"क्यों, क्या आज फिर वहीं रहने जा रही हो ?" प्रवीर के खिन्न धीमे स्वर में करुणा थी या व्यंग्य ? कली अँधेरे में उसका चेहरा ठीक से देख नहीं पा रही थी।

"पूछते हो क्यों ?" वह ह्वील के साथ घूमती, बाँह के साथ-साथ चली जा रही थी। "क्योंकि आज आई डोण्ट ट्रस्ट माईसेल्फ, चलो बायीं सड़क की ओर मोड़ लो। तीसरे ही मोड़ पर आण्टी का बँगला है। वैसे बँगला-बँगला बस ऐसा ही है, पर आण्टी बड़े रोब से उसे 'बँगलो' ही कहना पसन्द करती हैं, बस यहीं पर गाड़ी रोक दो।" प्रवीर ने इधर-उधर देखकर गाड़ी रोक दी। बीहड़-सी बस्ती में दो-तीन कानी धुँधली बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं।

"क्या देख रहे हो ऐसे—" कार का द्वार खोलकर, वह हँसती-हँसती उतर गयी।

"आण्टी की सँकरी गली में तुम्हारी गाड़ी जायेगी नहीं, एकदम सँकरी टनेल है। कल कितने बजे जा रहे हो तुम ?"

प्रवीर उस स्पष्ट सन्तुलित स्वर को सुनकर चौंक गया, "तीन बजे—पर क्या तुम सचमुच घर नहीं चलोगी ?"

"फिर वही—" शैतान बड़ी आँखों में अनोखी चुहल की बिजली कौंध गयी। वह पलटकर उसी की खिड़की के पास सट गयी, "कहाँ तो कन्धे पर भी हाथ नहीं धरने देते थे और कहाँ अब छोड़ने का ही मन नहीं है, क्यों ? चलते-चलते तुम्हें एक बात और बतला दूँ। कनफ़ेशन करना ही है तो पूरा क्यों न कर दूँ। जिस दिन तुम्हारी सगाई हुई थी, उसी दिन मैंने भी अपनी सगाई का उत्सव मनाया था, जानते हो कहाँ ? श्मशान में !" ओठों की बंकिम मुसकान से वह चेहरा कितना बचकाना लगने लगा था या शायद टेढ़ी माँग निकालकर उस दिन चेहरे को उसने स्वयं ही बदल दिया था। आज वह जैसे और भी छोटी बच्ची बन गयी थी।

"तुम्हारी कुन्नी की-सी साड़ी पहनकर मैं मन ही मन तुम्हारी वाग्दत्ता बनकर इठलाने लगी थी। मेरे अतिथि थे अर्थी में बँधकर आये मुर्दे। जिस दिन तुम्हारी बारात आयेगी, उस दिन एक बार फिर वह साड़ी पहन कर दुलहन बनूँगी। तुम्हारे चदरे की गाँठ में स्वयं ही दूसरी जादूगरी गाँठ लग जाये, तो चौंकना मत।" कार की खुली खिड़की से उसने अपना चेहरा प्रवीर के गालों से सटा लिया, "तुम्हारे ही शब्दों में मैंने मसान साधा है। सब कुछ कर सकती हूँ मैं। नैनीताल में हमारे पड़ोस में एक परिवार रहता था। उनके साले का विवाह हुआ, तो बेचारा अपनी बच्ची-सी दुलहन के पीछे दीवाना बना घूमता था! विवाह के छठे महीने ही बेचारी को ग्लैण्ड का टी. बी. हो गया। नन्हें पेट में गिल्टियों का, मारात्मक गुच्छे का गुच्छा बिखर गया। जब वह मरी तो बेचारा पीपल के नीचे खड़ा होकर, अंजलि-भर पानी ऐसे चढ़ाता था, जैसे उसकी प्यासी दुलहन, उसकी अंजलि से सचमुच ही मुँह सटाकर पानी घुटक रही हो। कैसी भाग्यवती होगी वह! मरने पर भी पति के हाथ का पानी! तभी तो शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को लिखकर भेजा था "धन्य है हिन्दू जाति, जो मरे पिता को भी पानी देती है और एक तू है, जो ज़िन्दा बाप को भी एक बूँद पानी के लिए तरसा रहा है।"

कली ने ह्वील पर धरे चौड़े हाथों पर झुककर, ओठ धर दिये। रेशमी बालों के थक्के के थक्के प्रवीर को रोमांचित कर उठे। कुछ पलों तक कली चेतना खो बैठी, पर फिर उसने अपने विद्रोही चित्त की लगाम खींच ली। बाहर खड़ी होकर, वह स्थिर शान्त स्वर में बोली, "तुम जाओ, बहुत रात हो गयी है।"

बिना प्रवीर के उत्तर की प्रतीक्षा किये वह मुड़ी और बिना एक बार पलट-कर देखे ही किसी अनजान सँकरी गली में खो गयी। कल तक जिसके स्पर्श की कल्पना से ही वह घृणा से सिहर उठता था, आज उसी के पीछे भागकर, उसे बाँहों में भर लेने को वह व्याकुल हो उठा। वह कार से उतर गया, क्या कलकत्ते में भी ऐसी बियावान बस्ती हो सकती है? बस्ती भी कहाँ थी? लगता था किसी जादुई परी-सी ही वह किसी जंगल में सर्र से सरक गयी है।

कुछ देर तक प्रवीर वहीं खड़ा रहा। क्या पता शायद उसकी लौरीन आण्टी न मिले और वह लौट आये। पर देर तक खड़े रहने पर भी कली नहीं लौटी। हाथ की घड़ी में नौ बज गये थे। प्रवीर आकर गाड़ी में बैठ गया, कार स्टार्ट करने किंचित् झुका और दोनों हाथों पर देर तक टिके चेहरे की परिचित सुगन्ध ने उसे जकड़ लिया। अन्तिम बार, निराशा से सूनी गलियों के विचित्र चौराहे की ओर देखकर उसने गाड़ी बढ़ा दी।

इक्कीस

वह घर पहुँचा, तो बरामदे में खड़ी परिवार की भीड़ को देखकर खिसिया गया। चिन्तित बाबूजी उसकी अनुपस्थिति में कई बार पाण्डेजी को फ़ोन कर चुके थे। पता नहीं किसी दुर्घटना में न फँस गया हो, बड़ी तेज़ गाड़ी चलाता है। उनके चिन्तातुर स्वर की छूत शायद पाण्डेजी को भी लग गयी। कुछे ही देर में गाड़ी में कुन्नी को लेकर वे स्वयं उपस्थित हो गये। चिन्तातुर जर्जर दम्पति छोटे पुत्र की अकाल मृत्यु से आवश्यकता से अधिक भीरु बन गये थे। कुन्नी को वहीं छोड़कर पाण्डेजी गाड़ी लेकर नटू घोष के यहाँ भी जाकर देख आये थे—लौटकर आ रहे थे कि प्रवीर की गाड़ी देख ली।

"कहाँ चले गये थे बेटा, हमने तो पूरा कलकत्ता ही छान डाला। कुन्नी तो रोने लगी, बड़े कच्चे दिल की है हमारी कुन्नी।"

प्रवीर खिसिया गया। बाबूजी को भी क्या सूझी, जो उन्हें फ़ोन कर दिया। कुन्नी ने मूक कटाक्ष से, भावी पति को बींधकर रख दिया।

"तू तो कभी इतनी अबेर नहीं करता था लल्ला! यही मैं अभी पाण्डेजी से कह रही थी।" अम्मा भावी पुत्र-वधू के पास ऐसे अधिकार से खड़ी थीं जैसे उस का वरण कर अभी-अभी डोली से उतारा हो। कुन्नी ने शायद भावी सास-श्वसुर की उपस्थिति के सम्मान में सिर ढाँक लिया था। सिर ढाँकने से उस का गोल-गोल चेहरा और भी गोल लग रहा था। पति के रुक्ष-शुष्क उलझे बाल और सुदर्शन चेहरे से वह अपनी आँखें हटा ही नहीं पा रही थीं। कल वह चला जायेगा, यही सोचकर स्निग्ध दृष्टि तरल हो उठी थी।

"अब बहुत रात हो गयी है समधिन, हमें आज्ञा दीजिए, आप का लड़का घर आ गया हमारी भी चिन्ता दूर हुई।"

"बैठिए ना," माया ने दो-तीन कुरसियाँ खींचकर सामने बढ़ा दीं। कुन्नी शायद बैठ भी जाती, पर पाण्डेजी अधैर्य से उठ गये।

"नहीं बेटी, अब बैठेंगे नहीं—दस बजे की ट्रेन से मन्त्रीजी दिल्ली जा रहे हैं, जाने से पहले उन्हें एक बार फिर रिमाइण्ड करना होगा। अच्छा बेटा, टिल वी मीट," उन्होंने बड़े लाड़ से भावी जामाता की पीठ थपथपायी। समधी-समधिन से बिदा ली और अनिच्छा से अड़ती पुत्री को एक प्रकार से खींचकर कार में बिठा दिया।

कार के 'गेट' से निकलते ही अम्मा देर से घर लौटे पुत्र के सामने खड़ी हो-

कर रुँधे स्वर में कहने लगी, "आज तूने हम दोनों की उमर कम से कम बीस बरस तो बढ़ा ही दी बेटा। मन्त्रीजी सब ठीक कर ही देंगे। पाण्डेजी ने अभी बतलाया कि तू भी पन्द्रह अप्रैल के लिए राज़ी हो गया है। तबतक हमें भी सब सुविधा है। जया का ऑपरेशन मार्च में है और तेरी बदली भी हो जायेगी।"

इतने आनन्द के दिन भी पुत्र के सूखे चेहरे का रहस्य अम्मा की समझ में नहीं आया। वह बिना कुछ कहे अपने कमरे में चला गया। माया खाने के लिए बुलाने गयी तो कह दिया, "कहीं खा आया है," अम्मा भुनभुनाती रहीं, पर वह नहीं आया। हारकर माया कमरे ही में खीर का कटोरा रख आयी। उस रात को प्रवीर ने द्वार की अर्गला खुली ही छोड़ दी। सामान्य हवा के झोंके से भी द्वार हिलता, तो वह चौंककर देखने लगता। क्या पता स्वभाव से ही आनन्दी, वह आमोदी लड़की कमरे में अचानक कूदकर, लँगड़ी कुरसी में हाथ पैर समेट सो जाये।

पर वह नहीं आयी। आती भी कैसे? क्या वह स्वयं ही उस के चेहरे से अपना चेहरा सटाकर नहीं कह गयी थी कि वह अब अपने को ट्रस्ट नहीं करती!

दूसरे दिन तो उसे तीन बजे जाना था। क्या पता, चलने से पहले शायद आ जाये! पर अपनी व्यर्थ आशा की खोखली ललक को प्रवीर स्वयं जानता था। आने से कौन-सी बात बन जायेगी? वह सिर ढाँककर अम्मा के पास खड़ी कुन्नी को कहीं धकेल सकता था?

प्रवीर चला गया और उस के जाने के तीन घण्टे बाद दिन डूबे सूखा चेहरा लटकाकर कली द्वार पर खड़ी हो गयी। माया कैक्टस के गमले ठीक कर रही थी। उस को देखते ही हाथ पोंछकर बढ़ आयी। वह उत्साह से जैसे फटी जा रही थी।

"अरे, क्या आप फिर दौरे पर चली गयी थीं? जानती हैं, बड़े दा की शादी की डेट फ़िक्स हो गयी! अप्रैल में होगी। मैं मार्च में कुछ दिनों के लिए पहाड़ जाकर फिर लौट आऊँगी। दीदी का ऑपरेशन भी है ना—आप तो आयेंगी ना शादी में?"

सूखा चेहरा और सूख गया। फीकी हँसी-हँसकर, एकदम अपने बड़े भाई की सूरत के ठप्पे की मोहक बहन को कली हाथ पकड़कर अपने कमरे में खींच ले गयी।

"अब देखो माया, कल तो जा ही रही हूँ। नयी जगह है और नयी नौकरी। अब तो यही समझ लो कि जाना अपने पैरों का है आना पराये पैरों का। क्या तुम्हारे बड़े दा चले गये?"

"अरे हाँ, कब के," निर्दोष माया क्या कभी सपने में भी सोच सकती थी कि उस के सामने मुसकराती वह भुवनमोहिनी कल उसी के बड़े दा के कन्धे से लगी पलभर को इन्द्राणी बन गयी थी।

"बड़े दा तो तीन ही बजे चले गये, वैसे तो दिल्ली से काबुल पहुँचने में सुना सात ही घण्टे लगते हैं। पर छुट्टी ही नहीं थी।" आशा के निर्वात दीप की मृतप्राय

ज्योति किरण भी दप से बुझ गयी। जिस दिये को कली ने स्वयं ही फूँक मारकर बुझा दिया था, उसमें क्या एक वत्ती अनजाने में अब तक भुक-धुक कर रही थी ? क्या पता न गया हो ? एक दिन की छुट्टी वढ़ायी भी तो जा सकती है ?

"जानती हो, वड़ा मज़ा हुआ," माया ने कली का हाथ पकड़ लिया "सच तुमने मिस किया। कल यहाँ रहतीं, तो तुम कुन्नी को देख लेतीं।"

आवेशमूलक तेजस्वी कली झुककर विनम्र हो गयी, "अच्छा ? क्या कल यहाँ आयी थी ?"

"हाँ, पता नहीं कल पार्टी के बाद बड़े दा कहाँ ग़ायब हो गये !"

कली का चेहरा चिवुक से लेकर कर्णमूल तक लाल हो गया। सरला माया अपनी ही धुन में बकती जा रही थी, "यहाँ वावूजी, अम्मा का बुरा हाल हो गया। असल में जब छोटे दा का तार आया, तब भी अचानक गोली-सी दगी थी और फिर छोटी भाभी भी पर उगाकर ऐसी ही फुर्र से उड़ गयीं। इसी से दोनों अब अच्छी वात सोच ही नहीं पाते। कभी कहते लाल बाज़ार में पुलिस का लाठी चार्ज हुआ है कहीं लल्ला वहीं न हो, कभी कहते हो न हो मोटर टकरा दी होगी। पाण्डेजी को फ़ोन कर दिया, और वे वेचारे तावड़तोड़ भागते आये। सुना, कुन्नी तो बेचारी रोने भी लगी थी।"

सौतिया डाह से कली का सर्वांग दहक उठा। एक बार समूचे संसार को भस्म करने की ज्वाला आँखों में फिर उतर आयी।

जो निर्मोही तटस्थ होकर उसे बार-बार दूर ढकेलता रहा था, आज चलती वेला उसके क्लान्त माथे पर अपनी चौड़ी हथेली के पल-भर के स्पर्श से उसे किस अनोखे कीलक से ऐसे भरमा गया था ! क्यों कुन्नी के नाम से ही उसका सर्वांग दहकने लगा था !

जब वह ह्वील पर टिकी चौड़ी हथेलियों पर अपने अधरों की सील मोहर लगाने झुकी थी क्या तब पल-भर को भी उसके दिमाग़ में यह कटु सत्य नहीं कौंधा ? सरलता से वश में आ गयी नारी क्या कभी स्थायी रूप से पुरुष के हृदयासन पर आसीन होकर रह सकती है ? कभी नहीं। किसी क्षण भी कुन्नी आकर उसकी खोखली अनामा सील मुहर को व्यर्थ कर सकती है। कुन्नी का कुल है, गोत्र है, खानदान है, पिता की प्रतिष्ठा है। और कली का न कुल है, न गोत्र, न खानदान है, न पिता की प्रतिष्ठा !

"अरे, आप ने तो सामान भी बन्द कर लिया ? अम्मा ने तो मुझे यही देखने भेजा था कि देख आऊँ आप आ गयीं या नहीं। और मैं यहाँ बातों में लग गयी। कह रही थीं—'कल तो बेचारी इतनी दूर चली जायेगी, दो वेला उसे, उसकी पसन्द की सब चीजें खिला दूँ'—और पसन्द भी कैसी है आपकी...." उसने हँसकर कली की उदासी का व्यूह भंग करने की चेष्टा की, "सुना आप को करेला बेहद पसन्द है ?"

"क्या करूँ माया," कली ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें माया के भोले चेहरे पर जड़ दीं, "मुझे हमेशा कड़वी चीजें ही पसन्द आती हैं, पर आज तो कुछ भी खाने को जी नहीं कर रहा है, बेहद थक गयी हूँ।"

"वाह जी, थक कैसे गयी हैं! हम आपके लिए इतनी सारी चीजें बनाकर भूखे बैठे हैं!" माया उसे चौके में खींच ले गयी। जया, दामोदर, पुत्री सहित, सिनेमा देखने चले गये थे। दो दिन पूर्व अपने कमरे से ही, कली ने भयानक गृह-युद्ध की एक-एक चिनगारी उड़ती देखी थी। रात-भर जया की सिसकियों ने उसे सोने नहीं दिया था। लगता था क्रोध से भुनभुनाती रोती-कलपती जया किसी भी क्षण पति को धक्का मारकर बाहर कर देंगी। पर कैसा विचित्र मनोमालिन्य था इस दम्पति का! कभी एक दूसरे के रक्त के प्यासे और कभी प्रणय के!

अम्मा ने कली की थाली को कटोरियों से सजा दिया, तो वह हँसने लगी—"लगता है कल प्लेन में ही अपच होकर मरूँगी अम्मा!"

"चुप कर, इतनी दूर जा रही है और ऐसी अलच्छनी बानी मुख से निकाल रही है! मरें तेरे दुश्मन। मेरा तो मन न जाने कैसा कर रहा है। वहाँ तो सीताजी को भी राच्छसियों ने घेर लिया था। उन्हें छुड़ाने जैसे रामजी आये थे, भगवान् करे तुझे छुड़ाने भी कोई आ जाये।"

"जिन रामजी को छुड़ाने मैं बुलाऊँगी उनका नाम सुनकर फिर क्या तुम उन्हें आने दोगी अम्मा? फिर तो शायद तुम अपने चौके से मुझे अभी बाहर खदेड़ दोगी।" कली करेले को मुँह में भरकर चूसती अम्मा को छेड़ने लगी।

अम्मा का चेहरा न जाने कैसा हो गया। "क्यों री, क्या कहीं किसी मुसल्ले, किरिस्तान से तो शादी नहीं कर रही है?"

"ऐसा मत करना, कली! कितनी बार तुझसे तेरे माँ-बाप का पता माँग चुकी हूँ। पर तू दे, तब ना!"

"क्या करोगी पता लेकर अम्मा?" कली के मुख में पड़ा करेला अपनी स्वभावगत कटुता खोकर कितना मीठा लग रहा था।

"अरी करूँगी क्या बावली! यही लिखूँगी कि ऐसी सोने का टुकड़ा लड़की दी है भगवान् ने, पीले हाथ कर राजरानी बना डालो।"

"पर राजा मिले तब ना अम्मा," कली की बड़ी-बड़ी आँखों में क्षण-क्षण बदलते रंग को माया एकटक देख रही थी। "इसी से तो रावण के देश में जा रही हूँ।" वह अँगुलियाँ चाटती उठ गयी।

"अरी तुझे कौन बातों में हरा सकेगा," अम्मा उठकर कटोरी-भर खीर ले आयीं।

"लल्ला को हमारी खीर बेहद पसन्द है, उसी के लिए बनायी थी, पर खायी कहाँ! दो चम्मच खाकर उठ गया।"

कली हास-परिहास सब भूल गयी। विवेकहीन जिह्वा पर एक निर्लज्ज याचना फिसलते-फिसलते रुक गयी। "वही जूठी खीर मुझे ला दो ना अम्मा!" जीभ न काट लेती तो शायद सचमुच ही अपनी स्वाभाविक मुँहफट निर्लज्जता से उस जूठी खीर के कटोरे को माँग बैठती।

उस दिन माया स्वयं ही ज़िद कर उसके पास सो गयी।

"आप तो कह रही हैं, अभी आप अपना नया पता भी नहीं जानतीं। अच्छा तो आप ही हमको पहले चिट्ठी लिखिएगा। हमारा पता तो जानती हैं ना?" माया हँसकर उसकी ओर करवट बदलकर लेट गयी।

काश, उस पते ही को कली भूल पाती! "क्यों नहीं लिखूँगी माया," कली ने उस सामान्य परिचिता स्नेही लड़की की मुट्ठी दोनों हाथों में पकड़ ली।

उस चेहरे को देखकर यत्न से भुलाया गया दूसरा चेहरा सामने आ गया।

उसे शायद वह अब कभी नहीं देख पायेगी, पर क्या पता, वह उसे देख ले! पत्नी के साथ देखी गयी किसी फ़ैशन परेड में, विश्व मेले के सजे कक्ष में या किसी फ़ैशन पत्रिका के मुखपृष्ठ पर!

एक बार कली के जी में आया कि एक दिन के लिए इलाहाबाद चली जाये, विवियन से मिलकर उसे अपने जीवन के नये मोड़ पर पल-भर को खड़ी करने में दोष ही क्या था! वह तो प्रवीर को देख भी चुकी थी। और देखकर शायद कुछ अप्रसन्न भी हुई थी, पर स्टेशन चलने का समय हुआ तो डाकिया विवियन का पत्र दे गया। पढ़ते ही कली ने झुँझलाकर फाड़ दिया। अब क्या करेगी इलाहाबाद जाकर। जिसे देखो वही घोंसला बनाने के लिए तिनके चुन रहा है। विवियन की सगाई हो गयी थी और निकट भविष्य में होनेवाले अपने विवाह के ड्रेसों की शॉपिंग के लिए वह कली को लेकर दिल्ली जाना चाहती थी। कली का क्या यही काम रह गया था? मॉडल है, तो क्या वह अपने मित्रों-प्रियजनों की भी मॉडल ही बनती रहेगी? अब न वह किसी को अपना पता देगी न चिट्ठी लिखेगी। किसी केन्द्रच्युत, उल्काखण्ड-सी वह नवीन परिवेश में, गहरी डुबकी लेकर ही ऐसी छिप जायेगी कि कोई जाल बिछाकर भी उसे न ढूँढ़ सके।

ऐसी ही पहली डुबकी दी थी स्वयं उसकी जन्मदायिनी जननी ने, जब उसका नन्हा गला घोंटकर उसे एक अनजानी गोदी में पटक दिया था। दूसरी डुबकी खिलायी थी नियति ने, जब पीलीकोठी, बड़ी माँ, वाणी मौसी और काकातुआ का पिंजरा सब हाथ हिला-हिलाकर एक साथ किसी धुँधले पर्दे के पीछे छिप गये थे, तीसरी डुबकी उसने स्वयं ली थी इस महानगरी में, जहाँ न फिर अम्मा उसे ढूँढ़ पायी थीं, न रोज़ी आण्टी! पर इस डुबकी को किसी पेशेवर ग़ोताखोर के चातुर्य से ही लेना

होगा, जिससे ऊपर उठते बुलबुले देखकर गहरे जल के अतलतल में डूब गयी उसकी सुकुमार देह के लिए सब मातम मना लें। न अब उसे इलाहाबाद जाना होगा, न पाण्डिचेरी। चंचल मन में उठ रही तर्क-वितर्क की आँधी को उसने अपने अविवेक के वातायन द्वार को यत्न से मूँदकर बाहर ठेल दिया। अब वह भारत नहीं लौटेगी। गाड़ी चलने लगी तो पल-भर को जी न जाने कैसा हुआ। कुछ देर तक वह जगमगाती रोशनियों के उस विराट् कार्निवल से शहर को देखती रही। फिर उसने खिड़की बन्द कर दी। अचानक उसकी दृष्टि ऊपर और नीचे के बर्थ पर सिर से पैर तक एक-सी नारंगी चादर ओढ़े जोड़े पर पड़ी। ऊपर के बर्थ पर सो रहे व्यक्ति के सिरहाने एक काला कमण्डल धरा था और खूँटी पर लटकी एक लम्बी सुपारी के-से दानों की रुद्राक्ष की माला रेल के झटकों के साथ झटकती ताल-सी दे रही थी। चादर का रंग भी नारंगी नहीं गेरुआ था। इतना लम्बा सफ़र और साथ में साधुओं का यह एरिस्टो-क्रैटिक जोड़ा!

फ़र्स्ट क्लास में सफ़र कर रहे उस मुर्दा बन सिर-मुँह ढाँप-ढूँपकर सोनेवाले सहयात्रियों की रहस्यमय उपस्थिति से कली सहमी हो, ऐसी बात नहीं थी। ऐसी सहमनेवाली लड़की वह नहीं थी, बल्कि देखा जाये तो उसी की उपस्थिति आज तक ऐसे बीसियों निद्रामग्न यात्रियों को सहमा चुकी थी। इतने बड़े स्टेशन में गाड़ी रुकी, फिर भी दोनों क्या चरस की दम लगाकर सो रहे थे? ऊपर के सो रहे यात्री का गोरा अँगूठा उसे एक बार दिखा और वह समझ गयी कि यह कोई विदेशी नया-नया दीक्षित स्वामी है। चलो अच्छा ही हुआ, चें-चें-पें-पें करते बच्चोंवाला कोई परिवार साथ चलता या कोई नव-विवाहित जोड़ा ही सहयात्री बन गया होता तो वह बौखला जाती। जैसा उखड़ा मूड लेकर वह कलकत्ता छोड़ रही थी, उसके लिए ऐसा साहचर्य ही उसे शोभा देता था। अगल-बग़ल में सो रहे उन लम्बतड़ंग ख़बीस-से साधुओं के जोड़े को देख, उसे किसी भी संशय ने सशंकित नहीं किया। वह तकिया ठीक से लगाकर सोने ही जा रही थी कि ऊपर बर्थ पर पड़ी चादर हिली और पलक झपकाते ही वह व्यक्ति नीचे उतर गया। लग रहा था नीचे उतरने में उसे विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। शायद उसकी भयावह रूप से लम्बी टाँगें उसके बैठते ही स्वयं ज़मीन को छू गयी थीं। धुँधले नीले बल्ब की रोशनी में उसके फ़िक्सो से सँवारे गये जटाजूट को कली ने कनखियों से देख लिया। गोरे चेहरे पर यत्न से छँटी सँवरी दाढ़ी और चिकनी मूँछें, रामलीला के बनवासी रामचन्द्रजी की ही सी नक़ली दाढ़ी-मूँछों-सी बनावटी लग रही थीं। उस ने एक बार उड़ती दृष्टि से कली की ओर देखा, फिर नीचे सो रहे अपने साथी को कन्धा पकड़कर हिलाने लगा।

"खाना निकालो जी बड़ी भूख लगी है।" नींद का बहाना बनाये, आँखों तक

चाद्दर की यवनिका को सुविधानुसार उठाती-गिराती कली चुपचाप पड़ी, उस राजसी सन्त-समागम का आनन्द ले रही थी। दूसरी चादर का आवरण हटा और कली ने देखा कि जगकर बैठनेवाली सन्त नहीं सन्तनी थी। ऊपर की बर्थ से नीचे उतर उसे जगानेवाला गैरिकवसनधारी स्वामी उसके पास बैठ गया और धीमे स्वर में फुसफुसाने लगा। कभी-कभी रात्रि की निस्तब्धता में ऐसी फुसफुसाहट नगाड़े-दमामे की चोट से भी अधिक स्पष्ट होकर कानों में बजने लगती है।

"कौन है यह ? कहाँ से चढ़ी ?" पुरुष के कण्ठ ने पूछा।

"पता नहीं, मैं तो सो गयी थी। लगता है, सियालदह से ही बैठी है, तुम हाथ-मुँह धो लो, मैं खाना लगाती हूँ।"

वह उठी और कली ने फिर पतली चादर के ताने-बाने के औदार्य से देखा कि उठने वाली भी अपने गैरिकवसनधारी साथी की भाँति, क़द्दावर, ऊँची, हृष्ट-पुष्ट महिला है। रंग साँवला होने पर भी चेहरे की बनावट अनुपम थी। गेरुए रंग की चुस्त सलवार और किसी साईं बाबा के-से ढीले कुरते में छिपी स्वामिनी की कलात्मक रुचि को कली की मॉडल की दृष्टि ने पल-भर में भाँप लिया। उस संन्यासिनी ने अपने डल ड्रेस को जैसा स्मार्ट बनाकर पहन लिया था, उसे शायद विदेश के किसी मॉडलिंग स्कूल की छात्रा भी वैसी लुभावनी सज्जा में नहीं साध सकती। शरीर की कृशता स्वाभाविक नहीं थी। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि पोलो की घोड़ी की कृशता की भाँति वह चाबुक से साधकर बनायी गयी थी। चेहरे की वयस चालीस से ऊपर, बड़े-बड़े चपल खंजन नयनों की बीस के आसपास और कसी क़मीज़ में यत्न से कसकर घटायी गयी कृशता की वयस देखनेवालों को अनायास ही अपने अठारह वर्ष के कैशोर्य की मरीचिका में बाँध सकती थी। स्टील का कटोरदान खोलकर वह बड़े धैर्य से बार-बार सामने की बर्थ पर पतली चादर से मुँह ढाँपकर पड़ी कली की ओर सहमकर देखती कटोरदान के डिब्बे को साथी के सामने सजाती जा रही थी। उसके हाथ से डिब्बे एक प्रकार से अधैर्य से छीनने को तत्पर उसका बुभुक्षित साथी इधर-उधर देखे बिना किसी भुखमरे कंगले भिक्षुक की भाँति कचर-कचर कर खाये जा रहा था। बीच-बीच में, उसकी गम्भीर संगिनी, उसे कटोरदान का जलतरंग बजाने पर या गिलास लुढ़का देने पर धीमे स्वर में टोकती भी जा रही थी—"शोर मत करो प्लीज़, कहीं वह जग न जाये !"

पर कली के जग जाने का ऐसा क्या भय ! ओह, अब समझ में आया। कली ने करवट बदलकर हँसी रोक ली। स्वामीजी ने कटोरदान से दो उबले अण्डे एक साथ निकालकर मुख में धर निगल लिये थे और फिर दूसरे कटोरदान से किसी प्रागैतिहासिक युग के-से जीव का विराट् हड्डा निकालकर चिचोड़ने लगे थे ! सचमुच ही तो संगिनी का सहमना उचित था ! सिर पर जटाजूट, ठुड्डी पर लम्बी दाढ़ी, गैरिक वसन, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, सिरहाने कमण्डलु और अण्डों-हड्डियों का फलाहार !

देखनेवाला भी आखिर क्या कहेगा! पर खानेवाले को किसी की चिन्ता नहीं थी। करवट बदलने पर भी कली बड़ी देर तक उनके सुदीर्घ भोजन की कचर-कचर सुनती रही थी। फिर उसने स्वामीजी के गटागट घुटके गये किसी रहस्यमय पेय की गटगट का ध्वनि-संगीत भी सुना।

"क्यों जी, पीली पत्तियोंवाला ज़र्दा नहीं लायीं क्या?" उनका झुँझलाया स्वर ही उनके क्रोधी असंयमी स्वभाव का स्वयं परिचय दे गया।

शान्त सहचरी से निश्चय ही भूल हो गयी थी। वह बड़ी देर तक नम्र स्वर में क्षमा माँगती जा रही थी, पर उनकी बिड़बिड़ बन्द नहीं हुई—"क्यों खायें हम तुम्हारा काला तम्बाकू, जानती हो कि हमें तुम्हारा वह काला बारूद एकदम नापसन्द है। अपनी चीज़ रखना तो नहीं भूलीं, हमारी चीज़ भूल गयीं। अब किसी स्टेशन पर उतरकर हमें किसी पानवाले से खरीदकर ला देना। बिना पीली पत्ती के हमें नींद नहीं आती।" फिर शायद किसी उदार पानवाले ने उनकी खुराक जुटा दी थी क्योंकि तड़के ही कली की नींद टूटी तो स्वामीजी घर्राटे ले रहे थे, घर्राटे भी ऐसे कि आरोह से अवरोह तगड़ा।

पौ नहीं फटी थी। कली खिड़की खोलकर बैठ गयी। भागते वृक्ष और खेत-खलिहानों के बीच रेल की खुली खिड़की से उसे ऐसे ही अस्पष्ट लुकाछिपी खेलते म्लान सूर्य की किरणों को ढूँढ़ने में बड़ा आनन्द आता था। दूर-दूर तक फैले ताड़ के पेड़ों का झुरमुट और झोपड़ियों का क्षण-क्षण बदलता शिल्प आँखें बाँध रहा था। कैसा विचित्र था भारत! प्रत्येक दिशा के शिल्प में बहुरूपी शिल्पी की विभिन्न शैली—उत्तरप्रदेश की यात्रा होती तो शायद वह शिल्पी पेस्टल रंगों से बनाकर चित्र प्रस्तुत करता। उस प्रातःकालीन सूर्य की रक्ताभ किरणों के, सरसों के पीताभ पुष्पों से संगम में रंग भरने के लिए रंगभीनी तूलिका से ही काम नहीं चलता। पल-पल में रंग बदलते सरसों के खेत, हवा में झूमती गेहूँ की बालियाँ, तराई के संगम से हाथ हिला-हिलाकर विदा लेती कुमाऊँ की दुर्गम पर्वत-श्रेणियाँ, नहरों का क्षीण कलेवर, जैसा ही बहुरंगी वैभव वैसा ही मेल खाता प्रकृति-दत्त अनुपम पेस्टल रंग! पर एक ही बात थी। उत्तरप्रदेश की यात्रा होती तो वह क्या इतने तड़के ऐसे खिड़की खोलकर देख पाती? क़तार की क़तार में लोटा लेकर बैठी निर्लज्ज गँवारू भीड़ प्रकृति के उस सुरम्य चित्र में कोलतार पोत-कर रख देती। लगता था ससुरे रेलवे टाइम टेबुल देखकर ही लोटा लेकर जम गये हैं। जितनी बार वह मन्दस्मिता उषा का स्वागत करने ट्रेन की खिड़की खोलकर मुँह बाहर निकालती, उतनी ही बार मीलों तक फैली लोटाधारी निर्लज्ज पंगत करारा थप्पड़ मार-कर उसका मुँह खिड़की के भीतर कर देती। कभी-कभी बचकाने क्रोध से वह बौखला जाती। पर इस ओर के ग्रामवासियों में शायद ऐसी कुव्यवस्था नहीं थी, अचानक कली

को उन्हीं प्रात:स्मरणीय लोटाधारी ग्रामीणों की निर्लज्ज मुद्रा की स्मृति गुदगुदा गयो। वह हँसने लगी।

"क्यों हँस रही हो, बेटी ?" मीठी आवाज़ से चौंककर कली मुड़ गयी। वही हँसमुख सन्तनी उसकी सीट पर आकर बैठ गयी थी।

कली खिसिया गयी, जिस बात को याद कर उसे हँसी आयी थी वह क्या बतलाने की थी ? उसने कुछ नहीं कहा।

"कहाँ तक जा रही हो ?" मुखरा वैरागिनी ने चट से दूसरा प्रश्न पूछ दिया। इस बार उसे उत्तर देना ही पड़ा।

"अभी तो धनुषकोटि जा रही हूँ वैसे जाऊँगी सीलोन।"

"अरे, बड़ी दूर जा रही हो और वह भी अकेली—"

"मुझे वहाँ नौकरी मिल गयी है।" कली ने उतनी दूर जाने की कैफ़ियत-सी दी।

"अच्छा, नौकरी करती हो ! हमने तो सोचा कि किसी फ़िल्म कम्पनी में काम करती होगी।"

"क्यों, क्या वैसी ही लगती हूँ मैं ?" कली ने हँसकर पूछा।

"हाँ, एकदम ! चेहरा-मोहरा तो हमें याद रहता है पर नाम याद नहीं रहता। कुछ दिन पहले एक फ़िल्म देखी थी—'बालिका वधू।' जाने उस लड़की का नाम क्या था, पर सूरत एकदम तुम्हारी थी बेटी।"

कली ने देखा, वैरागिनी का वेश होने पर भी उन बड़ी-बड़ी आँखों में विलास की ही स्पष्ट छाया थी, वैराग्य की नहीं। आई ब्रो पेन्सिल से सँवरी चपल मुखरा दृष्टि की नुकीली भंगिमा मौलिक नहीं थी। गेरुआ क़मीज़ के भीतर पहना गया नन्हा परिधान भी कली की अनुसन्धानी दृष्टि से नहीं बच सका। सुघड़ बैसाखियों पर टिका यौवन कली को छल नहीं सकता था। चाँदी की अँगूठी में पहना गया बड़ा-सा प्रवाल सम्भवत: किसी दुष्ट ग्रह की शान्ति के लिए ही चाँदी में मढ़ा गया था क्योंकि उसी कलाई में बँधी गोल घड़ी की सुवर्ण चोटी-सी गुँथी मोटी चेन, कम से कम तीन तोले की थी। क्या उस वैरागिनी के लिए भी समय की उपादेयता थी ?

बाईस

"हम भी बड़ी लम्बी यात्रा पर निकली हैं।" वह कली के बिना कुछ पूछे ही कहने लगी, "पहले रामेश्वरम्, फिर तिरुवल्ली, काँची, मदुराई और वापस दिल्ली। बस, इस ओर

की यात्रा में कुल्हड़ की चाय के लिए तरस कर रह जाती हूँ। बड़ा बुरा अभ्यास है चाय का। सुबह उठते ही गला सूख जाता है। तुमने तो रात भी कुछ नहीं खाया, भूख लग आयी होगी। रुको, थोड़ा प्रसाद धरा है।" आधुनिका सन्तनी ने अपना चौकोर बटुआ खोलकर एक रेशमी थैली निकाली और डोरियाँ खींचकर थैली का खुला मुँह कली की ओर कर दिया।

"मुझे तो इतनी सुबह कुछ खाने का अभ्यास ही नहीं है, फिर ब्रश भी नहीं किया," कली ने संकुचित स्वर में कहा।

"तो क्या हो गया बेटी! यह तो बालगोपालजी का भोग है। गंगाजल को घुटकने से पहले क्या कोई साधारण जल से कुल्ला करता है? पगली, ले खा। मुँह में धरते ही मंजन-बंजन सब आप ही हो जायेगा।" वह अब बड़ी आत्मीयता से 'तुम' छोड़ 'तू' पर उतर आयी थी।

"ले ना, ठाकुर-भोग के लिए नाहीं नहीं करते।" खुली थैली में छिले बादाम, काजू और पिस्ते देख, दो दिन पूर्व की स्मृति कली के कण्ठ में गह्वर बनकर अटक गयी।

"काबुलीवाले, देखूँ तुम्हारी झोली में क्या है?" थैली में निर्जीव मेवों पर धरा कली का हाथ काँप उठा।

"क्या नाम है बेटी तुम्हारा?"

कली को संकोच से एक ही काजू निकालते देख, सन्तनी ने मुट्ठी-भर मेवे निकालकर उसकी गोदी में धर दिये।

"कृष्णकली।"

इस बार मेवों पर पड़ा दूसरा हाथ काँप गया। वह कली के चेहरे पर टकटकी बाँधकर ऐसे देखने लगी जैसे निर्ममता से चिथड़े-चिथड़े कर फाड़ दी गयी किसी अमूल्य चिट्ठी के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर पढ़ रही हो। अस्पष्ट धूमिल स्याही अचानक स्पष्ट होकर निखर आयी, अर्थहीन, लुंजपुंज अक्षरों की लिखावट की पंक्ति साकार होकर कानों में गूँजने लगी—

कृष्णकली आमी तारेई बोली—
कालो तारे बोले गायेरलोक

'कृष्णकली, कृष्णकली' वह ओठों ही में बड़बड़ाती कली को उसी रिक्त दृष्टि से देख रही थी। "तुम्हारा पूरा नाम क्या है बेटी?" वह डरती-डरती ऐसे पूछ रही थी जैसे अप्रिय उत्तर उसे पहले ही मिल गया हो।

"कृष्णकली मजूमदार।"

यत्न से की गयी तारुण्य की क़लई देखते ही देखते उतर गयी। चेहरा सिकुड़कर विषाद की झुर्रियों से भर गया। ओठ काटकर रोकने पर भी नीचे को बह गये। ओठों से दबी सिसकी फिसलकर निकल गयी।

दोनों लम्बे हाथ फैलाकर उसने कली को छाती से लगा लिया।

आश्चर्य से स्तब्ध कली, अनजान कठोर वक्षस्थल से लगकर भी, तनकर काठ ही बनी रही, उस स्नेहपूर्ण आकस्मिक आलिंगन का सामान्य भद्रतापूर्ण प्रत्युत्तर भी नहीं दे पायी। कैसी सनकी थी यह सन्तनी! न जान, न पहचान और लगी छाती से लगाकर रोने जैसे बरसों पहले खो गयी सगी बिटिया को किसी गोदने या तावीज़ का सूत्र पकड़कर पहचान लिया हो! महानाटकीय सिसकियों से कली सहसा झुँझला उठी और उसी झुँझलाहट के बीच एक शंकाशूल ने उसे तड़पाकर रख दिया। अपने कन्धे पर टिकी लम्बी अँगुलियों को उसने बड़ी नम्रता से नीचे उतारते-उतारते, ग़ौर से देख लिया। नहीं, उसकी धारणा निर्मूल ही निकली। वे अँगुलियाँ रोगमुक्त होने पर भी क्या वैसी हो सकती थीं। एक पल को उसने उस जोड़े को अपने ही बिछुड़े माँ-बाप का जोड़ा समझ लिया था, पर अँगुलियाँ मिल भी जातीं तो उसकी अभागी जननी को आँखें कौन देता? अपने को सन्तनी के बाहुपाश से मुक्त कर कली पीछे हो गयी।

सन्तनी ने इस बीच अपने को संयत कर लिया था। नाक पोंछकर उसने एक बार सहमी दृष्टि से मुरदा बनकर सो रहे अपने साथी की ओर देखा, फिर कली के चिबुक का स्पर्श कर अपनी अँगुलियों को चूम लिया।

"जब मिलानेवाला मिलाता है, तो अचानक ऐसे मिला देता है," वह कहने लगी। "कितनी रात सपनों में तुझे देखती रही हूँ। पिछले साल पाण्डिचेरी छोटी दी के पास गयी थी। उन्हीं ने बतलाया कि तू नाराज़ होकर कहीं चली गयी है—" कली को उसका अटपटा प्रलाप अब भी समझ में नहीं आ रहा था। कौन थी वह उसके भूत-भविष्य का लेखा-जोखा रखनेवाली! "क्षमा कीजिएगा," उसने बड़े ही नम्र शिष्ट स्वर में कहा—"मैंने आपको पहचाना नहीं।"

कली के इस नम्र वाक्य ने भी सन्तनी को जैसे क्लोरोफ़ॉर्म सुँघा दिया।

वह दोनों बड़ी आँखें बन्द कर बर्थ की सीट पर पीठ साधकर चुप हो गयी, फिर एक लम्बी साँस खींचकर उसने आँखें खोलीं और कली की ओर झुक आयी।

"क्या पहचानेगी तू? यह मोती के दाँत क्या ऐसे ही निकल गये थे? शहद-सुहागा लगाकर रात-रात-भर तुझे गोदी में लिये बैठी रहती थी। छोटी दी तो आया को सौंपकर निश्चिन्त हो जातीं, फिर उन्हें समय ही कहाँ रहता! आज यहाँ ध्रुपद गा रही हैं, तो कल वहाँ धमार। पर मैं तुझे आया को सौंपकर निश्चित हो सो पाती थी? रेशमी बहुमूल्य रज़ाई ओढ़ाने से ही क्या जाड़ा चला जायेगा? तू जो अपनी नन्हीं टाँगों से साइकिल चलाती, रज़ाई रोज़ रात को लतियाकर दूर फेंक देती है, यह तो मैं ही जानती थी! मुझे देखते ही तू दूध की बोतल दूर पटक देती और मेरी छाती में ऐसे सिर मारने लगती जैसे भूखी, देर से बिछुड़ी बछिया हो। आज तुझे क्या दोष दूँ—"

बड़ी उदासी से हँसकर उसने कली का हाथ अपनी गोदी में खींच लिया, "जिस सराय में हम-तुम रही थीं, वहाँ जनमते ही अकृतज्ञता की घुट्टी पिला दी जाती

हैं। मैं तेरी तानी मौसी हूँ कली। क्यों कुछ याद है? मैंने ही तो तेरा यह लखटकिया नाम धरा था—'कृष्णकली'! आज बड़ी दी मिलतीं तो तुझे सामने धरकर पूछती—क्यों बड़ी दी–देख लो, क्या कहा था मैंने—पर एक बात पूछूँ कली? सगी माँ को ऐसे क्यों छोड़ आयी?"

सगी माँ? कली चौंककर तन गयी—तब क्या उसके अभिशप्त जीवन का रहस्य, तानी मौसी भी नहीं जानती थीं?

"हरे राम, शिव शंकर, दुर्गाभवानी, जय वेंकटेश!" उठते ही अनेक देवी-देवताओं का एक साथ नाम जपते स्वामीजी वर्थ पर बैठ गये।

सहमकर वाणी ने काले रंग का चश्मा लगा लिया। शायद वह अपनी सूजी लाल आँखों को साथी की दृष्टि से बचाना चाह रही थी।

कली के पास से उठकर वह स्वामीजी के पास खड़ी हो गयी थी, "यहाँ तो कहीं चाय दिखती ही नहीं। लगता है, किसी बड़े स्टेशन पर ही गाड़ी रुकने पर जुटेगी।"

"कोई चिन्ता नहीं," स्वामीजी वर्थ पर ही पालथी मारकर बैठ गये और पैर के अँगूठे को हाथ से पकड़कर हिलाते, कनखियों से कली को देखने लगे।

"कहाँ जा रही हो पुत्री?" वहीं से उन्होंने अपनी प्रश्न-गुलेल का रबर खींचा।

कली ने कुछ उत्तर नहीं दिया और उदासीन ग्रीवा खिड़की से ऐसे बाहर निकालकर देखने लगी जैसे उसका प्रश्न सुना ही नहीं हो। रात के धुँधलके में जो व्यक्ति सुदर्शन संन्यासी लगा था, वह दिन के उजाले में श्मशान घाट का अवधूत लग रहा था।

"सीलोन जा रही हैं, वहीं नौकरी करती हैं," वाणी ने ही कली से किये गये प्रश्न का उत्तर दिया। "हूँ, नौकरी!" स्वामीजी और ऊँचे स्वर में कहने लगे, "नौकरी, वह भी इतनी दूर! क्यों नहीं रघुनन्दन आनन्दकन्द की चाकरी करती, पुत्री! चल हमारे साथ, तीरथ में पग-पग पर रणछोड़ की राजसी नौकरी दिला देंगे इसे। ठाकुर की चरणसेवा—'चाकर रहसूँ, बाग़ लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ, बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ—म्हाने चाकर राखो जी'—" स्वामीजी काल्पनिक करताल बजाते, मीठे स्वर में गाते हँसने लगे।

"क्यों गोविन्ददासी, समझाती क्यों नहीं इस पुत्री को? यह हमारे साथ ही क्यों नहीं चलती?"

पर गोविन्ददासी ने उस उदार प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया।

स्वामीजी वही गाना गुनगुनाते, हाथ में रेशमी जोगिया थैला लटकाये, गुसलखाने

की ओर चले गये तो वाणी बड़े अधैर्य से कली की ओर खिसक आयी जैसे स्वामीजी की अनुपस्थिति में ही उससे चटपट सब कह लेना चाह रही थी।

"परिस्थितियों से ऐसी विवश हूँ माँ कि तुझे साथ चलने को कह भी नहीं सकती। 'आप डुबन्ते बाभना, ले डूबे जजमान' वाली बात है। दिल्ली में हमारा ब्यूटी क्लिनिक था। सब-कुछ ठीक चल रहा था। स्वामीजी वहीं योग के 'लैसन्स' भी देते थे। पता नहीं कहाँ एक विधवा जवान पहाड़ी छोकरी को देखकर स्वामीजी पिघले और साथ ले आये। उसी ने हमारा पटरा विठा दिया। अब तुझसे क्या छिपाऊँ! हमारा एक साइड बिज़नेस भी था।"

तानी मौसी फिर कहीं खो गयी थीं। यह तो गोविन्ददासी की कपटी आँखों की नयी ही चमक थी, "स्वामीजी की अण्डरग्राउण्ड बिज़नेस गुफाओं में चलती थी, वहीं उस नमकहराम छोकरी को किसी मठाधीश ने फुसलाकर अपने दल में मिला लिया। वैसे स्वामीजी के भक्तों में कुछ प्रसिद्ध उद्योगपति भी थे। उन्हीं की कृपा से हम इस यात्रा पर निकल पड़े। पुलिस हमारा एक बाल भी बाँका नहीं कर पायी—अब तू ही...."

अधूरे वाक्य के बीच ही में गुसलखाने के द्वार पर नहा-धोकर स्वच्छ निखरे स्वामीजी मुसकराते खड़े हो गये। उनकी दाढ़ी-मूँछें क्या स्नान के जल के साथ ही बह गयी थीं? क्लीन शेव्ड चेहरे की पारदर्शी त्वचा किसी किशोरी की नवनीत चुपड़ी त्वचा-सी ही चमक रही थी।

"गोविन्ददासी, अब निकालो हमारा पीला थैला।" उनके कहते ही वाणी सेन पीला थैला निकाल लायी। स्वामीजी वर्थ पर जम गये और थैले से विभिन्न आकार की डिबियाएँ निकाल-निकालकर किसी चलचित्र के चतुर मेकअप मैन का-सा चमत्कार दिखाने लगे। पहले उन्होंने मुट्ठी-भर राख निकालकर दोनों पुष्ट बाहुओं, चिकने चेहरे और गौर वक्षःस्थल पर ऐसे पोत ली, जैसे मैक्स फ़ैक्टर का सुगन्धित पाउडर हो। फिर उन्होंने गोरोचन का तिलक सँवारा और भीगे जटाजाल को चौड़े कन्धों पर फैला लिया। केश छिटकाते ही रेल का पूरा डिब्बा दामी यूडीकोलौन की सुगन्ध से मह-मह महक उठा। लगता था एक-एक केश, रोम-कूप में विलासी स्वामीजी गुसलखाने में ही उस सुगन्ध की स्प्रे कर आये थे। किसी दीन-हीन परिचारिका-सी वाणी सेन उनकी प्रसाधनक्रिया में निरन्तर योगदान दे रही थीं। कभी एक डिबिया बढ़ातीं, कभी दूसरी।

"गोविन्ददासी, अब तुम चाहो तो नहा-धोकर तैयार हो सकती हो।" स्वामीजी ने ऐसे स्वर में आदेश दिया जैसे बिना उनसे पूछे गोविन्ददासी को गुसलखाने जाने की भी स्वतन्त्रता नहीं थी। फिर उन्होंने कनखियों से कली को देखा जैसे कह रहे हों—देखा हमारा रौब?

वाणी गुसलखाने गयी ही थी कि ट्रेन किसी छोटे-से स्टेशन पर आकर रुक गयी। कली को निर्णय लेने में कभी देर नहीं लगती थी। उसने बिस्तरा लपेटा, एक

हाथ में सूटकेस लटकाया और ऐसे इतमीनान से नीचे उतर गयी जैसे उसे उसी स्टेशन पर उतरना था, जिसका वह नाम भी नहीं जानती थी।

"क्यों—क्यों ? क्या यहीं उतर जाओगी ?" एक नासिका रन्ध्र मूँदे, प्राणायाम साधे पाखण्डी स्वामीजी अपना बकोध्यान भूलकर उठ बैठे।

कली ने कुछ उत्तर नहीं दिया। गाड़ी स्टेशन छोड़ रही थी। उसने देखा खिड़की पर खड़ी तानी मौसी उसे आश्चर्य से देख रही हैं। क्रमशः दूर होती जा रही, बड़ी-बड़ी आँखों में आश्चर्य, वेदना और निराशा का सन्देश कली ने पढ़ लिया। पहले वह मूढ़-सी देखती रही, फिर उसकी दुबली कलाई ऊपर उठ गयी। हाथ हिला-हिलाकर अनजाने प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ी कली ने स्वेच्छा से ही एक स्नेह-ग्रन्थि और काटकर हवा में उड़ा दी।

जैसा आकस्मिक मिलन था वैसा ही आकस्मिक विछोह। शायद जीवन-भर उसे चलती गाड़ी से ऐसे ही अनजान प्लेटफ़ॉर्म पर अपना अधलपेटा बिस्तरबन्द और सूटकेस लटकाकर उतर जाना होगा! जिस तानी मौसी के स्नेही चेहरे को वह पहचान भी नहीं पायी थी और जिसके आलिंगन-पाश को निपट बनावटी समझ वह मुक्त होने को छटपटाने लगी थी, उसी की छाती पर सिर रखकर सब कुछ कह देने को अब वह फिर छटपटाने लगी। क्या सोच रही होगी वह! कैसी अकृतज्ञ लड़की थी कली! क्या उसके गुसलखाने से लौटने तक रुक नहीं सकती थी ? बिना कुछ कहे ही ऐसे उतर जाने के लिए उसकी अन्तरात्मा उसे सहसा बुरी तरह फटकारने लगी। तानी मौसी अकेली होती, तो वही मिलन कितना सुखद हो सकता था! उस शेर की खाल में लिपटे मौसी के गीदड़ सहचर ने कली को सहमाया हो ऐसी बात भी नहीं थी, अपनी पिछली ज़िन्दगी की कड़ुवाहट को धो-पोंछकर बहा देने का निश्चय कर ही वह घर से निकली थी, फिर क्या जान-बूझकर ही पहले ग्रास में मक्षिका निगल लेती ? सूटकेस पास खिसकाकर वह बेंच पर बैठ गयी। अब किसी भी दूसरी कुछ सेकेण्डों के लिए रुकी रेलगाड़ी में ही भागकर बैठना होगा। शायद क़ुली भी उसे स्वयं ही बनना होगा। कैसा अजीब स्टेशन था! लगता था, किसी भुतही बस्ती का भुतहा स्टेशन था वह! न एक क़ुली, न यात्री। ख़ैर कोई न कोई गाड़ी तो पल-भर को रुकेगी ही, और किसी भी कुछ पलों को रुकी गाड़ी में वह बैठ सकती थी। चलती और क्षण-भर को ऐसे अनजान अनामा स्टेशनों पर रुकती रेलगाड़ियों में चढ़ने-उतरने का उसे कभी अच्छा अभ्यास था।

पाण्डेजी बातों ही के धनी नहीं थे। भावी समधी को दिया गया अपना आश्वासन उन्होंने समय से कुछ पहले ही पूरा कर दिया। दामोदर ने भी उन्हीं की

कृपा से अपनी खोयी नौकरी की कटी डोर फिर से थामकर सँभाल ली थी। प्रवीर दिल्ली में चार्ज लेकर घर आ गया था। विवाह में किसी प्रकार का आडम्बर नहीं होगा, यह प्रवीर की पहली शर्त थी। वह शर्त तो अम्मा को मान्य थी, पर ज़िद्दी पुत्र की दूसरी शर्त ने ही उनका सिर दर्द बढ़ा दिया था। एक पुरोहित को छोड़कर प्रवीर ने अन्य आत्मीय स्वजनों को निमन्त्रण-पत्र ऐसे छल-बल के चातुर्य से डाक में छोड़े थे कि हवाई जहाज़ से उड़कर आने पर भी शायद निमन्त्रित अतिथि नहीं पहुँच पाते। छोटे भाई के विवाह में आठ दिन के लिए आकर दो महीने बिता गये पहाड़ के अतिथियों के समागम की स्मृति प्रवीर भूला नहीं था। न जाने कितनी चाचियाँ, ताइयाँ और आधी दर्जन बुआओं ने आकर उसका जीना दूभर कर दिया था। जहाँ देखो, वहीं आधे दर्जन बच्चे कुलाटें खा रहे हैं; उसपर लॉन में सूखती पँचरंगी साड़ियों और बदरँगे पेटीकोटों की लम्बी क़तार। इस बार वह उस बेहूदगी की पुनरावृत्ति नहीं होने देगा। उसी की ज़िद से विवाह बिना किसी आडम्बर के नितान्त आवश्यक कर्मकाण्ड निभाकर, ऐसी सादगी से सम्पन्न हो गया था कि कोई द्वार पर खड़े होने पर भी शायद नहीं जान पाता कि अभी-अभी उस गृह में विवाह-जैसे शुभ कार्य का श्रीगणेश हुआ है। न उसने सेहरा बाँधा, न फूलमाला लटकायी। पिता, दोनों बहनोइयों और पुरोहित को कार में बिठा-कर स्वयं ड्राइव करता ऐसे पहुँच गया जैसे पाण्डेजी के यहाँ किसी जलपान के आयोजन के लिए निमन्त्रित अतिथियों को लेकर आया हो। पाण्डेजी की जनकपुरी में वर को ऐसे उपस्थित हो गये देखकर खलबली मच गयी थी, पर पाण्डेजी भी एक ही घाघ थे। पिछवाड़े के मार्ग से वे बड़े चातुर्य से सीमित बारात को अपनी बँगलिया में खींच ले गये। वहीं उन्होंने अपने सनकी जामाता के चरणों पर सिर टेक दिया, "बेटा, ऐसे वैरागी वेश में तुम्हें कैसे वहाँ ले जाकर खड़ा करूँगा? यहाँ का पूरा मन्त्रिमण्डल जुटा है। कुन्नी मेरी सबसे छोटी लड़की, वह भी क्या कहेगी? सब बहनों की शादी जिस धूम-धड़क्के से हुई, वह देख चुकी है। 'फिर तुम ऐसे बिना सेहरे-तिलक के खड़े हो जाओगे, तो मैं इष्ट-मित्रों को क्या मुँह दिखलाऊँगा?" फिर तो पाण्डेजी ने पन्द्रह मिनट ही में, उजड़ी बारात को सँवार लिया। सफ़ेद चूड़ीदार, रॉ सिल्क की शेरवानी और तिरछी टोपी में सँवरे अपने दूल्हे को देखकर कुन्नी मुग्ध हो गयी। निश्चय ही, वह अपनी अन्य सब बहनों में सबसे अधिक भाग्यवान् थी। अपने घर की सादगी की छूत, प्रवीर पाण्डेजी के घर तक नहीं पहुँचा पाया। कुन्नी, उनकी सबसे छोटी लाड़ली बेटी थी, उसके विवाह में उनके औदार्य को वह रोकता ही कैसे? एक प्रकार से अपने को लुटाकर ही पाण्डेजी ने पुत्री को विदा किया था। कुछ सामान तो उन्होंने पैक कर सीधा दिल्ली ही भिजवा दिया था।

"हमने सोचा," वे विदा होते समधी के सम्मुख हाथ बाँधकर कहने लगे थे, "जब इन्हें दो दिन बाद दिल्ली जाना ही है, तो क्यों न फ़र्नीचर सीधा वहीं भेज दिया जाये? मेरे एक मित्र का ट्रक भी जा रहा है, अभी सब सामान बड़े आराम से

चला जायेगा।"

फिर जामाता को एकान्त में बुलाकर उन्होंने पाँच हज़ार का एक चेक काटकर थमा दिया।

"लो बेटा, यह तुम्हारा शगुन है।"

प्रवीर चौंककर दो क़दम पीछे हट गया था। "कितने शगुन दे रहे हैं आप—अब मैं कुछ नहीं लूँगा।"

"नहीं-नहीं, यह तुम्हें लेना ही होगा। यह तो मेरी कुन्नी का जेब-खर्च है, हनीमून का जेब-खर्च!" कुन्नी का नाम लेते ही उनकी आँखें भर आयी थीं। पर उस व्यक्ति का चेहरा ही ऐसा था कि आँखों में कैसे ही असली आँसू क्यों न चमकें, प्रवीर को यही लगता कि वे ग्लिसरीन के नक़ली आँसू ही हैं।

"देखिए, यह सब मैं नहीं लूँगा," प्रवीर ने जेब से चेक निकालकर उन्हें लौटा दिया। ये शायद फिर उसी तरह उसकी जेब में ठूँस देते पर प्रवीर का गम्भीर चेहरा देखकर सहम गये। इस दम्भी दामाद की गरदन शायद वे कभी अपने अन्य नम्र जामाताओं की गरदन की भाँति अपने वैभव के बोझ से नहीं दबा पायेंगे। इतना चतुर पाण्डेजी उसी क्षण समझ गये। चेक उन्होंने आँसू पोंछती कुन्नी को थमा दिया।

"तेरा दूल्हा तो कन्धे पर हाथ ही नहीं धरने देता, इसे तू रख ले। मेरी राय में तुम लोग श्रीनगर ही घूम आओ। कश्मीर में मेरे कुछ परिचित अफ़सर हैं, उन्हीं को लिख दूँगा। नैनीताल तो बड़ी कॉमन जगह हो गयी है। जिसे देखो वही नया ट्रांजिस्टर लटकाये हनीमूनर बना फिर रहा है। फिर हमारी आधी रिश्तेदारी वहीं है। तुम दोनों को सब बारी-बारी से खाने पर न्योतेंगे और पहाड़ी रसमात खिला-खिलाकर तुम्हारा सब हनीमून चौपट कर देंगे।" प्रवीर को यह सब अँगरेज़ियत पसन्द नहीं थी। छोटा भाई था शौक़ीन, विवाह हुआ तो नयी बहू को लेकर मसूरी, शिमला, नैनीताल न जाने कहाँ-कहाँ घुमा लाया था, पर प्रवीर की इच्छा न होने से क्या होता—कुन्नी के सलज्ज आग्रह को वह नहीं टाल सका था।

"क्या आप सचमुच कहीं नहीं चलेंगे? अच्छा बोर किया आपने।" उसका सुन्दर चेहरा लटक गया था।

"ज़रा सोचिए तो, डैडी को कैसा लगेगा? उन्होंने मि. कौल को लिखकर शायद कमरा भी बुक करवा लिया है। यह भी अच्छी रही! विवाह के पहले भी कलकत्ता और बाद भी वही कलकत्ता, इससे बिनब्याही ही भली थी। सब फ्रैण्ड्स पूछेंगी कि हनीमून के लिए कहाँ जा रही हो, तो क्या कहूँगी—बताइए तो ज़रा!"

दिन-रात प्रवीर को कुन्नी यही समझाती रही कि उसके समाज में विवाह के सात फेरों से भी अधिक महत्त्व हनीमून का है। जबतक नया जोड़ा हनीमून की हज्ज करके न लौटे हाज़ी नहीं कहला सकता। उसकी दलीलों से पराजित होकर प्रवीर को नयी पत्नी सहित कलकत्ता छोड़ना पड़ा। दस-पन्द्रह दिन घूमघाम कर दोनों लौटे,

तो जया, माया जा चुकी थीं। दामोदर को कठिनता से दुबारा मिली नौकरी और स्वयं अपने गलग्रह की मुक्ति के लिए जया को श्वसुरकुल के ग्राम-देवता की पूजा देनी थी। माया के देवर का विवाह था। उसके रुकने का प्रश्न ही नहीं उठता था। "अच्छा हुआ, तुम दोनों जल्दी लौट आये," अम्मा बेटे-बहू को समय से पूर्व ही लौटा देखकर प्रसन्न हो गयी थीं। "इत्ते बड़े घर में मैं फिर अकेली रह गयी हूँ। रहती तो हमेशा ही अकेली थी," अम्मा कुन्नी से कह रही थीं, " इसी बार जया इतने दिनों रह गयी और फिर कली और आदत बिगाड़ गयी।" कुन्नी सास के सिर में तेल ठोक रही थी। उसके इन्हीं गुणों पर अम्मा दो ही दिन में मुग्ध हो गयी थीं। इतने बड़े घर की बेटी थी, पर जहाँ अम्मा कुछ काम करने लगतीं, चट से उनके हाथ से काम छीनकर कुन्नी स्वयं करने लगती। उस दिन भी अम्मा कंघा लेकर चोटी करने बैठीं तो कुन्नी ने उनके हाथ से तेल की शीशी छीन ली। "एक दिन ऐसे ही चोटी करने बैठीं तो न जाने कहाँ से आँधी-सी आ गयी कली," अम्मा कहती जा रही थीं, "हमेशा आँधी-सी ही आती थी लड़की! बस, आयी और आते ही कंघा छीन लिया। कभी कहती, अम्मा आज तुम्हारा ऐसा जूड़ा बनाऊँगी, कभी कहती, वैसा। मरी, बच्चियों से भी छोटी बच्ची बन जाती थी कभी। डेढ़ सौ की साड़ी पहनकर एक दिन चौके के बिना बिछे फ़र्श पर फड़ाक से बैठ गयी। ग्यारह सौ तो तनख्वाह ही पाती थी सुना! पर सुभाव की ऐसी गऊ कि दफ़्तर से सीधे चौके में 'अम्मा, अम्मा' करती चली आयेगी और चट से कटोरदान से रोटी ही निकालकर खाने लगेगी। रात-आधी रात जब भी लौटेगी, बस 'अम्मा, अम्मा' करती, सारा घर गुलज़ार कर देगी। अब गयी तो भूलकर एक चिट्ठी भी नहीं डाली। न जाने कहाँ है लड़की!"

प्रवीर उठकर अपने कमरे में चला गया। विवाह के साथ ही प्रवीर के कमरे ने अपने चिरकुमार व्यक्तित्व की केंचुली उतार दी थी। टूटी झूला बन गयी आराम-कुरसी भी गोदाम में चली गयी थी और खिड़की पर लेस के परदे खिंच गये थे। छोटा-सा कमरा, दो पलंगों से भरकर रह गया था। कमरे में आकर प्रवीर पलंग पर लेट गया। सचमुच ही बेचारी लड़की न जाने कहाँ भटक रही होगी! वह जाने की ऐसी तिकतिक न लगाता, तो शायद वह इतनी जल्दी जाती भी नहीं।

कुन्नी सास के पास से उठकर पति के पास चली आयी। कुछ ही दिनों में वह उस अपरिचित व्यक्ति के पीछे-पीछे किस अदृश्य जादुई डोर से बँधी घूमने लगी थी, वह स्वयं ही नहीं समझ पा रही थी। एक पल भी वह उसे छोड़कर इधर-उधर जाता तो वह व्याकुल हो उठती। कई बार डैडी का फ़ोन आ चुका था। मुन्नी दी ने तो फ़ोन ही पर उसे खूब कोरी-कोरी बातें सुना दी थीं—"अच्छी ससुराल की माया उपजी है तुझे, हम पराये हो गये। कैसा पत्थर कलेजा है तेरा! डैडी, कुन्नी-कुन्नी कर पगला रहे हैं,

और तू ऐसी हनीमुनिया गयी कि झाँकने भी नहीं आयी !"

"बृहस्पति को पहाड़ में बिटिया विदा नहीं होती, कल जायेगी तो वहाँ से आ नहीं पायेगी, परसों शुक्र को चली जाना," कह अम्मा ने रोक लिया।

मायके तो वह अब कुछ दिन रहेगी ही, पर इतवार को प्रवीर दिल्ली चला जायेगा। पति का क्षणिक विछोह भी उसे बहुत अखर रहा था। डैडी के किसी मित्र के फ़्लैट में ही फ़िलहाल प्रवीर एक कमरा पा गया था। निजी आवास मिलने पर ही वह कुन्नी को अपने साथ ले जा सकता था। अपने निरंकुश जीवन के विपरीत, हनीमून की भागदौड़, दावतों, आत्मीय सम्बन्धियों की बधाइयों के एक-से पत्रों ने उसे उबा दिया था। जिस कुन्नी को उसने मायके में बहुत कम बोलते देखा था, वही अब कभी-कभी अपनी बकर-बकर से उसका दिमाग़ चाट जाती।

"क्यों जी, आपकी टेनेंट ने क्या सचमुच आपको इम्प्रेस नहीं किया ? आप तो कभी भी उसके लिए कुछ नहीं कहते, उधर अम्मा-माया को तो लगता है उसने जादुई डण्डी फिराकर मोह लिया था। अपनी शादी तक रोक क्यों नहीं लिया उसे ? मैं भी देख लेती—"

प्रवीर का माथा ठनका। कहीं उस उत्पाती लड़की ने इसे कुछ लिख-विख तो नहीं दिया। वह सब कुछ कर सकती थी।

"वैसे मैंने भी उसे दो बार देखा है।" वह पति के पास ही दोनों कुहनियाँ टेककर अधलेटी मुद्रा में सरक आयी।

"एक बार फ़ैशन-परेड में मुन्नी दी के लिए एक बातिक का स्टोल लेना था। सचमुच ही लड़की में कुछ सम्मोहिनी थी, सामान्य-से बातिक के सवा-दो गज़ के रेशमी टुकड़े को कन्धे पर डालकर ऐसे मुसकराती सामने से निकल गयी थी कि मुन्नी दी ने मुग्ध होकर सौ रुपये में वह धेले-भर का स्टोल खरीद लिया। दूसरी बार मिली थी एक सिनेमा-हाउस में। साथ में तीन-चार हिप्पी छोकरे और एक विदेशी छोकरी थी। डैडी भी हमारे साथ थे, जब मुन्नी दी ने डैडी से कहा कि वह मेरी ससुराल में रहती है, तो डैडी को विश्वास ही नहीं हुआ—कहने लगे, 'मैं मान ही नहीं सकता। कुन्नी की ससुराल के लोग हैं संस्कारी पण्डित, वहाँ भला यह धींगड़ी कैसे रह सकती है' ?"

क्या जान-बूझकर ही कुन्नी उसे छेड़ रही थी ? प्रवीर ने अपनी छाती के पास खिसक आये चेहरे को ध्यान से देखा, उन आँखों में न व्यंग्य था न ईर्ष्या। तब, क्या स्वयं प्रवीर के मन का चोर ही बार-बार कान खड़े कर रहा था ? फिर आज तो कृष्णकली की स्मृति को बार-बार कुरेदा जा रहा था। आज, न हो इसी से न चाहने पर भी वह शैतान चेहरा स्मृति-पटल पर उभर रहा था, पर इन तीन महीनों में आनन्द, आमोद-प्रमोद, उत्सव और घुमक्कड़ी के बीच किसने भला उसकी स्मृति को कुरेदा था ? फिर क्यों नयी पत्नी के मधुर बाहुपाश को चीर, वह अदृश्य प्रेत छाया उसकी छाती से लगकर, कुन्नी को नित्य दूर ठेल देती थी ?

बाँहों में कुन्नी को लिये ही वह, किसी की स्मृति में डूबकर रह जाता था ?

तेईस

क्यों बार-बार यह पंक्ति अबाध्य चित्त दोहराने लगता था—'तन्वंगी गजगामिनी, चपलदृक् संगीतशिल्पान्विता' ! ठीक ही कहा था उसने। चदरे की गाँठ में दूसरी गाँठ लग जाये तो चौंकना मत, मैंने मसान साधा है, मैं सब कुछ कर सकती हूँ। पार्श्व में सोयी कुन्नी का नींद से ढुलकता माथा उसके कन्धे से लग जाता, तो नारी देह के परिमल से उसके नथुने फड़कने लगते। प्रेतलोक में भटकती अतृप्त आत्मा-सी एक और भूली-बिसरी सुगन्ध उसके दूसरे कन्धे पर सिर रख देती। अन्धकार में ही उसका हाथ घुटनों पर टिके उस प्राणाधिक चेहरे पर बिखरे बालों को सहलाने शून्य में फैला का फैला ही रह जाता। "धन्य है हिन्दू जाति, जो मरे को भी पानी देती है, एक तू है जो ज़िन्दा—" वह हड़बड़ाकर उठ बैठता।

"ऐसे क्यों चौंककर बैठ जाते हो जी आधी रात को !" कभी कुन्नी झुँझलाकर टोक देती। "मुझे भी डरा दिया। नींद में चलने की आदत तो नहीं है ?"

प्रवीर चुपचाप लेट जाता। नींद में चलने की जिसे आदत थी, वह तो साँमना बुलिस्ट बनी बड़ी दूर चली गयी थी।

एक बार और उसे कुन्नी ने ऐसे ही फटकार दिया था। हनीमून के नये जोड़े को पाण्डेजी के मित्र मि. कौल ने अपनी कार थमा दी थी। प्रवीर स्वयं ड्राइव करता लौट रहा था। दिन-भर फूल-केसर की घाटियों में घूम कर। सुगन्ध से लिपटी कुन्नी पति के पार्श्व में बैठी मीठे स्वर में गुनगुना रही थी। सिर पर बँधा रेशमी स्कार्फ़ उतारकर उसने खिड़की खोल दी थी। पहाड़ी हवा का एक धृष्ट झोंका आकर उसके चेहरे पर बालों का गुच्छे का गुच्छा फैला गया था। जंगली घाटी के वनफूलों की सुगन्ध से मत्त बनी मयूरी, सहसा नवीन सहचर के अमानवीय गाम्भीर्य को चुनौती देने, बिजली की तड़प से मुड़, कील पर धरे दो चौड़े पंजों पर झुक गयी थी। हवा में उड़ती चंचल अलकावलि दोनों हाथों पर फैल गयी, क्षुधातुर तप्त अधरों के स्पर्श ने जैसे प्रवीर के हाथों पर दहकते अंकारे धर दिये। ऐसे ही एक बिखरे केशगुच्छ और हिमशीतल अधरपुट की स्मृति उसके दोनों हाथ कँपा गयी। पल-भर को उसे लगा कि वह सन्तुलन खो बैठा है। गाड़ी ऐसे दायें-बायें जाने लगी, जैसे किसी

अनाड़ी नौसिखिये चालक के हाथ में पड़ गयी हो। वह तो अच्छा था निर्जन सड़क थी, नहीं तो शायद दानव-से खड़े चिनार के वृक्षों से टकराकर चकनाचूर हो जाती। कुन्नी ने उसे बुरी तरह फटकार दिया था।

"क्या हो गया है आपको ? अभी गाड़ी टकरा दी थी, ठीक से चलाइए ना—"

प्रवीर बड़ी देर तक गुमसुम बना रह गया था। उसी की मधुर मुद्राओं को कुन्नी दुहरा कैसे लेती थी ? क्या वह किसी सतर्क पेशेवर गुप्तचर के छलबल से विवाह से पूर्व भी उसके पीछे अदृश्य छाया बनी घूमती रही थी ? कभी-कभी वह अपने चतुर प्रश्नों से किसी घाघ क्रिमिनल लॉइर की ही दक्षता दिखा, उसके चित्र को अपराधी बनाकर कटघरे में खड़ा कर देती और उसे लगता कि अपने लुभावने यौवन का उत्कोच देकर वह उसे देखते ही ऐप्रूवर बना लेगी। एक बार तो वह महामूर्खता कर ही बैठा था।

"क्यों जी—" आधी रात को वह उसके गले में अपनी सुडौल बाँहें डालकर लिपट गयी थी, "आप इतने दिनों तक क्या सचमुच ही कुंआरे रहे ? मैं मान ही नहीं सकती कि आप-जैसे सुदर्शन पुरुष को देश-विदेश की आधुनिकाओं ने ऐसे ही छोड़ दिया हो !"

शायद उस रात को वह दुस्साहसी दुरन्त किशोरी के अभिसार की बात उगल ही देता, पर उसी क्षण, उसी अदृश्य छाया ने लपककर उसका मुँह बन्द कर दिया था—मूर्ख कहीं के, ऐसी बातें सुनने पर क्या संसार की कोई भी पत्नी पति को क्षमा करेगी ? उसी दिन से प्रवीर सँभल गया था।

दिल्ली जाने से पहले, पाण्डेजी ने दामाद को एकान्त में बुलाकर कई छोटे-मोटे अनुभूत घरेलू नुस्खे थमा दिये थे। "कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि तुम्हें दिल्ली बुलाकर मैंने ठीक नहीं किया।" वे चिन्तित स्वर में कहने लगे, "देश की हालत तो देख ही रहे हो। कब किसको राजसिंहासन से नीचे घसीटकर हाथ में झाड़ू थमा दें, ठीक नहीं। प्रजातन्त्र अब शासक वर्ग के लिए सज़ातन्त्र होकर रह गया है। सोचा, चलने से पहले तुम्हें सावधान कर दूँ ! ज़माना अब ऐसा आ गया है कि आईन-क़ानून उठाकर ताक़ में धर ही राजदण्ड सँभालना होगा। तुम तो खुद ही समझदार हो, पर इतनी सीख हमारी भी गाँठ बाँध लो। विशुद्ध कर्मकाण्डी अफ़सरशाही का युग अब बीत गया है। अँगरेज़ों के शासन-काल में सिफ़ारिश की भी जाती थी तो उसमें भी एक शान रहती थी और अब ? उसी दिन मेरा एक पुराना दोस्त मिला, ऊँचे विभाग का ऊँची कुरसी पर बैठनेवाला बड़ा ऊँचा अफ़सर ! कह रहा था कि अब तो एक चपरासी की बदली के लिए भी मन्त्री गिड़गिड़ाने लगे हैं। जितने नीचे स्तर की बेहूदगी की जायेगी, उतना ही ऊँचा फल मिलेगा।"

प्रवीर को सिनेमा चलने के लिए कुन्नी परदे से झाँक-झाँककर तीन वार बुला गयी थी, पर पाण्डेजी रंग में आ गये थे।

"शालीन कपड़े पहन, आँखें झुकाकर चलनेवाले नम्र, राहगीर को अब कोई नहीं देखता, पर सड़क पर लेटकर नारे लगा, प्रधान मन्त्री की गाड़ी रोकनेवाला 'नंगा निर्लज्ज व्यक्ति पल भर में प्रधान मन्त्री से भी अधिक प्रसिद्धि पा लेता है। क्यों? इसी लिए कि अब इस निराले प्रजातन्त्र में न्युसैन्स वैल्यू बढ़ गयी है। मैं सोचता हूँ, तुम सब समझ गये होगे—"विश यू ए वेरी वेरी ब्राइट फ़्यूचर," उन्होंने हँसकर, जामाता के दोनों हाथ पकड़, झुक-झुककर ऐसे हिला दिये थे, जैसे कोई चतुर व्यवसायी अपने नये-नये नियुक्त हुए सेक्रेटरी का स्वागत कर रहा हो। उस दिन श्वसुर से ही नहीं, कुन्नी से भी प्रवीर को विदा लेकर अकेले ही लौटना पड़ा। एक दिन के लिए मायके गयी कुन्नी, दुर्भाग्यवश, पैर मुचकाकर वहीं रुक गयी थी। पति को स्टेशन तक पहुँचा कर, अश्रुसिक्त प्रथम विदा देने का उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया।

प्रवीर समय से कुछ पूर्व ही स्टेशन पहुँचकर पत्रिका लेने बुक स्टॉल पर खड़ा हो गया था, अचानक किसी ने पीठ पर हलकी दस्तक दी। वह चौंककर मुड़ा।

"बड़ी देर से तुम्हें शैडो कर रही थी।"

"कुछ-कुछ पहचानी पकड़ में आ रहे चेहरे को प्रवीर ने ग़ौर से देखा कौन थी वह उसे शैडो करनेवाली?

लिपस्टिक से रंगे ओठ के बीच दाँत में ठुकी सोने की कील ने स्मृतिद्वार का जंग लगा ताला सहसा खोल दिया। श्वसुर-गृह में पहली बार मिली, पाण्डेजी की गर्लफ्रेंड लौरीन, कली की लौरीन आण्टी। प्रवीर चौंका। यहाँ क्या करने आयी थी खूसट। कहीं पाण्डेजी ने ही उसे किसी स्मगल्ड पैकेट की दूती बनाकर तो नहीं भेजा था? "कुछ देर तो पाण्डे तुम्हारे साथ थे, डर रही थी कि गाड़ी छूटने तक ही तुम्हें 'सी ऑफ़' न करता रहे! पर उसका भी प्रबन्ध कर लिया था मैंने। तुम्हारे साथ चलने के लिए टिकट भी ले चुकी थी। वैसे 'इफ़ आई नो,' पाण्डे गाड़ी छूटने तक खड़ा रहे, ऐसा 'पेशेन्स' उस में नहीं है। लो—"कह, एक मोटा लिफ़ाफ़ा उसने प्रवीर का लटका हाथ एक प्रकार से खींचकर थमा दिया। आश्चर्य से प्रवीर गूँगा-सा बन गया, पर आँखों ही आँखों में उसने पूछ लिया "कैसा लिफ़ाफ़ा दे रही हैं यह? किसका है?" लेकिन वह रहस्यमय चेहरा क्या मदाम टुसौड्ज का बनाया मोम का चेहरा बन गया था? उस निर्जीव चेहरे की एक भी दुरूह रेखा प्रवीर के पल्ले नहीं पड़ी। उसे चिट्ठी थमाते ही वह तेज़ी से अपनी ऊँची एड़ियाँ खटकाती, स्टेशन के मुण्डमेले में ऐसी विलीन हो गयी, जैसे कोई व्यस्त डाकिया हो। पता पढ़कर पानेवाले को पत्र थमाना ही शायद उसका काम था, पत्र किसका है, कहाँ से आया है—यह सिरदर्द कहीं डाकिया मोल लेता है?

गाड़ी आने में देर थी। बुक स्टॉल के ऊँचे तखत पर टेक लगाकर उसने

...फ़ा खोल लिया। नाम तो उसी का था। सुन्दर गोल लिखावट के साथ ही परिचित मन्द सुगन्ध गले में बाँहें डालकर झूल गयी।

"के !"

"तुमने काबुल छोड़ दिया है ना, इसीसे लम्बा नाम अब मैंने छोटा बना लिया है।"

"लौरीन आण्टी के लिए मैंने कभी बहुत भारी गोल्ड-बार स्मगल किये हैं, मेरी इस हलकी चिट्ठी को वह निश्चय ही आसानी से स्मगल कर, तुम तक पहुँचा देंगी। घवड़ा रहे हो कि कहीं बीच में ही चिट्ठी पढ़ न डालें, तुम्हारे पाण्डेजी की मित्र हैं ना वह ! पर ऐसी नहीं हैं मेरी लौरीन आण्टी ! हर इतवार को गिरजा घर जाती हैं। उस दिन, शरीर और आत्मा दोनों को शुद्ध रखती हैं आण्टी ! कुछ बातों में पक्की क्रिश्चियन हैं वह, और सच्चा क्रिश्चियन कभी स्लाई नहीं होता।

"सोच रहे होंगे कि जा रही थी लंका और पहुँच गयी इलाहाबाद ! सीता को क्या स्वयं रावण कभी लौटा सकता है ? मुझे भी वही लौटा लाया, जिस ने रावण के दस मुण्ड चुटकियों में मसलकर रख दिये थे। अब मैं नास्तिक नहीं हूँ 'के' ! अम्मा के साथ मन्दिर भी जाती हूँ। एक महीने से अम्मा भी यहीं हैं। गयी थी यही सोचकर कि सब नाते-रिश्ते तोड़कर कभी वापस नहीं लौटूँगी, पर सिर मुड़ाते ही ओले पड़ गये। ट्रेन में मिल गयीं तानी मौसी और उनके ऐसे सिद्ध स्वामी, जिन्हें देखकर शायद तुम भी चलती ट्रेन से कूद पड़ते या क्या पता शायद वे ही तुम्हें देखकर कूद जाते ! पता नहीं क्यों, उनकी बातों में मुझे तुम्हारे गृह-कलंक की दुर्गन्ध आयी। चट-पट एक अनजान स्टेशन पर उतर गयी। सोचा था, दूसरी गाड़ी से चली जाऊँगी। किया भी यही, पर एक ही मारात्मक भूल कर बैठी। जिस गाड़ी में चढ़कर बैठ गयी, उसके कलमुँहे इंजन का मुँह किधर है, यह नहीं देखा, बड़ी देर बाद समझ में आया कि जिन स्टेशनों की सीढ़ियाँ चढ़ती, कुछ घण्टे पहले गयी थी, उन्हीं सीढ़ियों से एक बार फिर नीचे उतर रही हूँ। तब क्या विधाता मुझे जान-बूझकर कलकत्ता खींच रहा था ? हड़बड़ाकर चन्द्रनगर में उतर गयी। जब लौरीन आण्टी की नौकरी में थी, तब यही मेरा महत्त्वपूर्ण हेडक्वार्टर था। लौरीन आण्टीका भाई सिम्पसन वहीं रेल विभाग में डीलक्स ड्राइवर था। वहाँ पहुँची तो स्नेही दम्पति ने मुझे बड़े प्यार से रोक लिया। कभी उनके आतिथ्य का मैंने एक-एक भारी गोल्ड बार देकर मूल्य चुकाया था, इस बार खोखली हूँ, यह शायद उन्होंने भी समझ लिया। इसी से आतिथ्य की पकड़ कुछ-कुछ ढीली पड़ने लगी। तीसरे ही दिन मुझे बुखार आ गया, फिर सर्वांग में असह्य पीड़ा। मिसेज़ सिम्पसन को भय था मुझे कहीं चेचक न हो। उनके पास-पड़ोस में महामारी मत्त नर्तन कर रही थी। पर मेरी महामारी उससे कहीं अधिक भीषण

निकली। मुझे न जाने किस इंट्यूशन ने चौकन्नी कर दिया। यह पीड़ा और ऐसा मदहोश बनानेवाला विषम ज्वर, साधारण नहीं हो सकता। लगता था, एक बार फिर तुम्हारी बाँहों में जबरन सिमट गयी हूँ और पूरी देह अंगारे-सी दहकने लगी है। तुम्हें फिर एक बार देखना चाहती हूँ। जानते हो क्यों? इस बार मैं ससुराल जा रही हूँ। अब तुम्हारी थैली के मेवे छीनकर नहीं खाऊँगी। क्या एक बार आ पाओगे? मूर्ख डॉक्टर सोचते हैं, मुझे कुछ पता ही नहीं है, पर बम्बई के टाटा कैन्सर अस्पताल में लोग हनीमून मनाने नहीं जाते, इतना मैं भी जानती हूँ। कुछ ही महीनों में, मुरब्बे के लिए गोदे गये आँवले-सी ही गोद दी गयी हूँ। कभी मेरी हड्डियों से मज्जा कुरेदकर और कभी पानी बन रहे मेरे निर्दोष रक्त को सिरिंज से खींच डॉक्टर जब देखने लगते हैं तो मुझे हँसी आती है। ठीक जैसे कोई चतुर ग्राहक बेईमान ग्वाले के दूध की जाँच कर रहा हो कि कितना पानी मिलाया गया है। मेरे ग्वाले ने, मेरे जन्म से पहले ही, दूध में पानी मिला दिया था, यह कोई नहीं जानता। पर क्या शानदार बीमारी है। मिनटों में बीमार को शहीद बनाकर रख देती है। जहाँ से निकलती हूँ, वहीं लोगों की आँखों में 'मिल्क ऑफ़ ह्यूमन काइंडनेस' छलकने लगता है, जैसे अर्थी में बँधी कोई जवान लाश निकल रही हो!

"मैं जानती हूँ तुम आओगे, क्योंकि बीच-बीच में मुझे लगता है, मैं एक बार फिर अपने आरण्यक में पहुँच गयी हूँ, मेरा सिर तुम्हारे घुटने पर टिका है और मेरे सिर पर धरा तुम्हारा हाथ काँपने लगा है।

"प्रयाग स्टेशन पर उतरना, जंकशन पर नहीं, और फिर किसी भी रिक्शा-वाले से कहना तुम्हें ईसाई टोले की मोटी मेम के यहाँ जाना है। तुम्हें पहुँचा देगा।"

लम्बी चिट्ठी के अन्त में किसी का नाम नहीं था।

प्रवीर की गाड़ी आकर कब की जा भी चुकी थी। कुछ देर तक वह चिट्ठी हाथ में लिये बुत-सा खड़ा ही रहा, फिर दृढ़ क़दमों से टिकट घर की ओर बढ़ गया।

स्ट्रैची रोड के उस बँगले तक पहुँचने में, उसे जैसे पूरा बरस लग गया था। जिस स्टेशन पर गाड़ी देर तक रुकती, वह अधैर्य से झुँझला उठता। धीरे-धीरे सामान उतारते अनजान यात्रियों पर उसे ऐसा क्रोध आता, कि धक्का मारकर उन्हें उतार गाड़ी को तेज़ी से भगा ले चले। एक ही सज्जा के, एक क़तार में गमले-से सजे बँगलों में, आण्टी का बँगला ढूँढ़ने में उसे कोई दिक़्क़त नहीं हुई। फूलदार ऐप्रन का हौदा लगाये, छोटी-मोटी मस्त हस्तिनी-सी आण्टी, बरामदे में एक लम्बे बाँस पर झाड़ू बाँध, मकड़ी के जाले गिरा रही थीं। उस विराट् शरीर के क्षेत्रफल की गणना से ही प्रवीर सहम गया। लगता था, बेडौल शरीर का क्षितिज, दृष्टि की पकड़ में आ ही नहीं सकता। अनजान होने पर भी, वह बाँस नीचे पटक, नाक पर बँधा रूमाल का

खोल, ठुमककर हँसती प्रवीर का स्वागत करने ऐसे बढ़ आयीं, जैसे वर्षों से उसे जानती हों।

प्रवीर का माथा एक बार फिर ठनका। कहीं उसे बुद्धू तो नहीं बना गयी थी कली! मेज़बान के इस खिले हँसमुख चेहरे को देखकर तो नहीं लग रहा था कि भीतर कोई मृत्युशय्या पर पड़ी है।

"आइए-आइए, अभी-अभी फल का रस पिलाकर सुला आयी हूँ, वैसे कैप्सूल का असर मुश्किल से पचीस मिनट रहता है, वहीं चलेंगे क्या ?"

प्रवीर उसका स्वाभाविक स्वागत देखकर दंग रह गया। यह भी नहीं पूछा कि कौन हैं, कहाँ से आया है। रिक्शा से ऐसे सामान उतरवा लिया, जैसे वह कोई बहुप्रतीक्षित लुभावना पाहुना हो! दूसरे ही क्षण वह संकोच से गड़ गया। हो सकता है, कली उसे सब-कुछ बता चुकी हो। "वहीं चलेंगे ना ?" फिर बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये, वह साफ़-सुथरे छोटे कमरों से पथ दिखाती, उसे भीतर ले चली। स्थूल शरीर के अनुपात में, चीनी सुन्दरियों के से बाँधकर बरबस छोटे बनाये गये उसके छोटे-छोटे पैर, लाल मखमली बेडस्लिपरों में बिल्ली के-से पंजे धर रहे थे। प्रवीर का कलेजा धड़ककर मुँह को आ गया। चेहरा पल-भर को लड़कियों की-सी व्रीड़ा से रँगकर ऐसे लाल पड़ गया, जैसे उस मोटी मेम ने उसकी एक-एक धड़कन सुन ली हो। पलंग पर सो रही कली के सिरहाने धरी कुरसी पर प्रवीर को बैठने के लिए हाथ का मूक सन्देश देकर वह फुसफुसायी—"यहाँ बैठिए, अभी जग जायेगी। मैं चाय ले आऊँ!" फिर पल-भर को वह टेढ़ी गरदन कर, दोनों को ऐसी मुग्ध दृष्टि से देखने लगी जैसे किशोरावस्था में पढ़े गये अपने किसी प्रिय रोमाण्टिक उपन्यास का सबसे रोचक परिच्छेद दुबारा पढ़ रही हो। प्रवीर कुछ पूछता, इससे पहले ही वह चाय लेने चली गयी। उसे कली के साथ एकान्त में वह क्या जान-बूझकर ही छोड़ गयी थी ? तकिये पर पड़े कमनीय सुप्त चेहरे को प्रवीर ने ध्यान से देखा। क्या सचमुच ही ऐसा घातक रोग-व्याल उस चन्दन-विटप से लिपट गया होगा ?

गुलाबी नाइटी की लेस ने, देवदूत-से निष्पाप चेहरे को पँखुड़ियों-सा घेर लिया था। विषम ज्वर की व्यथा ने ही उसे शायद, घिसकर रख दिया था। लग रहा था कोई दस-बारह साल की अबोध बालिका थककर सो रही है।

नन्हें वक्षस्थल पर धरी दो दुर्बल कलाइयाँ उठ-उठकर, प्रकम्पित श्वास-निश्वास के साथ-साथ गिर रही थीं।

प्रवीर, कुछ ही महीनों पूर्व पवित्र अग्नि को साक्षी बनाकर लिये गये, सातों फेरों की शपथ भूलकर रह गया। नदी की कच्ची कगार पर खड़ा विवेक-विटप भर-भराकर नीचे गिर पड़ा। क्या पता, इस अमूल्य एकान्त का अचानक ही अवसान हो जाये। वह झुका और कानों के पास मुँह सटाकर पागल की भाँति पुकारने लगा—"कली-कली!" पर वह नहीं जगी।

किसी शक्तिशाली कैप्सूल प्रदत्त अस्वाभाविक प्रगाढ़ निद्रा में डूबी क्यूपिड अधर, मन्द स्मित में खिंच गये। क्या कोई मीठा सपना देख रही थी वह?

कभी उसके क्षुधातुर अधर, ऐसे ही प्रवीर के रूखे कर्णमूल का स्पर्श कर, प्यासे ही लौट गये थे। आज शायद इसी से वह उसे याचक बनाकर, अपना प्रतिशोध ले रही थी। इस बार, प्रवीर का चेहरा ठण्डे रोगजीर्ण चेहरे से सट गया। कली हिली, चौंककर छाती पर निश्चेष्ट पड़ी दुबली कलाइयों ने प्राणाधिक चेहरे को धड़कती कनपटी के पास खींच लिया। "मैं जानती थी, तुम आज आओगे।" फिर वह, तकिया खिसकाकर बैठने ही लगी थी कि समझदार आण्टी खाँसती-खँखारती दूर से ही अपनी फ़ायरब्रिगेड-उपस्थिति का घण्टा एलार्म टनटनाती चली आयी थीं।

प्रवीर सँभलकर विलग हो गया, पर कली ने हाथ नहीं छोड़ा, वह अपनी दुबली पकड़ में उस पुष्ट कलाई को ऐसे कसकर साध रही थी जैसे छूटते ही वह हाथ से छिटक जायेगी।

आण्टी ने हाथ की ट्रे छोटी मेज़ पर धर, प्रवीर के सामने खिसका दी। उनके लज्जा से लाल पड़ गये चेहरे को कली ने देख लिया।

"तुम तो ऐसे 'ब्लश' कर रही हो आण्टी, जैसे यह मेरा नहीं, तुम्हारा प्रेमी हो।"

तकिये के सहारे बैठकर वह हँसती आण्टी को छेड़ने लगी।

प्रवीर संकोच से गड़ गया। क्या ऐसे विषधर रोग-भुजंग की जकड़ में भी वह हास-परिहास नहीं छोड़ सकी थी!

"आण्टी के बनाये मोरेंग नहीं लोगे क्या? धरते ही मुँह में ऐसे गल जाते हैं, जैसे किसी किशोरी के चुम्बन!"

हँसकर उसने एक मोरेंग लपककर मुख में धर लिया।

आण्टी रुआँसी हो गयीं।

"देख रहे हो सनी, दिन-रात ऐसा ही बचपना कर मुझे रुलाती रहती है यह लड़की! मीठा इसे एकदम मना है, फिर आज सुबह से यह इसका तीसरा मोरेंग है। मैं तो बनाती भी नहीं, पर...." आण्टी रुक गयीं, कुछ कह नहीं सकीं, गला रुँधकर रह गया।

"कहो-कहो, कह डालो ना," कली की बड़ी आँखें क्या उस घातक रोग ने ही कानों तक खींचकर और बड़ी कर दी थीं? काली भँवर-पुतलियों में बचकानी चुहल की रंग-बिरंगी तरंगें उठ-उठकर गिरने लगीं।

"मैंने ही ज़िद की थी आज," वह अँगुलियाँ चाटती दूसरा मोरेंग उठाने लपकी, पर आण्टी ने चट से प्लेट उठा ली, "आण्टी, बनाओ मोरेंग, नहीं बनाये और इसी बीच मैं कहीं चल दी तो अपनी क़ब्र में फिर चैन से नहीं सो पाओगी। बस, यही बन्दर-घुड़की काम कर गयी। पर वाह, क्या बढ़िया 'बेक' किये हैं! उस लोक में कभी

...प्रवत हुई और इस लोक के खानसामे के 'क्रेडेनशियल्स' माँगे गये, तो तुम्हें 'रिकमेण्ड' कर जल्दी वहाँ बुलवा लूँगी ।"

क्षण-भर पूर्व आण्टी के बचकाने चेहरे पर उभर आयी विषाद की बदली छँट गयी । यह हँसने-हँसानेवाली लड़की क्या उन्हें कभी रोने देती थी ?

"सुन रहे हो इसकी बातें ? दूसरा प्याला दूँ सनी ?" आण्टी, मोटी कमर पर शिथिल ऐप्रन का तम्बू तानती, फिर चाय बनाने झुक गयीं ।

"ऐ आण्टी, अम्मा फाफामऊ से नहीं लौटीं क्या ?"

"नहीं, आती ही होंगी ।"

"अच्छा, तब सुनो, जबतक अम्मा नहीं आतीं, तुम भी कहीं घूम आओ ना !" वह सर्र से फिर तकिये पर सरक गयी ।

उस दुस्साहसी लड़की की स्पष्टवादिता एक बार फिर प्रवीर को रसातल में खींच ले गयी । क्या सोचती होंगी यह अपरिचिता महिला ! "आप बैठिए ना, मैं हाथ-मुँह धो आऊँ ।"

प्रवीर उस अपदस्थ हो गयी सरला महिला के प्रस्थान-प्रस्ताव को टालने स्वयं उठ गया । "बैठो, सिली," कली ने हाथ पकड़कर इस बार उसे फिर कुरसी पर बिठा दिया ।

"हाथ-मुँह फिर भी धोया जा सकता है मूर्ख !" वह फुसफुसाकर कहने लगी, "एक बार अम्मा आ गयीं तो समझ लो जेलर आ गया, यह एकान्त फिर नहीं जुटेगा । जाओ तो आण्टी, 'बी ए ब्रिक' कुरसी डालकर बरामदे में अपनी क्रॉसस्टिच बनाती रहो । अम्मा के आते ही खाँसी का छोटा-सा सिग्नल दे देना, बस ।"

हँसती आण्टी हाथ में ट्रे लिये एक बार फिर नवोढ़ा षोडशी-सी लजाती लाल पड़ती बाहर चली गयीं ।

"देखा ?" वह हँसकर बाँह पकड़, पालतू बिल्ली-सी प्रवीर के कन्धे से गाल घिसती सट गयी ।

"चतुर बन्दी ऐसे ही द्वार पर पहरा देते सिपाही को अपने षड्यन्त्र में मिलाता है ।" कन्धे तक झूलते केश-गुच्छ अब बीमारी में और लम्बे होकर नीचे तक लटक आये थे ।

"पहले एक बात बता दूँ, आण्टी सब जानती हैं । मैंने ही उन्हें सब-कुछ बतला दिया था, पर अम्मा अभी कुछ नहीं जानतीं । तुम्हें देखते ही सब जान लेंगी ।

"अम्मा और आण्टी में यही अन्तर है । आण्टी को मैं न बतलाती तो उनकी बच्ची-सी निष्कपट आँख तुम्हें मेरी बाँहों में देखकर भी शायद यही सोचतीं कि मेरा बिछुड़ा भाई-भतीजा है, पर अम्मा सब-कुछ जान लेती हैं ।"

वह कुछ देर तक चुप रही जैसे थक गयी हो, फिर रुक-रुक कहने लगी, "मैंने जान-बूझकर ही अम्मा को अपनी बीमारी की खबर दी ! सोचा, जब जाना ही है तो

क्यों न सबसे हाथ मिलाकर ही जाऊँ।"

हँसकर कली ने प्रवीर का हाथ गालों से सटा लिया। क्या निमग्न कपो[illegible] के गहरे गढ़े और भी गहरे हो गये थे ?

कैसा आश्चर्य था कि ऐसे घातक रोग ने काया को घिसकर, आकर्षक चेहरे को कुछ ही महीनों में और भी आकर्षक बना दिया था !

"अम्मा से मैंने क्यों नहीं कहा जानते हो ? मुझे लगा उनसे कहूँगी, तो मन ही मन कहेंगी—देखा ना, हार गयी छोकरी ! मेरी खिल्ली उड़ाती थी, आज खुद ही ठोकर खा गयी ! पत्नी के लिए, मान-प्रतिष्ठा के लिए, उनका प्रेमी उन्हें अँगूठा दिखा गया और मेरा प्रेमी ?"

वह फिर आँखें मूँदकर बाँह से सट गयी।

चौबीस

बदली से घिरी म्लान सन्ध्या, बरामदे में उतरती, बड़ी धृष्टता से खुली खिड़की से कूद-कर कमरे में रेंगने लगी थी। न जाने कबतक दोनों भयावह परिस्थिति से सहमे एक-दूसरे से सटे चेतना ही खो बैठे। आण्टी ने सहमकर खाँसा और कली ने बेड स्विच दबा दिया। धुँधली रोशनी में वह आँखें बन्द कर चुपचाप लेट गयी।

हाथ में पूजा की छोटी टोकरी लटकाये आण्टी के साथ-साथ अम्मा कली के सिरहाने आकर खड़ी हो गयीं और प्रवीर कुरसी से उठ गया।

"कली के मित्र हैं," आण्टी उसका परिचय देने लगीं।

"इन्हीं के परिवार के साथ कली कलकत्ते में रहती थी। अभी-अभी शादी हुई है।" आण्टी ने सरल चातुर्य से, उसके सद्यःविवाहित होने का प्रसंग भी जोड़ दिया, जिससे शक्की पन्ना और कुछ न समझ बैठे।

"उठ क्यों गये ? बैठिए ना।" पन्ना ने अपने उसी मीठे स्वर में कहा, जो भुलाये गये पेशे के भूल जाने पर भी कण्ठ में रिस गया था। उस कण्ठ की सधी मीठी 'बैठिए' सुनकर मज़ाल थी कि कोई न बैठे !

प्रवीर बैठ गया।

श्वेत चिकन की साड़ी, कुहनियों तक सुडौल बाहुओं में चुस्त कसा श्वेत ब्लाउज़ गले में तुलसी की कण्ठी और ललाट पर चन्दन की बिन्दी। "कब आये आप ?" पन्ना ने पूछा।

"अभी-अभी तो आये," आण्टी फिर चहकने लगीं।

उस संकोची गम्भीर युवक पर आण्टी को तरस आ रहा था। इसी से उसके हर प्रश्न के तलवार के वार को वह ढाल बनी स्वयं बढ़कर झेल रही थीं।

"पत्नी को क्यों नहीं ले आये ?" फिर वही मोहक मीठी हँसी।

"कली का भी जी बहला रहता," पन्ना ने बड़े प्यार से सोयी कली के माथे पर हाथ फेरकर कहा।

"लायेंगे-लायेंगे," आण्टी फिर उसी उत्साह से कहने लगीं, "लायेंगे क्यों नहीं—कली बेटी, तुम्हारी दूसरी कैप्सूल का टाइम हो गया, ले आऊँ ?" किसी चतुर फ़ैन्सिग के पैंतरेबाज़ की भाँति उन्होंने दवा का प्रसंग छेड़ पैंतरा बदल लिया। "कैसा जी है बेटी ?" पन्ना की गोरी सुडौल कलाई मुँदी पलकों को फिर सहलाने लगी।

कली ने ऐसे चौंककर आँखें खोलीं, जैसे अबतक सचमुच ही उसे झपकी आ गयी थी। आण्टी ने घड़ी देखकर उसे कैप्सूल खिलायी और कुरसी खींचकर बैठ गयीं।

"अम्मा," कली की डूबी आवाज़ किसी दूर की मस्जिद के गुम्बद में गूँज रही अजान-सी गूँज गयी।

"क्या है बेटी ?"

"अम्मा, मेरे ये मित्र गाने के बेहद शौक़ीन हैं।" प्रवीर ने सहमकर पलँग पर पड़ी परिहासप्रिया की ओर देखा, पता नहीं अब क्या कह बैठेगी ? बात-बात में ही हँसी से थिरकनेवाले ओठों पर स्मित का इन्द्रधनु खेलने लगा था।

"खुद कहने में शरमा रहे हैं, पर तुम्हारा लांग प्लेयिंग रिकॉर्ड भी है इनके पास। इन्हें आज वही गाना सुना दो अम्मा !"

"कौन-सा री ?" प्रिय प्रसंग के उल्लेख से पन्ना अब भी खिल उठती थी। संगीत-चर्चा ही तो उसकी एकमात्र दुर्बलता रह गयी थी।

पन्ना की गोल-गोल कलाई में अपनी दुर्बल कलाई का गजरा-सा लपेटती कली स्वयं गुनगुनाने लगी। प्रौढ़ा स्वरलय-नटिनी ने धीमी गुनगुनाहट को पहचाना और पल-भर को चेहरा फक पड़ गया।

"बेवक़ूफ़ कहीं की," दबे स्वरमें वह बच्ची-सी मचल रही कली को फटकारने लगी, "वह क्या कोई गाना है !"

"वाह, आप क्या सोचती हैं कि ऐसी बीमारी का फाँसी-फन्दा गले में पड़ गया है, तो मैं जाने तक रामधुन छोड़ और कुछ सुन ही नहीं सकती ? मैं यही गाना सुनकर रहूँगी। आपने नहीं सुनाया तो न फिर तीसरी कैप्सूल खाऊँगी, न बिस्तर पर लेटूँगी। खुद ड्राइव कर पूरा इलाहाबाद घूम आऊँगी।"

यह कली की सबसे बड़ी धमकी थी। डॉक्टरों ने कहा था कि बाहर से भली-

चंगी स्वस्थ दिखनेवाली उस लड़की की पीठ में कभी भी, शरीर में घात ल[illegible] छिपा रोग-शत्रु घातक छुरा भोंक सकता था। एक बार कहीं सामान्य चोट भी [illegible] तो अनवरत बहते रक्त-प्रवाह को स्वयं ब्रह्मा भी नहीं रोक पायेंगे। ज़िद्दी कली [illegible] असाध्य रोग की पीड़ा ने और भी ज़िद्दी बना दिया था। पन्ना सिर झुकाकर गाने लगी—

जोबनवा के सब रस
ले गइलो भँवरा
गूँजी रे गूँजी

वर्षों के रियाज़ में सधा, मिश्री घुला कण्ठ-स्वर, एक ही पंक्ति को बार-बार दुहराने लगा। अपने स्वाभाविक स्वर को शायद कुछ दबाकर ही पन्ना गा रही थी, पर क्या आसन्नप्राय मृत्यु की सारंगी ही उसे जवाबी संगत दे रही थी ?

प्रवीर को लगा बिस्तर पर पड़ी कली उस मधुर गूँज के साथ-साथ कुम्हलाती जा रही है। उसके जी में आया, वह सबके सामने निर्लज्ज बन उसे गोदी में उठाकर कहीं भाग जाये !

"ले, अब तो खायेगी कैप्सूल ? पन्ना ने बड़े दुलार से आण्टी के हाथ से कैप्सूल लेकर उसे खिला दिया और उठ गयी।

"चलूँ, आरती कर आऊँ, आप भी तो थक गये होंगे—" अपनी मधुर मोहक मुसकान के साथ वह प्रवीर की ओर मुड़कर ठिठक गयीं। "मैंने इनके लिए कमरा ठीक कर दिया है," आण्टी बड़े उत्साह से कहने लगीं—"बॉबी का कमरा खाली पड़ा है, खाना खाकर आराम से सो रहिएगा।"

"अम्मा चली गयी हैं आण्टी ! अब तुम जाकर खाना लगा दो।"

कली एक बार फिर उचककर बैठ गयी। उत्तेजना से उसकी दोनों आँखें चमकने लगी थीं—"जानते हो आण्टी क्या कहती हैं ? कहती हैं—अम्मा एकदम पुरानी फ़िल्मों की ऐक्ट्रेस लगती हैं। और जिस दिन पहली बार अम्मा को देखा तो बोलीं—हूबहू अपनी अम्मा का ठप्पा है कली !"

फिर अपनी एक आँख दुष्टता से मींचकर, कली ने आण्टी का हाथ पकड़कर बड़े लाड़ से हिला दिया—"यू ईडियट" कहती वह एक बार फिर तकिये पर सरक गयी। लग रहा था, न उसे बैठकर चैन आ रहा है, न लेटकर। "तब मैं क्या जानती थी सनी ?" आण्टी रुआँसी हो गयीं।

"अच्छा-अच्छा, अब सुनो आण्टी, खाना खूब बढ़िया बनवाना, समझीं ? कल तक ये पाण्डेजी के दामाद थे, आज से तुम्हारे दामाद हैं।"

"ओ माई गॉड !" आण्टी ने पूरा ऐप्रन मुँह में ठूँस लिया। चार-पाँच ठुड्डियों के शिलाखण्डों से झरझराती हँसी की आनन्द-निर्झरिणी विराट् वक्षस्थल के उत्तुंग पर्वतद्वय भिगोती, विशाल उदर-उदधि को प्रकम्पित कर उठी।

उस संकेदिन-भर में किया गया कली का एक-आध ऐसा निर्लज्ज मज़ाक़ आण्टी की ...न्दर उदासी को दूर भगा देता था।

आण्टी चली गयीं तो दोनों एक बार फिर एकान्त के धुँधलके में डूब गये।

"तुम सोच रहे होगे कि मैं कितनी बेहया हूँ।" क्षण-क्षण बदलते नित्य नवीन रूप के साथ कण्ठ का बहुरूपिया चोला भी क्या स्वयं ही बदल जाता था ? कभी आनन्दी हँसी का उज्ज्वल तारसप्तक प्रवीर को चौंका देता और कभी सिसकियों में डूबी आवाज़ उसका कलेजा कचोट उठती। "बहुत पहले, विवियन के डैडी हमारी ज़िद से ऊबकर हमें जेल दिखाने ले गये थे। खड़े होकर, चक्की के बड़े-बड़े पाट चलाते मुछन्दर क़ैदी, निवाड़ बिनते, दरी बिनते ऐसे छोकरे क़ैदी, जिनकी शायद मूँछें भी नहीं निकली थीं, फिर फटी-फटी आँखों और सपाट चेहरेवाली औरतें जिनमें से एक नाउन थी, दूसरी मालिन। दोनों ने अपने-अपने सुहाग को अपने हाथों से फूँक दिया था। पतिघाती उन मर्दानी औरतों को देखकर सहमी विवियन बाहर भाग गयी थी।

"डैडी, आपने हमें फाँसी की सज़ावाले क़ैदी नहीं दिखाये, मैंने कहा तो डैडी ने डपट दिया था—नहीं, वहाँ तुम लोग नहीं जा सकतीं—अश्लील गालियाँ बकते हैं अभागे—"

"पर मैं जान-बूझकर ही अपनी ज़िद से उस दालान में पहुँच गयी, जहाँ चिड़ियाघर के सींकचों में बन्द वे भूखे शेर चक्कर लगा रहे थे। मुझे देखते ही उनके अश्लील ठहाकों की पिचकारियाँ छूटने लगीं। जेलर को देखकर भी वे अपने को नहीं रोक पाये। मुझे खींचकर विवियन के डैडी बाहर चले आये। "मौत की सज़ा मिली है, इसी से ये जंगली ढोर बेहया हो गये हैं" उन्होंने कहा था।

"मुझे भी मौत की उसी सज़ा ने बेहया बना दिया है।" कली ने हँसकर प्रवीर का हाथ दबा दिया।

"तुम जल्दी ही चले जाओगे क्या ?"

"जाना तो मुझे आज ही था, अब कहीं से ट्रंक करना होगा। कल शाम को चलकर अब परसों ही पहुँचूंगा।"

पल-भर को, कली का क्लान्त चेहरा फर के तकिये की गहराई में कछुए के सिर-सा दुबक गया। आण्टी के विराट् शरीर को अपनी चुहल के भूकम्पी धक्के से पत्ते-सा हिलानेवाली, गम्भीर माँ को अपनी बचकानी ज़िद से पराजित करनेवाली कली, जैसे चुक गयी थी।

शायद वह जान गयी थी कि अपनी दुर्बल बाँहें फैलाकर वह विवश जानेवाले को नहीं रोक पायेगी।

"मैं तुम्हें देखने फिर आऊँगा कली" प्रवीर ने उसके नुकीले कन्धे प[र] [हा]थ दिया—

"अभी पहला चार्ज है !" वह अपनी विवशता की क़ैफ़ियत देने लगा।

वह चुपचाप पड़ी रही। उसने एक बार भी नहीं पूछा कि वह कब आयेगा। शून्य में फैली दो दुर्बल बाँहों के आह्वान से क्या दो स्वस्थ पुष्ट फैली बाँहों ने उसे सहसा चुम्बक-सा अपनी ओर खींच लिया था ?

अम्मा आरती कर प्रसाद देने आयीं तो देखा प्रवीर बुत-सा कुरसी पर ही बैठा था। "अरे, आप तब से ऐसे ही बैठे हैं ? खाना तैयार है, बस लगाने जा ही रही हूँ—आप गोश्त तो खाते हैं ना ?"

कली फिर चहकने लगी, "अम्मा, इन्हें कल जाना है, नहीं तो आप से कहती इन्हें अपने हाथ का बना खड़े मसाले का गोश्त खिला दें—"

"कोई बात नहीं बेटी, फिर जब आयेंगे तू मुझे लिख देना। मैं वहाँ से आकर, इन्हें अपने हाथ से गोश्त बनाकर खिला दूँगी।"

कैसी स्निग्ध रानियोंवाली हँसी थी और आँखों से टपकता कैसा अपूर्व तेज ! "तुम्हें लिखनेवाली तब तक रहे, तब ना !" आनन्दी आँखों से, बड़ी देर से लुप्त हो गयी हँसी एक बार फिर लौट आयी।

"चुप कर, दिन-भर बकती रहती है, न रहें तेरे दुश्मन् !"

पन्ना खाना लगाने चली गयी तो दप से हँसी का दिया फिर से बुझ गया।

कल वह चला जायेगा।

"मैं तुम्हें देखने जल्दी ही आऊँगा कली और बराबर आता रहूँगा"—प्रवीर ने कली के बिखरे बालों को सहलाया।

"मत आना, मुझे तुम्हारी मिस्ट्रेस नहीं बनना है," अपनी घुटन उसने कण्ठ ही में घुटक ली।

विद्रोहिणी का अटपटा आदेश प्रवीर नहीं सुन पाया।

"क्या कह रही हो कली," उसने बड़े लाड़ से पूछा और झुक गया। "कुछ नहीं," कली ने दीवार की ओर मुँह फेर लिया।

रात का खाना उस दिन मेज़ पर न लगकर कली के कमरे में ही लगा। आण्टी ने अपना वह डिनर सेट निकाला, जो उन्हें उनके पहले प्रेमी ने उनकी सत्रहवीं वर्षगाँठ पर उपहार में दिया था। कली, जान-बूझकर ही उस ऐतिहासिक डिनर सेट की कहानी दुहराने लगी थी। "आण्टी के सब प्रेमियों ने उन्हें ऐसा ही उपहार दिया होता, तो आज तक आण्टी के पास बत्तीस डिनर सेट होते। क्यों, है ना आण्टी ?"

वर्जित मीठी जेली के लिए मचलती कली को आण्टी रोकने लगी, तो वह पलंग से कूदकर, प्रवीर के पास ही कुरसी खींचकर बैठ गयी। देखते ही देखते उसने

उस संकदिन-भर नजर बचाकर प्रवीर के हाथ से उसकी जूठी प्लेट छीन ली और ऐसे खाने लगी जैसे उदासी ने देवता का प्रसाद हो। अम्मा हाथ धोकर लौटीं, तो वह शान्त, आज्ञाकारिणी कन्या-सी पलंग पर लेटी थी।

"मैं सोचती हूँ, आज कली दिन-भर नहीं सोयी है, अब और स्ट्रेन करना ठीक नहीं है" कली ने चौंककर प्रवीर की ओर देखा। और दिन काटने पर भी न कटनेवाला समय क्या आज पंख लगाकर उड़ गया था?

पन्ना का पलंग कली के पलंग से सटकर लगा था। चाहने पर भी चतुर बन्दिनी अब सतर्क जेल वॉर्डन को नहीं छल सकती थी। कली के कमरे से एक कमरा छोड़कर ही बॉबी का वह कमरा था। जहाँ आण्टी प्रवीर को पहुँचा आयी थीं।

प्रवीर सोया नहीं—खुली खिड़की के पास देर तक खड़ा ही रहा। जिस अबाध्य प्रेम ने कली को उस रात दुस्साहसी छलाँग के लिए प्रेरित किया था, वही दुस्साहस उसकी नस-नस में व्याप्त होकर उसे उन्मत्त बनाने लगा। क्यों न वह दबे पैरों अँधेरे कमरों को टटोलता जाकर कली के सिरहाने खड़ा हो जाये, और उसे चुपचाप बाँहों में भरकर अपने कमरे में ले आये? पर उसके पार्श्व में तो एक ऐसी सतर्क संरक्षिका सो रही थी, जिसने यौवन काल में रात-रात-भर जगकर न जाने कितने निशाचर अतिथियों का आतिथ्य निभाया होगा। वह क्या इस अतिथि की दबी आहट को नहीं पकड़ लेगी? आण्टी ने कहा था कि डॉक्टरों ने कली को अधिक से अधिक वर्ष-भर जीने की अवधि दी है, पर सम्भव यह भी था कि मृत्यु कभी अनजाने में ही उसे आकर दबोच ले। एक बार दिल्ली जाने पर वह क्या सहज ही में फिर लौट पायेगा? इस अनिश्चित अवधि का एक-एक अमूल्य क्षण वह मुट्ठी में दबोचकर भागना चाह रहा था। दिल्ली पहुँचने पर चतुरा नयी पत्नी की सतर्क दृष्टि की सर्चलाइट छलबल से बनाये गये अन्धकार के घेरे को चीर भागते दस्यु को कभी भी पकड़ सकती थी।

सोच-विचार और मनस्ताप से बिंधा प्रवीर कभी बड़े दुस्साहस से बरामदे तक जाता, पर दूसरे ही पल पन्ना की खाँसी उसे कायर बना देती।

सारी रात ऐसी ही क़वायद में बीत गयी। उजाला ठीक से हुआ भी नहीं था कि वह बरामदे में टहलने लगा। अचानक भड़ाक से द्वार खोलकर, हाँफती-सिसकती आण्टी उससे लिपट गयी।

"सनी, ग़ज़ब हो गया, मैं सुबह ही कैप्सूल खिलाने गयी तो देखा ठण्डी पड़ी है। मुँह से अजीब आवाज़ निकल रही है। ऐसा तो कभी करती ही नहीं थी। तुम चलकर देखो ज़रा। मैं डॉक्टर को बुला लाती हूँ। मुझे तो लग रहा है, शी इज़ सिंकिंग।"

कल रात तक जो आनन्द-ऊर्मियाँ बिखेरती, चपल मछली-सी सर्र तैरती इधर-उधर नाच रही थी, वह डूब कैसे सकती थी! प्रवीर कमरे में पहुँचा, तो पन्ना सिरहाने

बैठी रूमाल से कली के ललाट का पसीना पोंछ रही थी।

दोनों हाथ छाती में धरे वह जिस प्रगाढ़ निद्रा में डूबी सो रही थी, उसे प्रवीर ने देखते ही पहचान लिया। क्या ऐसी बीमारी में भी वह त्रैलोक्य-दर्शन की गोलियाँ नहीं छोड़ सकी थी! कभी-कभी सारा शरीर ऐंठन से गठरी बन जाता और पल-भर को सुन्दर चेहरा पीड़ा से विकृत होकर नीला पड़ जाता। दूसरे ही क्षण फिर गरदन लटक जाती, चेहरे पर शान्त निद्रित शिशु की-सी मुसकान खेलने लगती और स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास देख, पन्ना बड़ी आश्वस्त दृष्टि से प्रवीर की ओर देखने लगती।

डॉक्टर मोज़ेज़ ने आने में विलम्ब नहीं किया। झुककर उसने प्रगाढ़ निद्रा में डूबी अवश देह की एक-एक पसली को ठोंक-पीटकर देखा। अनुभवी हाथ में नाड़ी की क्षीण गति को बाँधा। रेशमी पलकों की चिलमन को बरबस चीरकर, क्षण-क्षण पथरा रही आँखों को देखा और फिर खड़ा हो गया।

जिस रोग ने इतने महीनों से घात लगायी थी, इस बार का प्राणघाती अभियुक्त वह रोग नहीं था, इसमें डॉक्टर को भी सन्देह नहीं था।

"इसने कुछ खा लिया है," वह धीमे स्वर में कहने लगा, "बहुत बड़ी मात्रा में खाया है, हो सकता है स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी ही घुटक ली है। अस्पताल ले जाने में बेकार परेशानी में पड़ जाओगी—उस पर भी अब कोई बचा नहीं सकता। पल्स इज़ ऑलमोस्ट गॉन। हो सकता है, दस मिनट या पन्द्रह मिनट।"

वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि साँस लेने को जूझती-हाँफती कली हारकर चुक गयी।

मृत्यु सुनने में कितनी भयावह लगती है पर देखने में उतनी ही निरीह, स्वाभाविक। अभी वह थी और अभी नहीं। दोनों हाथ अभी भी छाती पर धरे थे, अर्ध उन्मीलित बड़ी आँखें तो पहले भी ऐसे ही अधखुली कर सोती थी वह। आण्टी अपने को रोक नहीं पायीं, हिस्टिरिकल सिसकियों से विराट् देह काँपने लगी। पर पन्ना शान्त स्थिर बैठी थी। ऐसी ही स्तब्ध होकर वह तब भी बैठी रही थी, जब विधाता ने इस अनामा सन्तान को उसकी सूनी कोख में डाल आकस्मिक औदार्य से उसे माँ बना दिया था और आज, उसी आकस्मिक क्रूर हृदयहीनता से उसे एक बार फिर सन्तानहीना बना दिया। डॉक्टर आण्टी का पुराना मित्र था। सिसकती आण्टी के कान के पास आकर वह फिर फुसफुसाने लगा, "मैं सोचता हूँ अब देर मत करो, जितनी जल्दी हो सके मिट्टी उठा दो। आजकल की पुलिस का कोई ठीक-ठिकाना नहीं।"

ईसाई टोले से पहली हिन्दू मिट्टी उठ रही थी, इसी से आण्टी को हिन्दू इष्टमित्र जुटाने में कुछ विलम्ब हुआ। स्वयं उनके हिन्दू कमिश्नर मित्र ने आकर उनकी सहायता की।

उस स[illegible]दिन-भ[illegible]वीर एक बार भी बाहर नहीं निकला। पता नहीं आण्टी के बँगले का कौन-सा [illegible] उदासी [illegible] अँधेरा कमरा था वह, शायद पैण्ट्री थी। वहीं चोर-सा दुबककर घण्टों बैठा रहा।

बड़ी देर बाद, आण्टी चाय का प्याला लिये उसे ढूँढ़ती-ढूँढ़ती पहुँच गयीं।

"अरे, तुम यहाँ बैठे हो? उसे तो कब का ले गये। ऐसी सुन्दर देह और जलाकर खाक कर देंगे। हिन्दू शास्त्र हमारी समझ में नहीं आता। अपनी सिमिट्री में होती तो मार्बल टॉप बनवाती।" आण्टी का गला रुँध गया। क़ब्र के पत्थर के नीचे दबने से तो अच्छा था कि चिता में जलकर उसका कुछ भी शेष न रहे।

"तुम बैठो सनी, मैं ज़रा गिरजाघर जा रही हूँ, टु प्रे फ़ॉर हर सोल।" मर्दाने रूमाल से नाक पोंछती, आण्टी चली गयीं।

प्रवीर के हाथ का प्याला काँप गया। टु प्रे फ़ॉर हर सोल। जिसने उसके चदरे से अपनी चुनरी की गाँठ बाँधकर श्मशान में महोत्सव मनाया था, क्या वह उस की आत्मा की शान्ति के लिए एक बूँद पानी भी नहीं देगा? हड़बड़ाकर वह उठा और चुपचाप बाहर निकल गया।

संगम पहुँचा, तो डूबते सूरज ने गंगा का आँचल रंग, यमुना का छोर थाम लिया था। एक टूटे से बजरे में संगम के बीच पहुँचकर वह उतर गया, फिर बड़ी असमंजस में दोनों पैर पानी में डुबोये, कुछ देर तक खड़ा ही रह गया।

"क्या किसी की मिट्टी देकर आये हो बाबू?" अधेड़ नाववाले की सहानुभूति-पूर्ण जिज्ञासा का उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पर वह, उसके उदास चेहरे की व्यथा को भाँपकर समझ गया कि चोट ताज़ी है। "ठीक जगह पर खड़े हो बाबू मिट्टी को पानी यहीं दिया जाता है।"

दक्षिणाभिमुख हो उसने एक अंजलि भरकर मुक्तिदायी पावन अमृत उठा लिया। पर क्या कहकर छोड़ेगा यह जल? न उसका कुल था न गोत्र, हिन्दूशास्त्र तो उस पार जानेवाले यात्री से भी कुल गोत्र का वीसा माँगता है। तब क्या यह जल, उस अनामा कुल गोत्र की प्रेतयोनि तक नहीं पहुँचेगा? एक पल को उसे लगा—जन्म-जन्मान्तर के तृषार्त दो सूखे अधर उसकी जलभरी अंजली से सट गये हैं। ललाट पर वैष्णवी त्रिपुण्ड, गले में तुलसी की माला, अर्धनग्न पीठ पर फैले काले केश! संगमतट की प्यासी आदर्शी वैष्णवी उसके पास फिर आकर क्या खड़ी हो गयी थी?

प्रवीर ने आँखें बन्द कर लीं, ओठ स्वयं ही बुदबुदाने लगे।

एकाग्रः प्रयतो भूत्वा, इमं मन्त्रमुदीरयेत्।
ओं नमो भगवते वासुदेवाय॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥

विवशता से फैली हथेली में मुँदा जल, झरझराकर फिर संगम के नीलाभ जल में एकाकार हो गया।

● ● ●

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

●

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

●

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२२१००५